महाकवि रणछोड भट्ट प्रणीतम्

राजप्रशस्तिः महाकाव्यम्

सम्पादक

डॉ० मोतीलाल मेनारिया

साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर (राजस्थान)

शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार
की आर्थिक सहायता द्वारा

प्रथम संस्करण
सन् १९७३
वि स २०३०

मूल्य
चालीस रुपये

मुद्रक
विद्यापीठ प्रेस
राजस्थान विद्यापीठ

MAHAKAVI RANCHOD BHATTA PRANITAM

RĀJPRASAŚTIḤ MAHĀKĀVYAM

EDITOR

Dr MOTILAL MENARIA

SAHITYA SANSTHAN RAJASTHAN VIDYAPEETH

UDAIPUR (RAJASTHAN)

With the Financial Aid of the
Ministry of Education
Government of India

First Edition
1973 A.D
V.S 2030

Price
Rs 40/-

Printer
Vidyapeeth Press
Rajasthan Vidyapeeth
Udaipur

राजसमुद्र सरोवर के निर्माता–महाराणा राजसिंह (वि० सं० १७०६–३७)

प्रकाशकीय

साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर सन् १९४१ से पुरातन इतिहास, पुरातत्त्व, साहित्य, भाषा, दर्शन, कला और संस्कृति के क्षेत्र मे अनुपलब्ध अनुसंधानात्मक सामग्री का सर्वेक्षण, संकलन सम्पादन और प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण एवं परिश्रमसाध्य कार्य कर रहा है जिसका देश विदेश के शोध जगत मे काफी सम्मान हुआ है। यहा के संग्रहालय व पुस्तकालय में हस्तलिखित ग्रन्थो तथा पुस्तको के रूप मे मूल्यवान सामग्री सुरक्षित है देश-विदेश के आगन्तुक शोधकर्मियो ने समय समय पर उसका लाभ उठाया है। 'शोध पत्रिका' त्रैमासिक सन् १९४८ से सस्थान की मुख पत्रिका के रूप मे निरन्तर प्रकाशित हो रही है उसे विद्वद् समाज ने जिस प्रकार समादृत किया है उसकी लोकप्रियता की कहानी वह स्वयं कह रही है। सस्थान ने अब तक विभिन्न विषयों से सम्बन्धित ५७ प्रकाशन किये हैं। महाकवि रणछोड भट्ट प्रणीत यह 'राजप्रशस्ति महाकाव्यम्' उसका ५८ वा प्रकाशन है।

'राजप्रशस्ति' मूलत ऐतिहासिक काव्य है, जिसे ग्रन्थ के प्रणेता ने 'महाकाव्य' की सज्ञा से अभिहित किया है। इतिहास के साथ साथ भाषा, काव्य एव तत्कालीन सास्कृतिक सम्पन्नता के अध्ययन की दृष्टि से इसके महत्त्व को नजरअन्दाज नही किया जा सकता है।

शोध कार्य सतत् साधना एव अखण्ड तपस्या मागता है। अनुपलब्ध तथ्यों को उजागर करने का कार्य दुष्कर है जिसकी सम्पूर्ति में सस्थान व विद्वान सम्पादक को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा। अनेक ऐसे व्यवधान भी आये कि कार्य रुक सा गया। ऐसे श्रमसाध्य कार्य की सम्पूर्ति पर प्रसन्नता स्वाभाविक है।

भारत सरकार के शिक्षा मत्रालय ने इस ग्रन्थ के सपादन एव प्रकाशन कार्य के लिये वित्तीय सहयोग प्रदान किया है। राजस्थान विद्यापीठ के सस्थापक उपकुलपति मनीषी पं॰ श्री जनार्दनराय नागर की प्रेरणा से ही इस गुरुत्तर कार्य का श्रीगणेश हुआ और उन्ही के समर्थ मार्गदर्शन में यह कार्य सम्पन्न हुआ है। विद्यापीठ प्रेस ने अपनी अनेक सीमाओ के होते हुए भी मुद्रण व प्रकाशन कार्य में काफी सहयोग दिया है। प्रूफ सशोधन एव मुद्रण व्यवस्था का दायित्व श्री देव कोठारी ने निभाया है। अत सस्थान केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय भारत सरकार हमारे सस्थापक उपकुलपति विद्वान सम्पादक डा॰ मोतीलाल मेनारिया एव विद्यापीठ प्रेस के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है।

उमाशंकर शुक्ल

अनुक्रमणिका

भूमिका	— —	१– ४४
मूलपाठ एवं भावार्थ	— —	
प्रथम सर्ग	प्रथम शिला	१– १२
प्रथम सर्ग	दूसरी शिला	१३– २०
द्वितीय सर्ग	तीसरी शिला	२१– २८
तृतीय सर्ग	चौथी शिला	२९– ३७
चतुर्थ सर्ग	पांचवीं शिला	३८– ४६
पंचम सर्ग	छठी शिला	४७– ५६
षष्ठ सर्ग	सातवीं शिला	५७– ६६
सप्तम सर्ग	आठवीं शिला	६७– ७८
अष्टम सर्ग	नवीं शिला	७९– ८९
नवम सर्ग	दसवीं शिला	९०–१००
दशम सर्ग	ग्यारहवीं शिला	१०१–१११
एकादश सर्ग	बारहवीं शिला	११२–१२२
द्वादश सर्ग	तेरहवीं शिला	१२३–१३२
त्रयोदश सर्ग	चौदहवीं शिला	१३३–१४३
चतुर्दश सर्ग	पन्द्रहवीं शिला	१४४–१५४
पंचदश सर्ग	सोलहवीं शिला	१५५–१६६
षोडश सर्ग	सत्रहवीं शिला	१६७–१७७
सप्तदश सर्ग	अठारहवीं शिला	१७८–१८९
अष्टादश सर्ग	उन्नीसवीं शिला	१९०–१९९
एकोनविंश सर्ग	बीसवीं शिला	२००–२१०
विंश सर्ग	इक्कीसवीं शिला	२११–२२१
एकविंश सर्ग	बाईसवीं शिला	२२२–२३१
द्वाविंश सर्ग	तेईसवीं शिला	२३२–२४१
त्रयोविंश सर्ग	चौबीसवीं शिला	२४२–२५४
चतुर्विंश सर्ग	पच्चीसवीं शिला	२५५–२६४
परिशिष्ट	— —	२६५–२८६

भूमिका

राजस्थान राज्य के सुरम्य उदयपुर नगर से ४० मील उत्तर दिशा में महाराणा राजसिंह प्रथम (सं० १७०९–१७३७) बनवाया हुआ राजसमुद्र नाम का एक अत्यन्त सुन्दर सरोवर है। इसकी लंबाई ४ मील और चौड़ाई १¾ मील है। इसके निर्माण-कार्य पर १०५०७६०४ रु० व्यय हुए थे।[1] इसका बंध धनुष के आकार का ३ मील लम्बा है। बांध का एक भाग नौचोकी कहलाता है जो संगमरमर का बना हुआ है। यहाँ पर इस सरोवर की प्रतिष्ठा का उत्सव सम्पन्न हुआ था।

नौचोकी घाट का महत्त्व एक अन्य प्रकार से भी है। महाराणा राजसिंह की आज्ञा से राजप्रशस्ति नाम का एक संस्कृत महाकाव्य लिखा गया था। उसे २५ बड़ी बड़ी शिलाओं पर खुदवाकर यहां की ताकों में लगवाया गया जो आज भी विद्यमान है। यह भारत भर में सबसे बड़ा शिलालेख और शिलाओं पर खुदे हुए ग्रन्थों में सबसे बड़ा है। शिलाएँ काले पत्थर की हैं। प्रत्येक शिला ३ फीट लम्बी व २॥ फीट चौड़ी है। लिपि देवनागरी है। अक्षर बड़े-बड़े सुवाच्य एवं सुन्दर हैं। पहली शिला में दुर्गा गणेश सूर्य आदि देवी-देवताओं की स्तुति है। शेष २४ शिलाओं में प्रत्येक पर इस ग्रन्थ का एक-एक सर्ग खुदा हुआ है। इस प्रकार कुल मिलाकर २४ सर्गों में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। इसकी श्लोक संख्या ११०६ है।

राजप्रशस्ति महाकाव्य रणछोड़ भट्ट की कृति है। यह कठोडी कुलोत्पन्न तैलंग ब्राह्मण था। इसके पिता का नाम मधुसूदन और इसकी माता का वेणा था। राजप्रशस्ति के अनुसार वंश-वृक्ष इस प्रकार बनता है—

---

१ डा० ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पहला भाग, पृष्ठ ६।
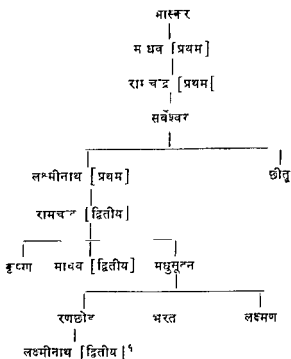
मेवाड राज्य से रणछोड भट्ट के घराने का बहुत पुराना सम्बन्ध था। इसके पूर्वज लक्ष्मीनाथ [प्रथम] और छीतू भट्ट को महाराणा उदयसिंह (स १५९४-१६२८) ने भूरवाडा नामक एक गाव और तुलादान दिया था। ये दान इनको उदयसागर की प्रतिष्ठा (स १६२२) के अवसर पर मिले थे।[2] महाराणा उदयसिंह से तीसरी पीढी मे महाराणा अमरसिंह प्रथम (स १६५३-७६ हुआ। इसने भी लक्ष्मीनाथ [प्रथम] को एक गाव प्रदान किया जिसका नाम होली था।[3] लक्ष्मीनाथ [प्रथम] का पुत्र रामचन्द्र [द्वितीय]

---

१ राजप्रशस्ति, प्रथम सर्ग, श्लोक ६। सर्ग ३ श्लोक ३५। सर्ग ४, श्लोक १८। सर्ग २४ श्लोक १६।

२ राजप्रशस्ति, सर्ग ४, श्लोक १७ १८ और १६

३ वही, सर्ग ५, श्लोक ९

हुआ। इसके तीन बेटे थे—कृष्ण माधव [द्वितीय] और मधुसूदन। कृष्ण भट्ट के पुत्र लक्ष्मीनाथ [द्वितीय] ने उदयपुर के जगन्नाथराय के मंदिर की प्रशस्ति बनाई थी जो उक्त मंदिर मे उत्कीर्ण है। यह मंदिर महाराणा जगतसिंह प्रथम, (सं १६८४-१७०९) ने बनवाया था। इसकी प्रतिष्ठा सं० १७०९ वैशाखी पूर्णिमा, गुरुवार को हुई थी। इस अवसर पर कृष्णभट्ट को भसडा गाव और रत्नधेनु[1] दान दिया गया और मधुसूदन को महादान प्राप्त हुआ।[2] महाराणा जगतसिंह के उत्तराधिकारी महाराणा राजसिंह के समय मे भी मधुसूदन का अच्छा सम्मान रहा। वह संस्कृत भाषा का अच्छा विद्वान् और महाराणा राजसिंह का विश्वासपात्र था। सं० १७११ मे महाराणा ने इसको बादशाह शाहजहा के वजीर सादुल्लाखा से मिलने के लिये चित्तौड भेजा।[3] महाराणा राजसिंह की माता जनादे ने चांदी का तुलादान किया था। उस समय मधुसूदन को गजदान के निष्क्रय स्वरूप ५०० रु की प्राप्ति हुई। सं १७१९ मे महाराणा ने रसोई मोरी के पलान सहित नवल नामक एक सफेद घोडा दिया।[4] इस दान के एवज मे मधुसूदन को नौ हजार रुपये मिले। तदनन्तर इसको काशी भेज दिया गया। वहाँ देव-दर्शन करते समय इसने महाराणा को आशीर्वाद दिया।[5]

अपने पिता मधुसूदन के काशी चले जाने के बाद रणछोड भट्ट ने उसका कार्य संभाला। अपने पिता की तरह वह भी संस्कृत भाषा का अच्छा पंडित था। राजप्रशस्ति के अतिरिक्त इसने दो प्रशस्तिया और भी लिखी थी। महाराणा राजसिंह ने एकलिंगजी के पास वाले इन्द्र सरोवर के जीर्ण बाँध के स्थान पर नया बाँध बंधवाया था जो सं० १७२९ मे पूरा हुआ। इसके लिये महाराणा ने इससे एक प्रशस्ति लिखवाई और उसे सुनने के बाद उसको शिला

---

१ देखिए परिशिष्ट संख्या ३
२ राजप्रशस्ति, सर्ग ५, श्लोक ५०
३ वही, सर्ग ६ श्लोक ११, १२ और १३
४ राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक २७-२८, ३८-४२।
५ वही, सर्ग ६, श्लोक ४५-४६।

पर खुदवान की आज्ञा प्रदान की।[1] दूसरी प्रशस्ति सं० १७ २ म लिखी गई थी। यह देबारी के दरवाज स थोड़ी दूर त्रिमुखी बावडी म लगी हुई है।[2]

उपयुक्त प्रशस्तियो क अलावा रणछोड भट्ट न अमर काव्य नाम का एक ग्रन्थ भी बनाया था जिसकी चार हस्तलिखित प्रतियाँ सरस्वती भण्डार उदयपुर म उपलब्ध हैं।[3] इस ग्रन्थ का प्रारम्भ कवि न महाराणा राजसिंह के पौत्र अमरसिंह द्वितीय क शासन-काल (सं० १७५५-१७६७) मे किया था पर पूरा नही हो पाया। इसलिये इसम मवाड के इतिहास के आदि काल स लेकर महाराणा राजसिंह (सं० १७००-३७) तक क राजाओ ही का वणन है। बाद के दो राजाओ-महाराणा जयसिंह और महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) का वृत्तान्त इसम नही है। अनुमान होता है इस ग्रन्थ का लिखना आरम्भ करन के कुछ काल बाद अर्थात् सं० १७५५ और सं० १७६७ के मध्य मे किसी समय कवि का देहान्त हो गया था जिससे यह ग्रन्थ अधूरा रह गया।

अमर काव्य संस्कृत भाषा का ग्रन्थ है। इसकी छन्द-संख्या लगभग २५० है। आकार म यह राजप्रशस्ति स छोटा पर भाषा व कविता की दृष्टि से अधिक उत्तम है। उसकी अपेक्षा इसकी भाषा अधिक प्रौढ और वर्णन-शैली अधिक व्यवस्थित तथा विषय सामग्री अधिक व्यापक है। डा० ओझा आदि विद्वानो न इसे महाराणा अमरसिंह प्रथम (सं० १६५३-७६) के समय की रचना माना है जो अनुचित है।[4]

---

१ राजप्रशस्ति सर्ग १०, श्लोक ४३।

२ देखिए परिशिष्ट सं० १।

३ A Catalogue of Manuscripts in the Library of H H the Maharana of Udaipur पृष्ठ ८।

4 डा० ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास पहला भाग पृ० ४२०-२१ ५०६।

राजप्रशस्ति की रचना का प्रारम्भ स० १७१८, माघ वदि ७ को हुआ था।[1] इस बात का स्पष्ट उल्लेख इस ग्रन्थ मे है। परन्तु इसमे इसकी समाप्ति का वर्ष दिया हुआ नही है जिससे यह पता नही लगता कि यह कब पूरा हुआ। लेकिन इसके २३ वें सर्ग मे महाराणा राजसिंह के उत्तराधिकारी महाराणा जयसिंह और मुगल सम्राट औरंगजेब के बीच हुई सधि का वर्णन है।[2] यह सधि स० १७३८ मे हुई थी।[3] इस आधार पर इसका रचना-काल स० १७१८-३८ निश्चित होता है।

इसमे कोई सन्देह नहीं कि राजप्रशस्ति महाकाव्य महाराणा राजसिंह की आज्ञा से लिखा गया था। परन्तु इसको शिलाओ पर खुदवाने का आदेश महाराणा जयसिंह (स० १७३७-५५) ने दिया था[4] इसकी छठी शिला मे इसकी खुदवाई का स० १७४४ दिया हुआ है।[5] इस प्रकार यह ग्रन्थ लिख लिये जाने के ६ वर्ष बाद शिलाओ पर खोदा गया।

राजप्रशस्ति महाकाव्य का मुख्य विषय महाराणा राजसिंह का जीवन चरित्र है। परन्तु इसके प्रथम पांच सर्गों मे मेवाड के प्राचीन इतिहास पर भी प्रकाश डाला गया है जो ऐतिहासिको के लिए बडे महत्व का है। इसका साराश नीचे दिया जाता है —

पहला सर्ग—इसमे ३१ श्लोक हैं। प्रारम्भ में 'मगलाष्टक' है जिसमे एकलिंग, चतुर्भुज हरि अबा, बाला, गणेश, सूर्य और मधुसूदन की

---

१ राजप्रशस्ति, सर्ग प्रथम श्लोक १०।

२ राजप्रशस्ति, सर्ग २३ श्लोक ३२-५६।

३ डा० ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास दूसरा भाग, पृष्ठ ५८६-८९

४ राजप्रशस्ति, सर्ग ५ श्लोक ५१।

५ राजधर उरजण 	सवत् १७४४, सर्ग ५, पुष्पिका।

स्तुति के आठ श्लोक हैं। श्लोक ९–१० में लिखा है कि संवत् १७१८ माघ कृष्णा सप्तमी के दिन राजसिंह ने राजसमुद्र के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। तब वह घोगुंदा गाँव में रह रहा था।[1] उसकी आज्ञा पाकर रणछोड़ भट्ट ने उसी दिन इस प्रशस्ति की रचना प्रारम्भ की। अगले सात श्लोकों में संस्कृत भाषा, संस्कृत भाषा के कवि एवं प्रशस्ति–कथा का महत्त्व कहा गया है। श्लोक १९–२८ में वायुपुराण के अन्तर्गत एकलिंग माहात्म्य में आई हुई कथा का वर्णन है। आबू में आमू भास्कर पावनी नन्दी से कहती है– मैं आज शंकर के वियोग में आंसू [= आमू] बहा रही हूँ। इस कारण पूर्व *प्रदत्त मेरे शाप से तुम बाप्प नामक राजा बनोगे। नागह्रद तीर्थ में रहकर* शंकर की आराधना करने पर तुम्हें इन्द्र के समान राज्य प्राप्त होगा। तब तुम पुनः स्वर्ग में आ सकोगे। इसके बाद पावनी चण्ड नामक गण से बोली कि द्वारपाल होकर भी तुमने आज द्वार की रक्षा नहीं की और अपनी मर्यादा को तोड़ा। इस लिये तुम मेदपाट में हारीत नामक मुनि बनोगे। वहाँ रहकर शंकर की आराधना करने के बाद तुम पुनः स्वर्ग प्राप्त कर सकोगे।

अन्तिम २७–३१ श्लोकों में प्रशस्ति का माहात्म्य और प्रशस्तिकार का वंश–परिचय दिया गया है।

दूसरा सर्ग–इसमें ८ श्लोक हैं। सर्ग के प्रारम्भ में गोवर्द्धनचन्द्र की स्तुति का एक श्लोक है। इसके पश्चात् सूर्य–वंश के राजाओं की वंशावली दी गई है। सृष्टि के प्रारम्भ में विश्व जलमय था। वहाँ नारायण विद्यमान थे। उनकी नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा प्रकट हुए। फिर वंश–क्रम इस प्रकार चला—

—मरीचि–कश्यप– विवस्वान् मनु– इक्ष्वाकु– विकुक्षि (अपरनाम शशाद)–पुरंजय (अपरनाम ककुत्स्थ)–अनेना–पृथु–विश्वरश्मि–चन्द्र–युवनाश्व-

---

१ घोघूंदा [गोगूंदा]–यह गाँव उदयपुर नगर से लगभग २७ मील दूर उत्तर-पश्चिम में है।

शावस्त–वृहदश्व–कुवलयाश्व (अपरनाम धुंधुमार)–दृढाश्व–हर्यश्व–निकुंभ–बर्हणाश्व–कृशाश्व–सेनाजित्–युवनाश्व–मांधाता (अपरनाम त्रसदस्यु–पुरुकुत्स–त्रसदस्यु–अनरण्य–हर्यश्व–अरुण–त्रिबंधन सत्यव्रत (अपरनाम त्रिशंकु) हरिश्चन्द्र रोहित–हरित–चंप–सुदेव–विजय–भरुक–वृक–बाहुक–सगर।

सगर के सुमति नामक पत्नी से साठ हजार पुत्र हुए जिन्होंने समुद्र बनाया तथा केशिनी से एक पुत्र हुआ जिसका नाम असमंजस था। असमंजस के वंश का क्रम इस प्रकार है—अंशुमान्—दिलीप—भगीरथ—श्रुत—नाभ—सिंधुद्वीप—अयुतायु—ऋतुपर्ण—सर्वकाम—सुदास—मित्रसह (अपरनाम कल्माषपाद — अश्मक—मूलक— दशरथ—एडविड—विश्वसह—खट्वांग—दिलीप—रघु—अज—दशरथ।

दशरथ के कौशल्या नामक पत्नी से राम कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नामक पुत्र हुए। राम के सीता से कुश और लव तथा कुश के कुमुद्वती से अतिथि नामक पुत्र हुआ। अतिथि का वंश इस प्रकार चला—निषध—नल—पुंडरीक— क्षेमधन्वा— देवानीक—अहीन—पारियात्र बल—स्थल—वज्रनाभ—सगण—विधृति—हिरण्यनाभ— पुष्य— ध्रुवसिंधि सुदर्शन—अग्निवर्ण— शीघ्र—मरु— प्रसुश्रुत—संधि— अमर्षण— महस्वान् —विश्वसाह्व—प्रसेनजित्—तक्षक—बृहद्बल।

बृहद्बल महाभारत–संग्राम में अभिमन्यु द्वारा मारा गया जिसका उल्लेख 'महाभारतग्रन्थ' में हुआ है। भागवत के नवम स्कन्ध में बृहद्बल से आगे का वंश–क्रम इस प्रकार दिया गया है—

—बृहद्रण—उरुक्रिय—वत्सवृद्ध—प्रतिव्योम—भानु—दिवाक—महदेव—बृहदश्व—भानुमान्—प्रतीकाश्व—सुप्रतीक—मरुदेव— सुनक्षत्र—पुष्कर अन्तरिक्ष—सुतपा—मित्रजित्—बृहद्भाज—बर्हि—कृतंजय—संजय—शाक्य-शुद्धोद—लांगल—प्रसेनजित्—क्षुद्रक—रणक—सुरथ—सुरथ—सुमित्र।

सुमित्र पर्यन्त इक्ष्वाकुवंश चला। ये १२२ राजा हुए। इसके बाद सूर्य–वंश का क्रम बताया गया है—

—वप्पनाम—महारथी प्रतिरथी-प्रचनमन—रनकमन म८ामन प्रा—विजयमन—प्रजयमन—प्रभगान—मन्मन— मिन्न्प।

य राजा प्रयाप्या-वगा थ। मिहरथ क विजय नामक पुत्र हुप्रा। उसने दक्षिण देश क राजाप्रा पर विजय प्राप्त की प्रौर प्रयाध्या छाडकर वह दक्षिण म रहने लगा। वहाँ उस प्राकाशवाणी सुनाई दी कि वह राजा उपाधि छाडकर प्रपने वश म प्रादित्य उपाधि धारण कर।

मनु स लकर विजय तक जा राजा हुए, उनकी सख्या १२५ है।

तीसरा सग—इसकी श्लाक-सख्या ५६ है। प्रथम श्लाक में हरि की वन्दना है। इसक पश्चात् विजय क बाद क राजाप्रा की वशावली दी गई है जा इस प्रकार है —

—पद्मादित्य—शिवादित्य—हरदत्त—सुजसादित्य— सुमुखादित्य—सामन्त—शिलादित्य—कशवादित्य—नागादित्य—भागादित्य— दवादित्य—प्राशादित्य—कालभोजादित्य—ग्रहादित्य—

य १८ प्रादित्य उपाधिधारी राजा हुए। ग्रहादित्य क समस्त पुत्र गहिलौत कहलाय। ग्रहादित्य का ज्यष्ठ पुत्र बाप्प था।[1]

यह बाप्प वही था जिस दखकर पावती न प्रश्न किया थ। शिव का चड नामक गण मुनि हारीत राशि हुप्रा। बाप्प हारीत का शिष्य बना प्रौर उसकी प्राज्ञा स नागह्रदपुर में रहकर उसने एकलिंग शिव का प्रचन किया।[2] प्रसन्न होकर शिव ने उस वरदान दिया कि वह वशपरपरा तक चित्रकूट पर शासन करे प्रौर उसका वश बराबर चलता रहे। वरदान पाकर बाप्प १९१ वष

---

१ बाप्प से प्रभिप्राय यहाँ बापा रावल से है।

२ नागह्लदपुरा = नागदा। यह नगर उदयपुर से १४ मील दूर उत्तर दिशा मे है।

के माघ महीने में शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन भाग्यवान् बना। तब उसकी आयु १५ वर्ष की थी।

वाप्प बलशाली राजा था। वह ३५ हाथ लंबा पट्टवस्त्र १६ हाथ लंबा निचोल और ५० पल सोने का कडा पहनता था।[1] उसकी तलवार वजन मे ४० सेर थी। वह तलवार के एक प्रहार मे दो भैंसो का वध करता था। उसके आहार मे बडे-बड चार बकरे काम आते थे। उसने मोरी जाती के राजा मनुराज[2] को पराजित किया तथा उससे चित्रकूट छीनकर वहा अपना राज्य जमाया। तब उसकी पदवी रावल थी। उसका वंश इस प्रकार चला —

—खुमान—गोविन्द—महेन्द्र—आलू—सिंहवर्मा—शक्तिकुमार—शालिवाहन—नरवाहन—अवाप्रसाद—कीर्तिवर्मा—नरवर्मा—नरपति—उत्तम—भैरव—श्रीपुंजराज—कर्णादित्य—भावसिंह—गोत्रसिंह—हंसराज—शुभयोगराज—वरड—वैरिसिंह—तेजसिंह—समरसिंह।

समरसिंह पृथ्वीराज की बहिन पृथा का पति था। पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के बीच हुए युद्ध मे पृथ्वीराज की ओर से लडकर उसने गोरी को पकडा। वह उस युद्ध मे मारा गया। भाषा के रासा नामक ग्रन्थ[3] मे इस युद्ध का सविस्तार वर्णन हुआ है।

समरसिंह के पुत्र हुआ कर्ण। इस प्रकार ये २६ रावल हुए। कर्ण के दो पुत्र थे—माहप और राहप। माहप डूंगरपुर का राजा बना। राहप

---

१ महाराणा राजसिंह [प्रथम[के समय मे एक पल लगभग ४ तोले का होता था।
२ कर्नल टाड आदि इतिहासकारों ने मोरी जाति के इस राजा का नाम मान बताया है।
३ पृथ्वीराज रासो।

उग्र स्वभाव का था। पिता की आज्ञा से मंडोवर पहुंच कर उसने मोकलसी को पराजित किया और उसे पकड़ कर अपने पिता के पास लाया। कर्ण ने मोकलसी से राना बिरुद को छीनकर अपने पुत्र राहप को दे दिया। पल्लीवाल जाति के शरणार्य नामक ब्राह्मण के आशीर्वाद से राहप चित्रकूट का राजा बना और सीसोद नगर में रहने के कारण सीसोदिया कहलाया। राना उसका बिरुद था जिसे बाद में होने वाले राजाओं ने भी अपनाया।

सर्ग के अन्त में कवि का वंश-परिचय है।

चौथा सर्ग—यह सर्ग ५० श्लोकों में पूर्ण हुआ है। प्रारम्भ में समान ढंग की स्तुति है। फिर राहप से आगे का वंश-क्रम दिया गया है—

—नरपति—जसकर्ण—नागपाल—पुण्यपाल—पृथ्वीमल्ल—भुवनसिंह—भीमसिंह—जयसिंह—लक्ष्मसिंह।

लक्ष्मसिंह मण्डलीक कहलाता था। उसका छोटा भाई रत्नसी था जो पद्मिनी का पति था। अलाउद्दीन ने पद्मिनी के लिए जब चित्रकूट को घेर लिया तब अपने १२ भाइयों तथा ७ पुत्रों सहित लक्ष्मसिंह उसके विरुद्ध लड़ा और मारा गया। इसके बाद लक्ष्मसिंह के ज्येष्ठ पुत्र हमीर ने राज्य किया। उसने एकलिंग की श्याम पाषाण-निर्मित चतुर्मुखी प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई। साथ में पार्वती की प्रतिमा की भी प्रतिष्ठा की गई।

हमीर के पुत्र हुआ क्षेत्रसिंह और क्षेत्रसिंह के लाखा जो परम दानी था। लाखा के हुआ मोकल। उसने अपने निःसन्तान भाई बाघा की मोक्ष प्राप्ति के लिये नागहृद में बाघेला नाम का एक तालाब बनवाया। उसने एकलिंगजी के मन्दिर के परकोटे का भी निर्माण करवाया। इसके बाद द्वारका की यात्रा कर वह शंखोद्धार नामक तीर्थ-स्थान पर पहुंचा। वहाँ एक सिद्ध ने उसकी पत्नी के गर्भ में प्रवेश किया। मोकल का पुत्र कुंभकर्ण वही सिद्ध था। मोकल के बाद कुंभकर्ण ने राज्य किया। उसके सोलह सौ स्त्रियाँ थीं। उसने कुंभलमेरु दुर्ग का निर्माण करवाया। कुंभकर्ण के बाद उसका पुत्र रायमल

राजा बना । रायमल के पुत्र हुआ संग्रामसिंह । दो लाख सैनिक साथ में लेकर वह दिल्ली-पति बाबर के देश में फतहपुर तक पहुंचा और उसने वहाँ पीलिया खाल पर्यन्त अपने देश की सीमा बनाई । संग्रामसिंह के बाद रत्नसिंह राज्याधिरूढ हुआ और फिर उसका भाई विक्रमादित्य । विक्रमादित्य के बाद उसके सहोदर उदयसिंहने राज्य किया । उसने उदयसागर नामक एक सुंदर सरोवर बनवाया और उदयपुर नगर बसाया । उसने राठौड़ जैमल, सीसोदिया पत्ता और चौहान ईश्वरदास नामक योद्धाओं ने चित्रकूट में बादशाह अकबर की सेना से युद्ध किया ।

उदयसिंह के बाद प्रतापसिंह राज्याधिरूढ हुआ । भोजन करते समय मानसिंह कछवाहा और उसके बीच वैमनस्य हो गया। इस कारण मानसिंह अकबर के पास गया और वहाँ से सेना लेकर खमणोर गांव में पहुंचा । वहाँ दोनों में भीषण युद्ध हुआ । मानसिंह हाथी पर लोहे के बने हौदे में बैठा था । पहले प्रताप के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह ने उक्त हाथी के कुंभस्थल पर भाले से प्रहार किया बाद में प्रताप ने भी । हाथी वहाँ से भाग गया । उस युद्ध में प्रताप का भाई शक्तिसिंह भी था जो मानसिंह के पक्ष में था । प्रताप को देखकर उसने कहा- हे स्वामी ! पीछे देखो !' मुड़कर प्रताप ने एक घोड़ा देखा । तदनन्तर वह वहाँ से निकल गया । इसके बाद मानसिंह ने उसके पीछे दो मुगल सैनिक दौड़ाये । मानसिंह की आज्ञा लेकर शक्तिसिंह भी उनके पीछे हो लिया । उन सैनिकों ने प्रताप से युद्ध किया । पर प्रताप और शक्तिसिंह दोनों ने मिलकर उन्हें मार डाला ।

तत्पश्चात् अकबर वहाँ पहुंचा । उसने प्रताप से युद्ध किया । पर प्रताप को बलशाली समझकर वह आगरा की ओर चला गया और अपने पीछे अपने ज्येष्ठ पुत्र शेखू को वहाँ नियुक्त कर गया ।

अकबर के बाद उसका पुत्र शेखू जहाँगीर नाम से दिल्ली का स्वामी बना । उसने प्रताप से युद्ध किया । अन्त में वह अपने पुत्र खुरम को वहाँ छोड़कर और चौरासी थानेत बिठाकर दिल्ली चला गया ।

सुलतान चक्ता उपनाम शरिम दिल्ली-पति का काका था। एक बार प्रताप ने उसे दीवर के घाटे में हाथी पर बैठा देखा। प्रताप ने उसका सामना किया। सादड़ी-भृत्य पड़िहार ने हाथी के दो पाँव काट दिये। और प्रताप ने उसके कुंभस्थल को भाले के प्रहार से फोड़ दिया। हाथी के नष्ट हो जाने पर शरिम घोड़े पर चढ़ा। लेकिन अमरसिंह ने कुंत-प्रहार से उसे धराशायी कर दिया। मरते समय शरिम ने अमरसिंह के दर्शन किये और उसकी वीरता की प्रशंसा की। इसके बाद कोमीथल आदि स्थानों में नियुक्त थानेत (थानों के अधिकारी) वहाँ से चले गये। प्रतापसिंह उदयपुर में रहने लगा।

प्रताप से पगड़ी प्राप्त करके कोई भाट बादशाह के दर्शनार्थ दिल्ली पहुँचा। जब वह बादशाह के सम्मुख उपस्थित हुआ तब उसने सिर पर बंधी हुई अपनी पगड़ी हाथ में रख ली और तब सलाम किया। बादशाह के पूछने पर कि तुमने पगड़ी हाथ में क्यों रखी? उसने उत्तर दिया कि यह पगड़ी राणा प्रताप की दी हुई है? इस कारण इसको मैंने सिर पर नहीं रहने दिया। आशय समझकर बादशाह प्रसन्न हुआ।

पाँचवाँ सर्ग—प्रतापसिंह के बाद अमरसिंह ने राज्य किया। खुरम के साथ युद्ध करने के बाद वह अब्दुल्लाखाँ से लड़ा। तत्पश्चात् वह चौबीस थानेतों द्वारा घेर लिया गया। फिर उसने ऊंटाला गाँव में दिल्ली-पति के अहलकार कायम खाँ को मारा और मालपुर को नष्ट कर वहाँ से कर वसूल किया। तब जहाँगीर की आज्ञा से खुरम ने अमरसिंह के साथ सन्धि की। यह सन्धि गोगून्दा में हुई। इसके बाद अमरसिंह उदयपुर में रहकर सुखपूर्वक राज्य करने लगा। उसने कई महादान दिये।

अमरसिंह के बाद कर्णसिंह राजगद्दी पर बैठा। कुमार-पद पर रहते हुए उसने गंगा-तट पर रजत-तुलादान किया तथा शूकर-क्षेत्र के ब्राह्मणों को एक गाँव दिया। राज्याधिरूढ़ होने पर उसने अखैराज को सिरोही का स्वामी बनाया। खुर्रम अपने पिता जहाँगीर से विमुख हो गया था। कर्णसिंह ने उसे अपने देश में ठहराया और जहाँगीर के मरने के बाद अपने भाई अर्जुन

को साथ मे भेजकर उसे दिल्ली का स्वामी वनाया। खुरम शाहजहाँ नाम से प्रसिद्ध हुआ।

स० १६६४, भाद्रपद शुक्ला द्वितीया के दिन कर्णसिह के जावुवती की कोख से जगतसिह नामक पुत्र हुआ। जावुवती महेचा राठौड जसवन्तसिह की पुत्री थी। स० १६८८ वशाख शुक्ला तृतीया के दिन जगतसिह राजा बना। उसकी आज्ञा से उसका मन्त्री अखैराज सेना लेकर डूगरपुर पहुचा। उसके पहुचने पर रावल पूंजा वहा से भाग गया। जगतसिह के सैनिको ने उसके चदन के बने गवाक्ष को गिरा दिया और डूगरपुर को खूब लूटा। तदनन्तर राठौड रामसिह सेना लेकर देवलिया की ओर गया। उसने वहाँ जसवन्तसिह एव उसके पुत्र मानसिह को मारा और देवलिया को लूटा।

स० १६८६ कार्तिक कृष्णा द्वितीया को जगतसिह के राजसिह तथा एक वर्ष के बाद अरसी नामक पुत्र हुआ। इन दोनो पुत्रो ने मेडता के राजा राजसिह राठौड की पुत्री जनादे की कोख से जन्म लिया। महाराणा की अपरिणीता प्रिया से उसके मोहनदास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

जगतसिह ने सिरोही के स्वामी अखैराज को अपने अधीन किया तथा अखैराज द्वारा पराजित तोगा बालीसा से धरती छीनी। उसने अपनी निवास-भूमि मे मेरुमन्दिर नाम का एक महल और 'पीछोला' सरोवर के तट पर मोहनमन्दिर बनवाया।

उसके आदेश से उसका प्रधान भागचद बासवाडा पहुचा। उसके पहुचने पर अपनी स्त्रियो को साथ लेकर रावल समरसी वहाँ से पहाडो मे चला गया। बाद मे उसने दड-स्वरूप दो लाख रुपये देकर महाराणा की अधीनता स्वीकार की।

इसके बाद जगतसिह ने बूदी के स्वामी शत्रुशल्य के पुत्र भावसिह के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया। उस अवसर पर अन्य २७ कन्याओ का क्षत्रिय कुमारो के साथ विवाह हुआ।

स० १६९८ म दीपावली के उत्सव पर जगतसिंह की माता जादुवती ने द्वारका की यात्रा की। वहा उसने चादी का तुलादान एव अन्य दान किय। गोस्वामी यदुनाथ की पुत्री वणी को उसन आहड नामक नगर म दो हलवाह भूमि[1] और उसका पत्र उसके पति मधुसूदन भट्ट को प्रदान किया।

राज्यारोहण के बाद जगतसिंह प्रतिवष चादी की तुला एव अन्य दान देता रहा। स० १७०४ क आषाढ महीने में सूर्यग्रहण के अवसर पर अमरकटक में उसन सोने की तुला की। इसके बाद प्रतिवष उसने अपने जन्म दिवस पर क्रमश कल्पवृक्ष[2] स्वर्णपृथ्वी[3] सप्तसागर[4] तथा विश्वचक्र[5] नामक महादान दिए। इसी वष उसकी माता जादुवती ने तीथ-यात्रा की। कार्तिक में वह मथुरा पहुची। उसन कार्तिकी पूर्णिमा के दिन शूकर क्षेत्र म गगा-तट पर रजत-तुलादान किया। उसक साथ उसकी नाहिनी नन्दकुवरि न भी। एक वष पहल नन्दकुवरि न रणछोड भट्ट को उमामहेश्वर[6] दान दिया था। तत्पश्चात् जादुवती ने प्रयाग म चादी का तुलादान किया। फिर वह काशी अयोध्या आदि तीर्थों के दशन कर घर लौट आई। घर पहुच कर उसन कई दान दिए।

इसी वष कार्तिकी पूर्णिमा के दिन जगतसिंह न जगन्नाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई और उस अवसर पर गोसहस्र कल्पलता[7] और हिरण्याश्व[8] नामक महादान तथा पाच गाव प्रदान किये।

---

१ मवाड म एक हलवाह मे ५० बीघा भूमि मानी जाती थी।
२ देखिए परिशिष्ट सख्या ३।
३ वही।
४ वही।
५ वही।
६ देखिए परिशिष्ट सख्या ३।
७ वही।
८ वही।

अंत मे उदयसिंह से लेकर जयसिंह तक के महाराणाओ की नामावली दी गई है। जयसिंह के बारे मे कहा गया है कि उसने राजप्रशस्ति को शिलाओ पर खुदवाया।

इस सर्ग मे कुल मिलाकर ५२ श्लोक हैं।

छठा सर्ग--स० १७०९ के मार्गशीर्ष महीने मे राजसिंह ने चाँदी का तुलादान किया। इसी वर्ष फाल्गुन कृष्ण द्वितीया के दिन वह राजसिंहासन पर बैठा। उसने अपनी बहिन का विवाह भुरुटिया कर्ण नामक राजा के ज्येष्ठ पुत्र अनूपसिंह के साथ किया। इस अवसर पर उसके संबंधियो की ७१ कन्याओ के विवाह अन्य क्षत्रिय कुमारो के साथ हुए।

स० १७१० पौष कृष्णा एकादशी को राव इन्द्रभान की पुत्री सदाकुँवरी की कोख से उसके जयसिंह नामक पुत्र हुआ। इसके अतिरिक्त उसके पुत्र हुए--भीमसिंह गजसिंह सूरजसिंह इन्द्रसिंह और बहादुरसिंह। अविवाहिता प्रिया से पुत्र हुआ--नारायणदास।

राजसिंह ने सर्वऋतु विलास नाम का एक उद्यान लगवाया, जिसका प्रारम्भ वह कुँवरपदे के समय करवा चुका था।

स० १७११ के आश्विन मे दिल्ली-पति शाहजहाँ अजमेर पहुँचा। उसका मुख्य मन्त्री सादुल्लाखा चित्रकूट आया। राजसिंह ने उससे मिलने के लिये अपनी ओर से मधुसूदन भट्ट को चित्रकूट भेजा। खान ने उससे पूछा कि राणा ने गरीबदास और रायसिंह झाला को दिल्ली से क्यो बुलवा लिया? मधुसूदन ने उत्तर दिया--'ऐसा पहले भी हुआ है। राणा प्रताप का भाई शक्तिसिंह तथा रावल मेघसिंह मेवाड से दिल्ली गये और फिर मेवाड मे आ गये थे। स्वामि-प्रमुक्त क्षत्रियो के लिये दो ही स्थान हैं दिल्ली या मेवाड।' खान ने फिर पूछा-- राणा के अश्वारोहियो की सख्या कितनी है? भट्ट ने उत्तर दिया-- बीस हजार। इस पर खान बोला--'बादशाह के पास एक

लाख अश्वारोही हैं। राणा की उनसे बराबरी कैसे हो सकती है? उत्तर में मधुसूदन ने कहा— हे खान! यह सच है। लेकिन विधाता ने राणा के बीस हजार अश्वारोहियों को बादशाह के एक लाख अश्वारोहियों के बराबर बनाया है। भट्ट का यह उत्तर सुनकर खान मन ही मन कुपित हुआ। तदनन्तर खान और अर्मसिंह के बीच बातें हुई। अन्त में निर्णय हुआ कि यदि राणा का कुंवर खान के साथ जाकर शाहजहाँ से मिले तो वह महाराणा को चौन्द दा दिलाएगा।

यह सोचकर कि बादशाह के शाहजादे के साथ हमारे पूर्वजों के राजकुमार संधि करते आये हैं महाराणा राजसिंह ने [illegible] और कुछ ठाकुरों के साथ अपने ज्येष्ठ राजकुमार सुल्तानसिंह को शाहजहाँ के पास भेजा और उससे संधि की।

इसके बाद राजसिंह ने अपनी माता जनादे से चाँदी का तुलादान करवाया तथा गजदान के निष्क्रय स्वरूप पाँच सौ रुपये मधुसूदन भट्ट को दिये। बाद राघवदास को भेजकर उसने रूपसिंह राठौड़ को माण्डलगढ़ से भगा दिया।

सं० १७१२ कार्तिक पूर्णिमा के दिन राजसिंह ने एकलिंग में २५० पल सोने का "ब्रह्माण्ड"[1] नामक दान दिया। अश्वमेध का पुण्य प्राप्त करने के लिए उसने सं० १७१२ पौष शुक्ला एकादशी को अपने गुरु मधुसूदन भट्ट को साज के सामान सहित 'नवरत्न' नामक अश्व प्रदान किया और उसके बदले में नौ हजार रुपये देकर उसे काशी भेज दिया। काशी पहुँचकर मधुसूदन ने देवस्नानादि करते समय महाराणा को आशीर्वाद दिया।

सातवाँ सर्ग— सं० १७१६ वैशाख शुक्ला १० के दिन राजसिंह ने विजय-यात्रा प्रारंभ की। उसके पास [illegible] था जिसे देखकर

---

१ देखिये परिशिष्ट संख्या ३।

शत्रु काँप उठे। उसके प्रयाण करने पर अग, कलिंग वग, उत्कल, मिथिला, गौड, पूरब देश, लका, काकण, कर्णाट मलय, द्रविड चोल, सेतुबध सौराष्ट्र कच्छ, टट्टा, बलख, खधार, उत्तर दिशा, दरीबा मांडल, फूलिया, राहेला शाहपुरा केकडी, साँभर, जहाजपुर, सावर गौडो और कछवाहा के देश, रणथभौर, फतहपुर, बयाना, अजमेर और टोडा आतकित हो गये। दरीबा नगर लूट लिया गया। माडल और शाहपुरा के योद्धाओ ने दट स्वरूप बाईस-बाईस हजार तथा बनडा के वीरो ने बीस हजार रुपये राजसिह को दिये।

उस समय टोडा मे रायसिह राज्य कर रहा था। राजसिह ने साथ मे तीन हजार सनिक देकर अपने प्रधान फतहचद को वहाँ भेजा और दड रूप मे वहाँ से साठ हजार रुपये प्राप्त किये। दड की यह रकम रायसिह की माता ने जमा करवाई।

इस विजय-यात्रा मे राजसिह के किसी सुभट ने वीरमदेव के महिरव नामक नगर को जला दिया। महाराणा के सनिको ने मालपुर को नौ दिनो तक लूटा। इसके बाद टाक, साँभर, लालसाट और चाटसू नामक गावो को जीत कर उन्होने वहाँ स कर वसूल किया।

मालपुर मे जहाँ राणा अमरसिह केवल दो पहर ठहर पाया था, वहाँ राजसिह नौ दिना तक ठहरा। छाइनि नामक नदी म बाढ़ आ जाने से वह आगे नही बढ सका और अपने नगर उदयपुर लौट आया।

अतिम श्लोक म राजसिह के लौटने पर सजाये गये उदयपुर का वणन है। इस सग म ४५ श्लोक हैं।

आठवा सग—स १७१४ के ज्येष्ठ माह म राजसिह छाइनि नदी के तट पर शिविर मे ठहरा हुआ था। वहाँ उसने औरगजेब के दिल्ली-पति बनने के समाचार सुने। उसको प्रसन्न करने के लिये तब उसने अपने भाई अरिसिह को उसके पास भेजा। अरिसिह सिहनद पथ न पहुँचा। औरगजेब ने उसे डूँगरपुर आदि देश एव हाथी इत्यादि दिये। अरिसिह ने वे सब राजसिह को भेंट कर दिये। प्रसन्न होकर राजसिह ने भी उसे यथोचित उपहार दिया।

सं १७१४ म औरंगजेब और उसके बड़े भाई शुजा के बीच जब युद्ध हुआ तब राजसिंह ने औरंगजेब की सहायता के लिये कुंवर सरदारसिंह को भेजा था। सरदारसिंह विजयी हुआ। औरंगजेब ने उसे भी देश अश्व, गज आदि प्रदान किये।

सं० १७१५ वैशाख कृष्णा ९ मंगलवार को राजसिंह की आज्ञा से उसके मंत्री फतहचंद ने बांसवाड़ा पर आक्रमण किया। उसके साथ पांच हजार अश्वारोही ठाकुरों की सेना थी। उसने वहां के रावल समरसिंह से दंड के रूप में एक लाख रुपये, दशगाण एक हाथी एक हथिनी तथा दस गांव लेकर महाराणा की अधीनता स्वीकार करवाई। राजसिंह ने प्रसन्न होकर उक्त संपत्ति में से दस गांव देशदाण और बीस हजार रुपये वापस लौटा दिये।

तदुपरांत फतहचन्द ने देवलिया को नष्ट कर दिया। हरिसिंह वहां से भाग गया। तब उसकी माता अपने पौत्र प्रतापसिंह को लेकर फतहचन्द के पास पहुंची। फतहचन्द ने उससे दण्ड स्वरूप केवल बीस हजार रुपये और एक हथिनी प्राप्त की तथा प्रतापसिंह को राणा के चरणों में ला रखा।

सं० १७१६ में राजसिंह ने ठाकुरों द्वारा डूंगरपुर के रावल गिरधर को बुलवाया और उससे अपनी अधीनता स्वीकार करवाई।

उसने सिरोही के स्वामी अखराज को प्रेम से ही अपने अधीन कर लिया। इसके बाद देवारी के विशाल घाटे में उसने एक सुन्दर द्वार बनवाया जिससे शत्रु रोके जा सकें। उसमें दो बड़े-बड़े किवाड और अगला लगवाई गई। वहां उसने सुदृढ़ कोट भी बनवाया।

सं० १७१७ में महाराणा एक बड़ी सेना लेकर किशनगढ़ पहुंचा जहां उसने राठोड़ रूपसिंह की पुत्री जो दिल्ली-पति के लिये रखी गई थी, से पाणिग्रहण किया। सं० १७१९ में उसने मेवल देश को अपने अधीन किया। तब उसके योद्धाओं ने वहां की मीणा जाति के बहुत से सनिक नष्ट कर दिये। राजसिंह ने वस्त्र अश्व और धन देकर अपने सामंतों को समूचा मेवल दे दिया।

स० १७२० में राणा की आज्ञा स राणावत रामसिंह सेना लेकर सिरोही पहुँचा। वहाँ अपने पुत्र उदयभान द्वारा कद किये गये राव अखैराज को मुक्त करवाकर उसने पुन उसे अपने राज्य पर स्थापित किया।

स० १७२१ मागशीर्ष शुक्ला ८ वे दिन राजसिंह न बाधव के स्वामी बाघला राजा अनूपसिंह व कुमार भावसिंह के साथ अपनी पुत्री अजबकुँवरी का विवाह किया। इस अवसर पर उसने अपने सबधियों की ९८ पुत्रियो का अन्य क्षत्रिय कुमारा के साथ विवाह किया। महाराणा बाधव के रहने वाले अस्पशभोजी क्षत्रियो के साथ बठकर जब भोजन करने लगा तब उन्होने कहा— राणा राजसिंह का जो अन्न है वह जगन्नाथराय का प्रसाद है। इस कारण यह बहुत पवित्र है। इसे खाकर हम पवित्र हो गये हैं। फिर राजसिंह ने समस्त दुल्हो को हय गज और आभूषण प्रदान किये।

महाराणा ने स १७२१ के माघ महीने में सूयग्रहण के अवसर पर हिरण्यकामधेनु[1] नामक महादान दिया, जिसम दो हजार रुपयो का सोना लगा। स १७२५ में उसन बडी गाँव में सरोवर का उत्सग और उस अवसर पर चाँदी का तुलादान किया, तथा उस सरोवर का नाम जनासागर रखा। इस अवसर पर उसने अपने मुख्य पुरोहित गरीबदास को गुणहडा और देवपुरा नामक गाव दिये। उक्त सरोवर के निर्माण म छह लाख और अस्सी हजार रुपये व्यय हुए।

उसी दिन महाराणा की आज्ञा से महाराजकुमार जयसिंह ने उदयपुर मे रगसर नामक सरोवर की प्रतिष्ठा की और उस अवसर पर अनेक दान दिये।

यह सग ५४ श्लोको मे पूरा हुआ है।

नवाँ सग—इसमे ४८ श्लोक हैं। प्रथम श्लोक में गोवर्द्धनधारी कृष्ण की वन्दना है। इसके बाद राजसमुद्र के निर्माण का इतिवृत्त दिया गया है।

---

१ देखिये, परिशिष्ट सख्या ३।

महाराणा जगतसिंह के राजत्वकाल मे स १६९८ मे, कुमार-पद पर रहते हुए राजसिंह विवाह करने के लिये जसलमेर गया। उस समय उसकी आयु १२ वष की थी। जैसलमेर जाने हुए उसने घोयदा, सनवाड सिवाली भिगावदा मोरचणा पसूंद खेडी, छापरखेडी तासोल मंडावर भाण, लुहाणा वासोल, गुन्ली कांकरोली और मडा नामक गाँवो की सीमा मे तडाग के निर्माण योग्य भूमि देखकर वहाँ एक जलाशय बनवाने का विचार किया। गद्दीनशीनी के बाद स १७१८ के मागशीष मे रूपनारायण के दशन करने के लिये जब वह उधर निकला तब उसने एक बार फिर इस भूमि को देखा और वहाँ तडाग बाधने का निश्चय किया। सलाह लेने पर पुरोहित ने उसे बताया कि यह काय होना चाहिये पर यह तभी हो सकता है जब पूण विश्वास हो ि-नी पति से विरोध नही हो तथा धन का प्रचुर व्यय किया जाय। उत्तर मे राजसिंह न कहा— 'य तीनो बातें हो सकती है।

राजसमु- के निर्माण काय को प्रारभ करन के लिय उसन स १७१८, माघ कृष्णा ७ बुधवार का मुहूर्त निकलवाया। पुरोहित के प्रति उसकी अमित श्रद्धा थी। इस कारण इस काम मे भी उसने उस आगे रखा। कार्यारभ उसने अपना -ख रख में करवाया। इसलिये उसके कई विभाग बनाये गये। राजसिंह ने य विभाग अपने याग्य सामन्तो को सौंप दिये।

राजसमुद्र के निर्माण म सब से पहिल बडे-बडे दो पवतों के बीच गामती न ी को रोकने व महासेतु बाँधने का प्रयत्न किया गया। महासेतु बाँधन क लिये खुदाई का काम बड ापक रप मे आरभ हुआ जिसम असख्य लोग जुट गये। खुदाई हो चुकन पर वहा से जल निकालन का प्रयत्न प्रारभ हुआ। उसके लिये अनक रहटो के अतिरिक्त वे सभी उपाय काम मे लाये गये जो भारतवष मे उपल ध थे। सूत्रधारो और ग्रामीणो द्वारा बताये गये जल निकालन के उपायो को भी काम मे लिया गया। वहाँ से जो पानी निकला उसे लाग नहरो द्वारा गाँव-गाव मे ल गये।
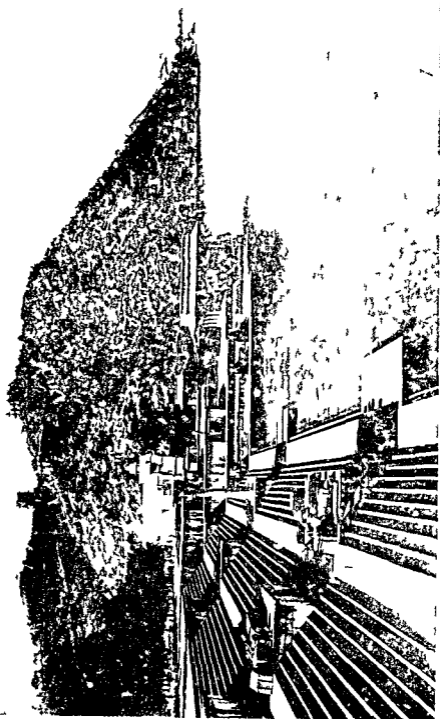
पानी निकल जाने पर स १७२१, वैशाख शुक्ला १३, सोमवार को राजसिंह ने नींव भरने का मुहूर्त किया। सर्वप्रथम पुरोहित गरीबदास के ज्येष्ठ पुत्र रणछोडराय ने पाच रत्नो से युक्त एक शिला वहाँ रखी।

सेतु के पर भाग मे पाताल से सफेद, लाल और पीली मछलियाँ निकली एव स्वच्छ गर्भोदक निकला। उन्हें देखकर सूत्रधारों ने बताया कि यहाँ अति अगाध जल होना चाहिये। सूत्रधारो के कथन को सुनकर राजसिंह प्रसन्न हुआ।

दसवा सर्ग—इस सर्ग मे ४३ श्लोक हैं। पहले श्लोक मे द्वारकानाथ की स्तुति है। इसके बाद कथा-क्रम इस प्रकार चलता है।

स १७२६ वैशाख शुक्ला १३ के दिन राजसिंह ने काँकरोली में सेतु के निर्माण का मुहूर्त किया। आषाढ से पूर्व ही ज्येष्ठ महीने मे वर्षा होने से सरोवर मे नया जल आ गया। इसी वर्ष आषाढ कृष्णा पचमी रविवार को सूत्रधारों ने मुख्य सेतु के भू-पृष्ठ को सुधा पूरित शिलाओं से भरना प्रारभ किया। उन्होंने वहाँ एक सुदृढ दीवार-सी बना दी। इस काम में उनको आठ वर्ष पाँच महीने और छह दिन लगे।

राजसिंह ने स १७२६ कार्तिक कृष्णा द्वितीया को सौ पल सोने के पाँच कल्पद्रुमोसहित महाभूतघट[1] और हिरण्याश्वरथ[2] नामक दो महादान दिये। महाभूतघट सौ पल सोने से बना था और हिरण्याश्वरथ एक हजार के मूल्य का था। इन दोनों दानो मे ११६७० रुपये व्यय हुए।

महाराणा ने सुवर्णशैल पर 'राजमदिर' नामक एक अनुपम राजप्रासाद बनवाया और उसमे स १७२६ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी के दिन प्रवेश किया।

---

१ देखिये परिशिष्ट सख्या ३।

२ वही।

स १७२७ म उसने अपने जन्मदिन के अवसर पर हेमहस्तिरथ[1] नामक महादान दिया। उसमें एक हजार बीस तोले सोना लगा।

इसी वर्ष आषाढ कृष्णा चतुर्थी को उसने नौका-स्थापन का मुहूर्त निकलवाया। लेकिन सरोवर म इतना जल नहीं था कि नौका तरायी जा सकती। इस कारण मुहूर्त से एक दिन पूर्व तृतीया को लोगो ने इस सबंध में विचार किया। सोचा गया कि एक ओर तो सरोवर में जल नहीं है और दूसरी ओर इस वर्ष दूसरा मुहूर्त नहीं आ रहा है। यही नहीं, अगले वर्ष भी बृहस्पति के सिंहराशि पर होने से मुहूर्त नहीं आ सकेगा। इस पर राणावत रामसिंह जो तडाग के निर्माण-कार्य में प्रमुख था, बोला— सरोवर म और पानी भरकर नौका-स्थापन का मुहूर्त साधा जा सकता है। तब पुरोहित गरीबदास से राजसिंह ने कहा कि बड़े-बड़े लोगो की बातें सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। लेकिन यह काम तो होगा। पुरोहित का कथन सुनकर राजसिंह को प्रसन्नता हुई। गरीबदास ने वरुणसूक्त[2] का जाप करने के लिये ब्राह्मणो को आदेश दिया। महाराणा ने भी उक्त मुहूर्त पर नौका-स्थापन की प्रतिज्ञा कर ली। तब इन्द्र ने यह सोचकर कि यदि इस समय वर्षा नहीं हुई तो लोग मुझे दोषी ठहराएँगे तृतीया के दिन दूसरे प्रहर म वर्षा की और राजसिंह ने यथा समय नौकाधिरोहण किया।

स १७२८ में ज्येष्ठ महीने की पूर्णिमा को सूत्रधारो ने राजसिंह की आज्ञा से नाले का मुँह बन्द कर दिया।

महाराणा ने स १७२९ के माघ महीने में चन्द्रग्रहण के अवसर पर कल्पलता[3] नामक दान दिया जो २५० पल सोने का बना था। इसी प्रकार १८० तांबे सुवर्ण के बने पात्र हल एव साथ में मावली गाँव देकर उसने

---

१ देखिये परिशिष्ट संख्या ५।

२ वरुणसूक्त = वरुण सबधी वैदिक मन्त्र।

३ देखिये परिशिष्ट संख्या ८।

पचलागल'[1] नामक महादान प्रदान किया। उक्त दानो दानो मे १०२८ तोले सुवण लगा।

स १७२९ फाल्गुन कृष्णा ११ को राजसिह ने मुख्य सेतु पर सगिकाय[2] का मुहूर्त करवाया। ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी के दिन उसने एकलिंगजी के निकट इन्द्रसर नामक सरोवर पर एक सुदर व सुदृढ परकोटा बनवाया जिसम चार प्रतोलिया रखी गई। इस काम मे अठारह हजार रुपये व्यय हुए। महाराणा के आदेश से रणछोड भट्ट ने एक प्रशस्ति की रचना की जिसे सुनकर उसने उसे शिला पर खुदवाने की आज्ञा दी।

ग्यारवा सग—इस सग में ५७ श्लोक हैं जिनमें राजसमुद्र के सेतुओ का वणन है।

मुख्य सेतु—इसकी लबाई नीव म ५१५ गज है और सिरे पर ५८१। इसकी चौडाई नीव में ५५ और सिरे पर १० गज है। ऊचाई में यह २२ गज नीव मे तथा ३५ गज उपर है। ऊचाई का विवरण इस प्रकार है— ८ गज का पीठ, १॥ गज की तीन मखलाएँ, १२॥ गज के ३ तिलक और १३ गज के ४ स्यर। पृथ्वी पर की यह ऊचाई ३५ गज हुई। नीव की ऊचाई जोडने पर सेतु की कुल ऊँचाई ५७ गज होती है। उक्त चार स्यरों में से प्रत्येक में ९ सोपान हैं जिनकी कुल सख्या ३६ है।

यहाँ ३ बुरिजकोष्ठ हैं। प्रासाद की ओर बना कोष्ठ लबाई मे ५० और निगम मे २५ गज है। उसका वृत ७५ तथा ऊचाई ३० गज है। मध्य का कोष्ठ लबाई में ७५ और निगम में ३७॥ गज है। उसका वृत ११२॥ तथा ऊचाइ ३५ गज है। तीसरा कोष्ठ प्रथम कोष्ठ के समान है। मिट्टी का भराव १४५ गज है। सेतु के पिछले भाग की लबाई ७०० गज कही

---

१ देखिये परिशिष्ट सख्या ३।

२ पत्थर जोडने का काम।

गई है। उसका विस्तार नीव में १८ और ऊपर ५ गज है। ऊँचाई में व २८ गज है।

सेतु पर चार वद[1] बने हैं जिनमें से एक राजमदिर की शिशा चतुरस्र स्थान पर निर्मित है। वहाँ एक रहट लगा है जो राजमन्दिर स्थि वापिका में जल पहुँचाने के लिए है।

नौ चोकियो वाल यहाँ ३ मडप हैं। पहले मडप में एक गवाक्ष जिसस राजसमुद्र का जल देखा जाता है। शप दो राजमडप हैं। इन अतिरिक्त यहाँ एक और मडप है जो ६ चतुष्किया वाला है। सेतु के पिछ भाग में ० मडप और एक सभामडप बना है।

निम्न सेतु—इसकी लबाई ४३२ गज है। इसका विस्तार नीव १५ और सिरे पर ५ गज है। ऊँचाई में यह १० गज है।

भद्रसेतु—इसकी लबाई १४४ गज है। चौडाई नीव में १२ तथ सिरे पर ५ गज है। ऊँचाई में १३ गज है। यहा एक चतुष्कोण कोट बना है। मिट्टी का भराव २० गज है।

कान्करोली का सेतु—इस सेतु की लबाई नीव में ५५० और सि पर ७८६ गज है। इसका विस्तार नीव में ३५ तथा सिरे पर ७ गज है इसकी ऊँचाई नीव में १७ और ऊपर ३८ गज है। यहा तीन कोष्ठ बने हैं सभामडप की ओर बना कोष्ठ विस्तार में २८ और निगम में १४ गज है इसकी ऊँचाई ३६॥ गज है। मध्य का कोष्ठ विस्तार में ३६ निगम में १ और ऊँचाई में ३८ गज है। पूर्व दिशा म बना कोष्ठ विस्तार में २८ निगम में ०२ और ऊँचाइ में ३७ गज है। मिट्टी का भराव १४५ गज है सेतु के पिछले भाग की लबाई १००० गज है। उसका विस्तार नीव में १ और सिरे पर १० गज है। उसकी ऊँचाई ३८ गज होती है पर आ

---

१ वेद = वेदी।

२२ गज है। मिट्टी के भराव में वहाँ शिव का एक प्राचीन मंदिर आ गया था जिसे सुरक्षित कर लिया गया और दर्शनार्थियों के लिये वहाँ एक मार्ग बनाया गया।

इस सेतु के अग्र भाग पर चार स्तंभों वाले तीन मंडप तथा एक सभामंडप है। सेतु के आगे पर्वत पर जो शिलाकाय हुआ है उसकी लंबाई ३०० गज है। चौड़ाई और ऊँचाई में वह ५ गज है। गौघाट के पार्श्व में उसकी लंबाई ५४ और विस्तार १० गज है। उसकी ऊँचाई ३ गज है। गौघाट की लंबाई और चौड़ाई ५४-५४ गज है। नींव में उसकी ऊँचाई ५ गज है। वहाँ एक मंडप बना है।

आसोटिया ग्राम के पार्श्व में बना सेतु—इसकी लंबाई २०६८ गज है। इसका विस्तार नींव में १८ और सिरे पर ७ गज है। ऊँचाई में यह २४ गज है। यहाँ दो कोष्ठ बने हैं। पहला कोष्ठ अष्टकोण है। वह लंबाई में २८ निर्गम में १४ तथा ऊँचाई में २४ गज है। दूसरा कोष्ठ 'अर्द्ध चन्द्र' नाम से प्रसिद्ध है। उसकी लंबाई २० चौड़ाई १० और ऊँचाई १२ गज है। मिट्टी का भराव १४५ गज है। सेतु के पिछले भाग की लंबाई नींव में १३०० गज और इतनी ही सिरे पर है। उसका विस्तार १० और ऊँचाई ५ गज है। इस सेतु के अग्र भाग पर २ मंडप बने हैं।

वांसोल ग्राम के पार्श्व में बना सेतु— यह सेतु १२२४ गज लंबा है। इसका विस्तार नींव में १८ और सिरे पर ५ गज है। इसकी ऊँचाई १३ गज है। यहाँ तीन कोष्ठ हैं। कोण में स्थित पहला कोष्ठ चतुष्कोण है। लंबाई और चौड़ाई में वह २०-२० गज है। उसकी ऊँचाई १२ गज है। यहाँ एक रहँट भी है।

मध्य का कोष्ठ अर्द्ध चन्द्राकार है। लंबाई और निर्गम में वह १२ गज है। उसकी ऊँचाई १७ गज है। तीसरा कोष्ठ अष्टकोण है और 'कमल-बुर्ज' नाम से प्रसिद्ध है। लंबाई-चौड़ाई में वह ३० गज है। उसकी

ऊंचाई ९ गज है। वहाँ सगमरमर का बना एक सुन्दर मडप है। उसमें आठ पुत्तलिकाएं बनी हैं।

ग्यारहवाँ सर्ग—कांकोल गाँव के पास मे बने सेतु पर तीन ओटाए हैं। पहली ओटा की लबाई चौडाई और ऊंचाई क्रमश २५० १० एव १।। गज है। दूसरी ओटा लबाई-चौडाई में पहली ओटा के समान है। ऊंचाई २।। गज है। तीसरी ओटा लबाई मे ३०० और विस्तार मे १० गज है। उसकी ऊंचाई २ गज है। वहाँ तीन मडप बने हैं।

पश्चिम मे मोरचणा गांव की सीमा में सरोवर के भीतर एक पहाडी है जिसकी चोटी पर एक मडप है। वहाँ छह स्तभों वाला एक और मडप है। इस प्रकार मडपो की कुल सख्या २१ है।

राजसमुद्र मे सिवाली भिगावदा भाण लुंाणा वासोल और गुडली नामक गाँव, पसूंद खडी छापरखडी तासोल और मडावर गावों की सीमाए तथा कांकराली, लुहाणा और सिवाली के जलाशय निवान वापी एव कूप जिसकी सख्या ३० है, डूब हैं। इस सरोवर में तीन नदियाँ गिरी हैं—गोमती ताल और केलवा की नदी।

सेतु की सपूर्ण लबाई ६४१३ गज है। शालायोग के अनुसार सूत्रधारो ने इसकी लबाई आठ हजार गज बताई है। विश्वकर्मा के मत से तडाग की लबाई अधिक से अधिक छ हजार गज होती है। इस आधार पर इतना लबा सरोवर किसी ने बनाया हो, इसमे सन्देह है। लेकिन राजसिंह ने तो सात हजार गज लबे जलाशय की रचना की है।

राजसमुद्र के सेतु पर १२ कोष्ठ हैं। यहाँ कुल ४८ मडपो का निर्माण हुआ था जिनमे कुछ वस्त्र के कुछ काष्ठ के और कुछ पत्थर के थे। उनमें से अब पत्थर के बने केवल दो मडप शेष रहे हैं।

पहले यहाँ महाराणा उदयसिंह ने सेतु बाँधने का बडा प्रयत्न किया था। पर उसमें उसे सफलता नही मिली। तब उसने उदयसागर बनवाया। तदनन्तर

कुबेर के समान राजसिंह ने धन का व्यय किया और इस सेतु का निर्माण करवाया। पृथ्वी पर सेतुओं के निर्माता तीन हुए हैं—रामचन्द्र राणा उदयसिंह और राजसिंह। इसके अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति न तो हुए न होंगे और न हैं।

सं १७३० के भाद्रपद महीने में ताल नामक नदी पूरे वेग से आई, जिससे वहाँ के मकान जलमग्न होकर नष्ट हो गये। इसी वर्ष आश्विन में आधी रात में गोमती नदी आई। उसके गिरने पर राजसमुद्र में आठ हाथ पानी चढ़ा। राजसिंह ने उस जल को सरोवर में रखा।

सं १७३० के माघ महीने की पूर्णिमा को राजसिंह ने 'सुवर्णपृथिवी'[1] महादान दिया। इस दान में २८ हजार रुपये खर्च हुए।

सं १७३१ श्रावण शुक्ला ५ को राजसमुद्र में सुन्दर नौकाएँ डाली गईं, जिनको देखने के लिये लाहौर गुजरात और सूरत के सूत्रधार वहाँ आये। इसी वर्ष अपने जन्म दिन पर महाराणा ने पाँच सौ पल सोने का विश्वचक्र[2] महादान प्रदान किया।

इस सर्ग में ४१ श्लोक हैं।

तेरहवाँ सर्ग—राजसमुद्र का निर्माण हो चुकने पर राजसिंह ने उसकी प्रतिष्ठा के अवसर पर राजाओं दुर्गाधिपतियों तथा अपने संबंधी भूपालों को निमंत्रण दिया और उन्हें लिवा लाने के लिये उनके पास अश्व रथ पालकियाँ हथिनियाँ विश्वासपात्र मनुष्य व ब्राह्मण भेजे।

महाराणा के कर्मचारियों ने उस समय वस्त्र आभूषण, रत्न, मुद्राएँ, पात्र, कस्तूरी आदि विपुल मात्रा में जमा किये। धन का समुचित प्रबन्ध किया गया। धान्यादि के बाजार लगे और शिविर एवं नाना प्रकार की

---

१ देखिये परिशिष्ट संख्या ३।

२ वही।

बड़ी-बड़ी शालाओं का यहाँ निर्माण हुआ। खाद्य सामग्री की व्यवस्था की गई। राजसिंह ने दान करने के लिये हाथी, घोड़े तथा रथ एकत्र किये गये। महाराणा के सन्मुख तब किसी व्यापारी ने २० मन्मत्त हाथी प्रस्तुत किये। राजसिंह ने उनमें से १७ हाथी खरीदे। इसके बाद कोई दूसरा व्यापारी दो हाथी लेकर आया। यह सोचकर कि प्रतिष्ठा के अवसर पर दान करने के लिये हाथियों की आवश्यकता होगी राजसिंह ने उनको भी खरीद लिया।

आमन्त्रित राजा सपरिवार वहाँ आये थे। उनके घोड़ा हाथियों और रथों से समूचा नगर भर गया। उस अवसर पर ब्राह्मण जाति के धुरंधर विद्वान् अनेक चारण कवि और सुप्रसिद्ध वन्दीजन भी आये।

निमन्त्रण देने पर अपने-पराये लोगों द्वारा भेंट स्वरूप जो वस्तुएँ प्राप्त हुईं महाराणा ने उनमें से कुछ वस्तुएँ रखीं और कुछ उनको वापस लौटा दी।

सं० १७३२ माघ शुक्ला द्वितीया को राजसिंह की रानी श्री रामरसदे ने देवारी के घाट में बनी वापिका की प्रतिष्ठा करवाई। इस वापी के निर्माण में २४ हजार रुपये व्यय हुए।

महाराणा ने राजसमुद्र के सेतु पर तीन मंडप तयार करने के लिये सूत्रधारों को आदेश दिया। एक मंडप सरोवर की प्रतिष्ठा के निमित्त तथा शेष दो सुवर्ण-तुलादान एवं हाटक-सप्तसागरदान के लिये बनाये गये। तदनन्तर उसने जलाशय की प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त निकलवाया—सं० १७३२ माघ शुक्ला १० शनिवार। इसके पूर्व माघ शुक्ला ५ को उसने अधिवासन कर मत्स्यपुराण के अनुसार २६ ऋत्विजों का वरण किया।

चौदहवाँ सर्ग—राजसिंह की पट्टरानी का नाम सदाकुँवरि था। वह परमार कुल-भूषण राव इन्द्रभान की पुत्री थी। सदाकुँवरि ने जब रजत-तुलादान करने की आज्ञा दी तब लोगों ने इसके लिये रातोंरात एक मंडप तयार किया।

पुरोहित गरीबदास और उसके पुत्र ने सोने एव चादी के तुलादान करने के लिये भी मडप बनवाये। राणा अमरसिंह के पुत्र भीमसिंह की पत्नी ने भी रजत-तुलादान करने का निश्चय किया। महाराणा के लोगो ने उसके लिये अविलब एक मडप बनाया।

वेदला के राव बल्लू चौहान का पुत्र रामचन्द्र था। उसके द्वितीय पुत्र का नाम केसरीसिंह था जिसे राजसिंह ने सलूबर का राव बनाया था। उसने चांदी की तुला करने के लिये अपने भाई राव सबलसिंह से परामश किया। सबलसिंह ने कहा कि तुम्हे राजसिंह ने राव बनाया है। इसलिये तुमको तुलादान करना चाहिये। यह सुनकर केसरीसिंह तैयार हो गया। उसने भी एक मडप बनवाया। रजत-तुलादान करने के लिये बारहट केसरीसिंह ने भी सेतु-तट पर खादरवाटिका के समीप एक सुदर मडप तैयार करवाया।

इसी वष माघ शुक्ला ७ के दिन राजसिंह की रानी, राठौड रूपसिंह की पुत्री ने राजनगर मे वापिका की प्रतिष्ठा कराई। इस वापिका के निर्माण कार्य पर ३० हजार रुपयो का व्यय हुआ।

नवमी के दिन राजसिंह पुरोहित के साथ मडप में पहुँचा। उसने प्रथम दिन एकभुक्त रहकर उपवास किया। वहा उसने पुरोहित एव अन्य ब्राह्मणो के साथ स्वस्तिवाचन किया। तब उसने पृथ्वी गणेश कुलदेवी एव गोविन्द की पूजा की। फिर उसने पुरोहित गरीबदास एव अन्य ब्राह्मणो का वरण किया।

वरणोपरान्त महाराणा ने ब्राह्मणो को दक्षिणा दी। तब गरीबदास को वस्त्र मुक्ता-मणि-जटित कुडल, मणि-जटित अगूठिया रत्न-जटित कडे एव अगद सोने के यज्ञोपवीत नाना प्रकार के आभूषण, सुवण के जल-पात्र और भोजन-पात्र मिले। अन्य ब्राह्मणो को महाराणा ने अनेक सुवर्णाभूषण, मणि-जटित अगूठियाँ चांदी के पात्र और पर्याप्त वस्त्र प्रदान किये।

इस सग म ४० श्लोक हैं।

पन्द्रहवां सर्ग—इसके बाद राजसिंह ने बड़े ठाट-बाट से जल यात्रा की तदनन्तर वह मंडप में पहुँचा और वहाँ उसने पूजा-विधान किया। रात्रि जागरण कर दूसरे दिन वह मंडप में पहुँचा। उसने अपने समस्त कुटुंबियों, पुरोहितों की पत्नियों तथा राजाओं की रानियों को वहाँ बुलाया और प्रतिष्ठा के अद्भुत एवं सुन्दर कार्य को देखने के लिये उन्हें वहाँ बैठाया। पटरानी को साथ लेकर उसने वरुण आदि देवताओं की पूजा की।

महाराणा ने राजसमुद्र को दूसरा रत्नाकर बनाने की इच्छा से उसमें नौ रत्न डाले और मत्स्य, कच्छप एवं मकर छोड़े। बाद में उसने ऋत्विजों की सहायता से गो-तारण की विधि को पूरा किया। गो-तारण के अनन्तर उसने सरोवर के नामकरण के लिये पुरोहित से पूछा। पुरोहित ने कहा कि इसका नाम अरिसिंह बतावेंगे। इस पर महाराणा ने पुनः आज्ञा दी कि इसका नाम पुरोहित को ही बताना चाहिये। तब पुरोहित ने दो नाम बताये—'राजसागर' और 'राजसमुद्र'। महाराणा ने 'राजसागर' को सरोवर के जन्म-नाम और राजसमुद्र को अपरनाम के रूप में स्वीकार किया और पाँच दिन बाद शुभ मुहूर्त में जलाशय का नामकरण किया गया।

ऋत्विजों ने महामण्डप में होम, वेद-पाठ, जप आदि सम्पन्न किये। महाराणा ने राजसमुद्र की प्रदक्षिणा करने का संकल्प किया।

यह सर्ग ३९ श्लोकों में पूरा हुआ है।

सोलहवां सर्ग—महाराणा उदयसिंह ने सं० १६२२ वैशाख शुक्ला तृतीया को उदयसागर की प्रतिष्ठा की थी। जब उसने उसकी परिक्रमा की तब वह [illegible] पालकी में बैठा था। इसलिये जब राजसमुद्र के सूत्र-विधान का अवसर आया तब रावल जसवन्तसिंह राजसिंह से बोला कि आपको भी राणा उदयसिंह की तरह पालकी में बैठ कर या अश्वारूढ होकर राजसमुद्र की प्रदक्षिणा करनी चाहिये। प्रदक्षिणा पूरी होने पर वह अश्व किसी ब्राह्मण को दे दिया जाय। राजसिंह सुनकर चुप रहा।

इसके बाद वह बड़े ठाट-बाट से प्रदक्षिणा करने के लिये तैयार हुआ। उसकी समस्त रानियों के वसनाचलों से उसका अशुकाँचल बँधा हुआ था। वेद-विहित सूत्र-सवेष्टन कार्य के लिये उसने हाथों में कुकुम-रंजित नवतन्तु ले रखे थे।

यह सोचकर कि महाराणा सुख से परिक्रमा कर सके उसके लोगों ने मार्ग में वस्त्रों की पट्टियाँ बिछाई। पर राजसिंह ने उन्हें पावों से छुआ तक नहीं और उनको वहाँ से हटवा दिया। यही नहीं, उसने पावों पहनी हुई कपड़े की बनी जूतियाँ भी उतार दी। उसके चरण कोमल थे फिर भी वह पैदल ही चला।

राजसमुद्र की परिक्रमा उसने दाहिनी ओर से प्रारम्भ की। प्रदक्षिणा करते समय मार्ग में उसे जो लोग मिले उन्हें प्रचुर दक्षिणा देकर उसने सन्तुष्ट किया। उस समय वर्षा हो रही थी।

पैदल यात्रा में राजसिंह का छोटा भाई अरिसिंह भी था। थका हुआ देखकर महाराणा ने उसे पालकी में बैठने का आदेश दिया। उसकी परमार-वंशीय रानी भी थक गयी थी। उसे भी उसने पालकी में बैठने की आज्ञा दी।

परिक्रमा पूरी कर चुकने पर राजसिंह ने समस्त पुष्प-मालाएँ, जो उसे प्रदक्षिणा करते समय प्राप्त हुई थी, राजसमुद्र में डाल दी। राजसमुद्र १४ कोस लबा-चौड़ा है। इसकी प्रदक्षिणा करते समय उसने मार्ग में पाँच शिविर लगाये।

उस अवसर पर आये हुए लोगों को महाराणा ने अन्न, धन वस्त्रादि देकर सन्तुष्ट किया। तत्पश्चात् उसने सुवर्ण-तुला-दान एवं सप्तसागरदान करने के पूर्व चतुर्दशी के दिन अधिवासन किया। दोनों मडप सजाये गये। पृथ्वी, विष्णु गणेश, और वास्तु की पूजा कर उसने पुरोहित आदि एवं ऋत्विजों का वरण किया। फिर हवन, पूजन, वेद-पाठ आदि हुए। महाराणा पालकी में बैठकर अपने शिविर में पहुँचा। आज उसके उपवास का छठा

दिन था। उसने थोड़ा-सा फलाहार किया। बाद में उसने राजसमुद्र की प्रतिष्ठा की सामग्री तैयार करने के लिए लोगों को आज्ञा दी।

इस सर्ग में ६० श्लोक हैं।

सत्रहवाँ सर्ग— इसके बाद पूर्णिमा के दिन राजसिंह पत्नी-सहित मण्डप में पहुँचा। साथ में पुरोहित था। अरिसिंह नामक उसका भाई, जयसिंह भीमसिंह गजसिंह सूरजसिंह इन्द्रसिंह बहादुरसिंह नामक उसके पुत्र, अमरसिंह सबलसिंह आदि उसके पौत्र, मनोहरसिंह देवसिंह नारायणदास बल्लू पुरोहित रणछोड़राय भीमू आदि मन्त्री, अनेक क्षत्रिय एवं ठाकुर भी थे। वहाँ पूर्णाहुति देकर उसने राजसमुद्र की प्रतिष्ठा-विधि सम्पन्न की।

फिर वह सुवर्ण-सप्तसागरदान करने के लिए मंडप में पहुँचा। साथ में उसका परिवार भी था। वहाँ उसने उक्त दान के निमित्त पूर्णाहुति आदि सब कर्म सम्पन्न किए। ब्रह्मा कृष्ण महेश सूर्य इन्द्र रमा एवं गौरी के सात कुंडों का निर्माण हुआ। उनका दान कर पत्नी-सहित राजसिंह ने पुरोहितों तथा ऋत्विजों के आशीर्वाद प्राप्त किए।

तदनन्तर तुला-मंडप में पहुँचकर उसने तुला-दान की सम्पूर्ण विधि सम्पन्न की। जब वह तुला पर आरूढ़ हुआ तब उसने दासियों से कहा कि मुक्ता-मुद्राओं से भरी हुई कोथलियाँ लेकर लाते जाओ। उसने फिर कहा— 'यदि सोना थोड़ा हो तो सात सागरों में से सोने का बना एक सागर शीघ्र ले आओ।' तुला पर बहुत सोना चढ़ाया गया। राजसिंह का पलड़ा ऊँचा और सोने का नीचा था। सोने का कुल वजन बारह हजार तोले था। राजसिंह ने तुला पर अपने साथ अपने ज्येष्ठ पौत्र अमरसिंह को भी बैठा लिया था।

तुलादान कर उसने ग्राम हाथी अश्व पृथ्वी गायें आदि दान में दी।

इस सग मे ४१ श्लोक हैं।

अठारहवाँ सग—राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के अवसर पर राजसिंह ने पुरोहित गरीबदास को निम्नलिखित १२ गाँव प्रदान किये—

घामा गुगा सिरथल सालोल, आलोग, मझेरा, धनेरिया अवेरी, भाड़सादड़ी ऊमरोल, मसाना तथा भावा।

इन गावो के अतिरिक्त कई दूसरे गाँव और कई हलवाह भूमि उसने अन्य ब्राह्मणा को दी और उनसे आशीवाद प्राप्त किया।

इसके बाद राजसिंह की पटरानी ने विधिवत् तुलाधिरोहण कर चाँदी का तुलादान किया। गरीबदास ने सोने की तुला की और उसके पुत्र रणछोडराय ने चादी की। इनके अतिरिक्त टोडा के राजा रायसिंह की माता सनूँवर के राव केसरीसिंह चौहान तथा बारहट केसरीसिंह ने चाँदी के तुलादान किये।

उसी दिन महाराणा ने सरोवर को 'राजसमुद्र,' पवत पर बने प्रासाद को राजमन्दिर और नगर को राजनगर' नाम दिया। तदनन्तर उसने ब्राह्मणो को अन्न, पक्वान्न आदि दिये। पुरोहित को व ऋत्विजों एव अन्य ब्राह्मणो को भी प्रचुर द्रव्य दिया गया।

इस सग म ४० श्लोक हैं। श्लोक २६–२७ मे कवि ने राजसिंह को श्रीपति [= कृष्ण] और अपने को सुदामा कहकर उससे धन की याचना की है। इससे आगे श्लोक ३४ और ३६ म, राजसमुद्र के किनारे काँकरोली म यवन–त्रस्त द्वारकेश के आगमन का उल्लेख है।

उन्नीसवाँ सग—इस सग मे ४३ श्लोक हैं। प्रारम्भ म २१ श्लोको म मुख्य रूप से राजसमुद्र का वणन है। इसके बाद कथा–क्रम इस प्रकार चलता है।

राजसिंह ने राजनगर के बाहर गाडामण्डल[1] बनाया। वहाँ नाना देशों से चलकर असंख्य ब्राह्मण पहुँचे जिनमें ४६ हजार ब्राह्मणों के गाँवों और नामों का पता था। पुरोहित गरीबदास ने अपने कर्मचारियों के सहयोग से उन ब्राह्मणों को राजसिंह के सप्तसागरदान एवं तुलादान का धन दिया। पटरानी के तुलादान का द्रव्य, पुरोहित गरीबदास की सोने की तुला का सुवर्ण तथा उसके पुत्र रणछोडराय के तुलादान का धन भी उन ब्राह्मणों में वितरित किया गया। उस अवसर पर महाराणा ने अन्न का दान भी किया।

तदनन्तर सभामण्डपस्थित राजसिंह ने ब्राह्मणों, याचकों, चारणों, वन्दीजनों तथा अन्य सभी लोगों को सोना, रुपये, आभूषण, जरीन वस्त्र, हाथी, घोड़े तथा गाँवों के ताम्रपत्र प्रदान किये।

इसके बाद निमन्त्रण पाकर आये हुए राजाओं, अपने-परायों समस्त ब्राह्मणों तथा वैश्य आदि सभी लोगों को उसने जरीन वस्त्र, घोड़, हाथी, मणि आभूषण दिये और उन्हें अपने घर लौटने की आज्ञा दी। आमन्त्रित राजाओं दुर्गाधिपों, बान्धवों तथा अपने-परायों के लिये उसने जरीन वस्त्र, हाथी, घोड़े और आभूषण भिजवाये।

बीसवाँ सर्ग—राजसिंह ने जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह राठौड़, आँबेर नरेश रामसिंह कछवाहा, बीकानेर के स्वामी अनूपसिंह, बूँदी-नरेश भावसिंह हाडा, रामपुरा के चन्द्रावत मोहकमसिंह, जसलमेर के रावल अमरसिंह भाटी तथा रींवा के स्वामी भावसिंह के लिये एक-एक हाथी, दो-दो घोड़े तथा जरीन वस्त्र भिजवाये। ये हाथी और घोड़े ७८४२६ रुपयों की कीमत के थे।

डूंगरपुर के रावल जसवन्तसिंह के लिये ६४०० रु० के मूल्य का एक हाथी और जरीन वस्त्र भेजे गये। इसके पश्चात् राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के

---

१ गाडामडल = हाता।

अवसर पर, महाराणा ने उसे जरीन वस्त्र और डेढ हजार रुपयो की कीमत के दो घोडे दिये थे।

टोडा के स्वामी रायसिंह के कुमारो के लिये उसकी माता को एक हथिनी दी गई, जिसका मूल्य तीन हजार रु० था। निमन्त्रण पाकर आये हुए राजाओ को ८३११ रु की कीमत के ३८ अश्व दिये गये।

महाराणा ने अपने प्रधान भीखू दोसी तथा राणावत रामसिंह को एक-एक हाथी और जरीन वस्त्र प्रदान किये। ये हाथी क्रमश ११००० और ७००० रुपयो की कीमत के थे। अन्य ठाकुरो एव सरदारों को उसने २५५५१ रु की कीमत के ६१ घोड दिये।

शासन-युत चारण भाटो को महाराणा ने १३१३६ रुपया के दो सौ अश्व, पडितों एव कवियो को १२२२६८ रुपया के तेरह हाथी एव हथिनियाँ तथा चारणो-भाटो को २७५७१ रु के २०६ अश्व प्रदान किये। लाधू मसानी को भी तब तीर्थ-यात्रा के लिये प्रचुर धन मिला।

इस सर्ग मे ५५ श्लोक हैं।

इक्कीसवा सर्ग—इस सर्ग के प्रारम्भ म राजसमुद्र के निर्माण मे लगे धन का विवरण है। इसके निर्माण-कार्य एव इसकी प्रतिष्ठा आदि पर १५१७२२३३ रु० और ४ आ० का व्यय हुआ था।

स० १७३४ मे राजसिंह ने अपने जन्म दिन के अवसर पर दो महादान दिये—कल्पद्रुम[1] और हिरण्याश्व[2]। पहले महादान मे दो सौ पल और दूसरे म अस्सी तोले सोना लगा। इसी वर्ष श्रावण मे भीलवाडा जाते हुए उसने शत्रु-पीडित सिरोही के राव वैरिसाल को वहाँ का राजा बनाया और उससे एक लाख रुपये तथा कोरटा आदि पाँच गाव लिये वैरिसाल के देश मे

---

१ देखिये, परिशिष्ट सख्या ३।

२ वही।

महाराणा का एक सुवर्ण-कलश योगी में चला गया था। राजसिंह ने उससे उस कलश के ५० हजार रुपये वसूल किये।

इस सर्ग में ४५ श्लोक हैं। श्लोक ३४-४१ में राजसिंह के पराक्रम और दान की महिमा कही गई है।

बाईसवाँ सर्ग—सं० १७३५ चैत्र शुक्ला ११ को राजसिंह की आज्ञा से महाराजकुमार जयसिंह अजमेर पहुंचा। वहाँ से वह दिल्ली जाकर औरंगजेब से मिला। यह भेंट दिल्ली से दो कोस इधर एक शिविर में हुई। औरंगजेब ने सत्कार के साथ उसे मानियों की माला, उरोभूषा, जरीन वस्त्र एक अलंकृत हाथी एवं कई अश्व दिये। इसी प्रकार चन्द्रसेन भाला और पुरोहित गरीबदास को जरीन वस्त्र तथा अश्व और अन्य ठाकुरों को उसने यथोचित उपहार दिया।

इसके बाद जयसिंह ने गणयुक्त ईश्वर शिव के दर्शन किये और गंगा-तट पर स्नान कर चाँदी की तुला की। उसने एक हथिनी एवं एक अश्व भी दान में दिया। तदनन्तर वह वृन्दावन और मथुरा की यात्रा करता हुआ ज्येष्ठ में महाराणा के पास पहुंचा।

सं० १७३६ पौष कृष्णा एकादशी के दिन औरंगजेब मेवाड़ में आया। इसके पहले उसका पुत्र अकबर और सेनापति तहव्वरखाँ सेना लेकर राजनगर के राजमन्दिर में पहुंचे। वहाँ उनके सैनिकों ने बड़ा अनाचार किया। तब सबलसिंह पूरावत का पुत्र शक्त उनसे लड़ा। इस लड़ाई में एक चूंडावत वीर और बीस अन्य योद्धा मारे गये।

फिर महाराणा ने राजपूतों को आदेश दिया कि वे युद्ध करने के लिये कृतसंकल्प होकर देवारी के घाट से एवं अन्य घाटों से आवें। साथ में तोपें और गोला-बारूद भी हो। दिल्लीपति भी देवारी के घाटे में आया और उसका द्वार गिराकर २१ दिन वहाँ रहा। कहा जाता है कि एक समय वह रात में छिप कर उदयपुर पहुंचा। अकबर और तहव्वरखाँ भी वहाँ जा पहुंचे।

अकबर वहाँ से एकलिंगजी की ओर रवाना हुआ। लेकिन वह अवेरी और चीरवा के घाटा को देखकर वापस अपने शिविर मे लौट आया। तब करोटपुर के भाला प्रतापसिंह ने शाही सेना से दो हाथी छीनकर महाराणा को भेंट किये। भदेसर के बल्ला लोगो ने कई हाथी, घोडे और ऊट बादशाह की सेना से लेकर महाराणा को नजर किये। महाराणा तब नणवारा मे रह रहा था।

इस प्रकार जब ५० हजार लोग मारे गये तब औरगजेब दूसरा तरीका बनाकर चित्रकूट पहुँचा। अकबर भी वहाँ गया और छप्पन' प्रदेश से हसनअलीखाँ वहाँ जा पहुँचा।

बादशाह के चित्रकूट चले जाने पर राजसिंह नाई गाँव की ओर आया। उसने कोटडी गाव से कुवर भीमसिंह को तुरत रवाना किया। सेना लेकर भीमसिंह ईडर पहुँचा। ईडर को उसने नष्ट कर दिया। सदहमा वहा से भाग गया। फिर वह बडनगर को लूटकर और वहा स दड के रूप म ४० हजार रु० वसूल कर अहमदनगर पहुँचा जहाँ उसने दो लाख रुपयो की वस्तुएँ लुटवाई। औरगजेब न अनेक देवमन्दिर गिरवाये थे। इसका बदला भीमसिंह ने अहमदनगर की एक बडी और तीन सौ छोटा मसजिदें गिराकर लिया।

महाराणा की आज्ञा से महाराजकुमार जयसिंह भी शत्रु पर विजय पाने के लिये चित्रकूट की तलहटी की ओर रवाना हुआ। उसक साथ झाला चन्द्रसेन, सेनापति सबलसिंह चौहान और उसका भाई राव केसरीसिंह गोपीनाथ राठौड अरिसिंह का पुत्र भगवतसिंह तथा अन्य सरदारो के अतिरिक्त तेरह हजार अश्वारोही एव बीस हजार पदाति सेना थी। वहाँ पहुँचकर सरदारा ने रात म युद्ध किया। उस लडाई म शाही सेना के एक हजार सिपाही, तीन हाथी तथा कई घाड मारे गये। अकबर वहाँ से भाग गया। राजपूत योद्धाओ ने शाही सेना से पचास घोड लाकर जयसिंह को भेंट किये। जयसिंह महाराणा के पास लौट आया।

केसरीसिंह शक्तावत के पुत्र कुँवर गग ने शाही सेना से १८ हाथी कई घाड और ऊट लाकर महाराणा को नजर किये।

महाराणा ने सेना देकर कुँवर भीमसिंह को फिर भेजा। उसने देसूरी की नाल को लाँघकर पानोरा नगर में पहुँचकर और तहव्वरखाँ से भीषण युद्ध किया। बीका सोलंकी भाग की रक्षा करता। कुँवर गजसिंह भी महाराणा की आज्ञा से सेना लेकर बेगू पहुँचा जिसे उसने नष्ट कर दिया।

यह सुनकर औरंगजेब ने तय किया कि सात लाख अथवा तीन लाख रुपये लेकर महाराणा से संधि कर ही लेनी चाहिये।

इस सर्ग की श्लोक-संख्या ५० है।

पच्चीसवाँ सर्ग—सं० १७३७ कार्तिक शुक्ला दशमी के दिन महाराणा राजसिंह का स्वर्गवास हुआ। इसके १५ दिन बाद कुरज नामक नगर में जयसिंह की गद्दीनशीनी हुई।

सं १७३७ के मार्गशीर्ष में कुरज में जयसिंह ने सुना कि देसूरी की नाल को लाँघकर तहव्वरखाँ आया है। तब उसने उससे लड़ने के लिए अपने भाई भीमसिंह को भेजा। उसके साथ बीका सोलंकी भी था। दोनों ने मिलकर शत्रु-सैन्य का संहार किया। तहव्वरखाँ चारों ओर से घिर गया था। वह आठ दिन बाद वहाँ से छूटा।

महाराणा घाणेरा के नजदीक पहुँचा और दिलावरखाँ छप्पन प्रदेश के पहाड़ों में। राणा के सैनिकों ने मार्ग देकर उसे आगे बढ़ने दिया। जब वह गोगूदा के घाटे में जा पहुँचा तब सभी घाटों के रास्ते उन्होंने बन्द कर दिये। एक घाटे पर रावत रतनसी विद्यमान था। उसने दिलावरखाँ को वहाँ से नहीं निकलने दिया। फिर जयसिंह ने संधि करने के लिए उसके पास भाणा वरसा को भेजा। वरसा ने दिलावरखाँ से कहा कि आप बादशाह के सम्मानित व्यक्ति हैं। आप के साथ ११ हजार अश्वारोही हैं। फिर भी महाराणा का केवल एक राजपूत घाटे को रोके हुए है। आप निश्चिन्त होकर निकल सकते हैं। महाराणा का आपके प्रति स्नेह है। इस कारण आप यहाँ तक आ सके हैं। यदि आप निकलना चाहें तो निकल सकते हैं और रहना चाहें तो

रह सकते हैं। इस पर नवाब बोला कि पीछे जो मेरे सैनिक आ रहे हैं, उनकी भी सहमति हो।

इसके पहले दलेलखाँ ने तीनो घाटो के मार्गों को देखने के लिये कुछ सनिक भेज रखे थे। उन्होने लौटकर बताया कि तीनो घाटे बन्द हैं। अत जब वह वहाँ से निकल नही सका तब उसने एक ब्राह्मण को एक हजार रुपये दिये और उसे मार्ग-दर्शन के लिये आगे किया। इस प्रकार वह किसी अन्य मार्ग से रात मे भागने लगा। लेकिन वहा भी रावत रतनसी सेना लेकर जा पहुचा। उसने उससे युद्ध किया। अन्ततोगत्वा दलेलखाँ वहाँ से भाग निकला।

छल से भागकर वह दिल्ली-पति के पास पहुँचा। बादशाह के पूछने पर कि भागकर क्यो आये तथा राणा का पीछा तुमने क्या नही किया उसने बताया कि मुझे वहा अन्न नही मिला। मुझे मारने के लिये महाराणा मेरे पास आ पहुचा। उसने मेरे कई सिपाहियो को मार डाला। अन्नाभाव से प्रति दिन मेरे चार सौ सैनिक मरते थे। इसलिये मैं वहाँ से भाग निकला। यह सुनकर बादशाह घबराया।

तदुपरान्त अकबर महाराणा से सन्धि करने के लिये आया। राणा कर्णसिंह के द्वितीय पुत्र गरीबदास का पुत्र श्यामसिंह भी आया। उसने राणा से सधि की बात की और उसे पक्की कर वह लौट गया। दलेलखा ने सधि को सुदृढ किया और हसनअलीखाँ ने उसकी विधि पूरी की।

जयसिंह ने सधि करने के लिये तयारी की। वह चन्द्रसेन झाला राव सबलसिंह चौहान तथा महाराव वरीसाल परमार को आगे कर राजसमुद्र के अग्रभाग पर पहुचा। उसके साथ राठोड चूँडावत शक्तावत और राणावत राजपूत तथा ७ हजार अश्वारोही एव १० हजार पदल सेना थी।

औरगजेब के पुत्र आजम की आज्ञा से दलेलखा हसनअलीखाँ एव अन्य मुसलमान शासक रतलाम का राठौड रामसिह किशोरसिह हाडा,

गौड़ राजा तथा अन्य हिंदू और म्लेच्छ योद्धा महाराणा के सम्मुख आये।

जयसिंह आजम से मिला। उसके साथ पुरोहित गरीबदास प्रधान भीरू और उसके सरदार थे। आजम ने स्नेहपूर्वक एवं सविनय उसका आदर किया। महाराणा ने आजम को ११ हाथी और ४० अश्व भेंट किये। आजम ने राणा को एक हाथी २८ घोड़े, जरीन वस्त्र और ५० आभूषण दिये। इस प्रकार दोनों में अत्यन्त प्रेमपूर्वक संधि हुई।

अन्त में दलसवाई ने आजम के आगे चन्द्रसेन झाला राव सबलसिंह चौहान रावत रतनसी आदि का परिचय देते हुए कहा कि इन्होंने पहाड़ों में भाग लिया था। लेकिन महाराणा के कथनानुसार इन्होंने बादशाह से स्नेह बनाये रखने के लिये युद्ध नहीं किया। सुनकर आजम ने कहा कि यह सच है। इसके बाद महाराणा अपने शिविर में लौट आया।

इस सर्ग में ६२ श्लोक हैं।

चौबीसवां सर्ग—यह इस काव्य का अंतिम सर्ग है। इसमें ३६ श्लोक हैं। प्रारंभ में महाराणा राजसिंह पौत्र अमरसिंह पटरानी सदाकुंवरी पुरोहित गरीबदास तथा उसके पुत्र रणछोडराय द्वारा किये गये तुलादानों के तोरणों का वर्णन है। ये तोरण राजसमुद्र की पाल पर बने हुए हैं। बाद में राजप्रशस्ति का माहात्म्य वर्णित है।

श्लोक २५–२७ में दयालदास के पराक्रम का वर्णन है। उसने खराबाद को नष्ट किया था और बनेड़ा को लूटा था। धारापुरी को नष्ट कर उसने वहाँ की मसजिदें गिराई थी। अहमदनगर को भी उसने लूटा और नष्ट किया था। वहाँ की बड़ी मसजिद को भी उसने गिराया था। इसके बाद ५ श्लोकों में हीरामणि मिश्र की दानपरायणता का वर्णन है। वह जगदीश मिश्र का पुत्र था। महाराणा ने जब राजसमुद्र की परिक्रमा की तब उसने वहाँ याचकों को प्रचुर धन धान्य बाँटा। इसलिये वह राजसिंह का प्रिय बना।

अन्त में राजसिंह की प्रशंसा के दो सोरठे हैं जो मेवाड़ी बोली मे है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है राजप्रशस्ति नामक यह ग्रन्थ पूरा का पूरा संस्कृत भाषा में लिखा गया है, परंतु इसमे संस्कृत-शब्दावली के साथ-साथ अरबी-फ़ारसी तथा लोक भाषा के शब्दो का प्रयोग भी यथेष्ट मात्रा में हुआ है और यह इसकी एक बहुत बड़ी विशेषता है। इससे इसकी भाषा मे स्वाभाविकता आ गई है। इन शब्दो में कुछ तत्सम रूप मे और कुछ तद्भव रूप मे प्रयुक्त हुए हैं। उक्त दोनो प्रकार के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

(१) अरबी-फ़ारसी के शब्द।

बुरिज (अ० बुर्ज) मसीदि (अ० मस्जिद), सुलतान (अ० सुल्तान), तफे, दफे (अ० दफअ), जहाज (अ०), सलाम (अ०), हिंदू (फ़ा०) इत्यादि।

(२) लोक भाषा के शब्द।

मण शेर (सेर) राणा चोकडी मोटा कोयली लडडू, बारहठ गाडामडल, मेवाड सोर, ढम्बूक इत्यादि।

इसके अलावा इसमें कुछ शब्द ऐसे भी देखने मे आते हैं जो १८ वीं शताब्दी मे प्रचलित थे, पर आज-कल प्रचलित नहीं हैं। उदाहरण के लिये 'विद्वर' शब्द को लीजिये, कठिनाई अथवा मुसीबत के अर्थ मे यह शब्द इस पुस्तक मे तीन जगह प्रयुक्त हुआ है। यथा—

(१) 'विद्वरे त्रिद्वसरसि श्रीमूर्ति स्फाटिकी धृता।"

(सर्ग ४, श्लोक ८)

(२) "शूक्‍रक्षेत्रविप्रेभ्यो ग्रामं पूर्वं तु विद्वरे।'

(सर्ग ५, श्लोक ११)

(१) 'ऐसा निनीश्वराख्या विद्वर मधुसूदन ।
(सर्ग ६, श्लोक २३)

परन्तु आजकल इस शब्द का प्रयोग बिलकुल नहीं होता। न यह संस्कृत आदि के आधुनिक कोष ग्रन्थों में मिलता है। बल्कि इस समय तो यह पता लगाना ही कठिन हो गया है कि मूलतः यह संस्कृत भाषा का है अथवा मध्यदेशीय किसी अन्य लोक भाषा का।

कुल मिलाकर राजप्रशस्ति की भाषा प्रवाहयुक्त व्यवस्थित तथा विषयानुकूल है। पर कुछ ऐसे स्थलों पर जहाँ कवि ने अपना काव्य-कौशल बताने की चेष्टा की है वहाँ शब्द-योजना कुछ जटिल वस्तु व्यञ्जना कुछ अस्पष्ट एवं वर्णन-शैली कुछ अटपटी हो गई है।

राजप्रशस्ति एक ऐतिहासिक काव्य है। इसके प्रणेता रणछोड भट्ट ने इसे महाकाव्य की संज्ञा दी है इतिश्री राजप्रशस्तिनाममहाकाव्ये रणछोड भट्ट विरचिते दशम सर्ग। इसे प्रशस्ति काव्य भी कहा जा सकता है। इस प्रकार के महाकाव्य इससे पूर्व संस्कृत-साहित्य में अनेक लिखे गये हैं जिनमें काश्मीरी कवि कल्हण की राजतरंगिणी बहुत प्रसिद्ध है। इसमें काश्मीर के राजाओं का इतिहास है। इसका रचनाकाल सं ११८४-१२०६ है। राजप्रशस्ति महाकाव्य इसी कोटि की रचना है परन्तु इन दोनों में थोड़ा सा अन्तर है। 'राजतरंगिणी में कवित्व भावना विशेष है। इसलिये इतिहास की अपेक्षा वह एक काव्य ग्रन्थ अधिक बन गया है। राजप्रशस्ति इस दोष से प्राय मुक्त है। इसके रचयिता ने अपनी दृष्टि बराबर ऐतिहासिक सत्य पर रखी है और उसे कहीं आँखों से ओझल नहीं होने दिया है। प्रशस्ति काव्य होने से कवि को यदि अपने आश्रय दाता की प्रशंसा करना अभिष्ट हुआ तो कथा प्रसंग से पृथक कहीं इधर उधर उनकी प्रशंसा कर कवि परिपाटी का निर्वाह कर लिया

है। अतएव इसमे काव्यात्मकता, अतिरंजना एवं आलंकारिता उतनी नही है जितनी 'राजतरंगिणी' मे देखी जाती है।

सारांश यह कि राजप्रशस्ति महाकाव्य प्रधानतया इतिहास का ग्रन्थ है और कविता उसका गौण विषय है। महाराणा राजसिंह के चरित्र से संबद्ध जिन घटनाओं का वर्णन कवि ने इसमे किया है, वे उसकी आंखो देखी है और वास्तविकता पर आधारित है। विशेषकर राजसमुद्र के निर्माण कार्य की दुष्करता का उस पर हुए खर्च का उसकी प्रतिष्ठा आदि का इसमे यथातथ्य वर्णन हुआ है। इसके साथ-साथ तत्कालीन मेवाड की संस्कृति वेष-भूषा शिल्पकला, मुद्रा दान प्रणाली युद्ध-नीति, धर्म-कर्म इत्यादि अनेकानेक अन्य तथ्यों पर भी इससे अच्छा प्रकाश पडता है। राणा राजसिंह के पूर्ववर्ती राजाओं का इतिहास इसमे कुछ सन्दिग्ध अथवा अर्द्ध ऐतिहासिक सूत्रो के आधार पर लिखा गया जान पडता है पर सत्य से बहुत दूर वह भी नही है।

इस राजप्रशस्ति-शिलालेख का प्रकाशन सर्व प्रथम कविराजा श्यामलदास कृत वीर विनोद नामक मेवाड के इतिहास ग्रंथ (वि० सं० १९ ८४९) में हुआ था। इसके बाद डा० पी० एन० चक्रवर्ती और बी० छाबडा ने इसका सम्पादन कर इसे एपिग्राफिया इण्डिका' में प्रकाशित करवाया। 'वीर विनोद' में दिया गया पाठ बहुत अशुद्ध है। एपिग्राफिया इण्डिका वाला पाठ अपेक्षाकृत कुछ ठीक है पर सर्वथा दोषमुक्त वह भी नही है। इसके अलावा वह केवल एक पत्रिका मे प्रकाशित हुआ है और स्वतन्त्र पुस्तक के रूप मे वह सुलभ नहीं है। इन न्यूनताओं को देख कर यह संस्करण तयार किया गया है जिसमे मूलपाठ के साथ साथ हिंदी भावार्थ भी दिया गया है। यह इसलिये कि केवल हिंदी जानने वाला पाठक भी इस अमूल्य ग्रंथ को पढ कर लाभ उठा सके। पाठ मूल शिलालेखो से ली गई छापो के आधार पर तैयार किया

गया है तथा पाठ निर्धारण म पूरी-पूरी सावधानी बरती गई है। ग्रंथ के अत में तीन परिशिष्ट भी दिये गये हैं जिनमें इस ग्रंथ से सम्बन्धित विशिष्ट सामग्री का समावेश हुआ है। चार चित्रों क्रमश महाराणा राजसिंह का एक, नोचौकी के पूव व पश्चिमी दृश्य के दो एव शिलालेख का एक चित्र भी उपयुक्त स्थान पर ग्रंथ म जोड़ा गया है जिससे सुधी पाठकों को अध्ययन में सुविधा होगी ऐसा विश्वास है।

ग्रंथ के भावार्थ तथा सम्पादन काय में सवश्री उमाशकर शुक्ल, कालिदास शास्त्री बिहारीलाल व्यास एव कृष्णचन्द्र शास्त्री का सहयोग मिला है। राजस्थान विद्यापीठ के संस्थापक उपकुलपति प० जनार्दनराय नागर का प्रारभ से ही सतत् प्रोत्साहन एव प्रेरणा मिलती रही है जिसके फलस्वरूप ही यह ग्रंथ इस रूप मे तैयार हो सका है एतदथ उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्त्तव्य मानता हू।

डॉ मोतीलाल मेनारिया

राजप्रशस्तिः महाकाव्यम्

मूलपाठ एव भावार्थ

॥ ॐ नम श्रीगणेशाय ॥

प्रथम सर्ग

[प्रथम शिला]

मगलाचरणम्

यशोहेतु सेतु मुकृतिकृतिसेतु जलनिधौ
सुबद्ध यश्चक्रे धरणिधरचक्रेण रुचिर ।
रुचा काम काम जनकतनयावामनयना-
सुविश्राम काम कलयतु स राम कृतजय ॥१॥

भावार्थ — सौन्दर्य म कामरूप जनकनन्दिनी के विश्राम-स्थान एव विजेता श्री रामचन्द्र जिन्होंने समुद्र पर पहाडो मे सुन्दर व सुदृढ सेतु का निर्माण किया हमारे मनोरथ का सफल करें। उनका वह सेतुबन्ध यश का कारण और पुण्य-कार्यों का पुल है।

स्मितज्योत्स्नालेपोज्ज्वलललितकठ कचचय-
शिखिस्फूर्जत्पक्षेक्षणगलितनागो विभसित ।
मुदे चेलादोलाशुगत इति भूषाप्रतिकृते-
धृ तगौर्या शभु स्फटिकरुचिदेहेतिरुचिर ॥२॥

भावार्थ — शिव का नीला कठ पार्वती के मन्द हास्य की चन्द्रिका के लेप मे उज्ज्वल होकर सुन्दर हो जाता है। उनके शरीर पर लिपटे हुए सर्प भी पार्वती के कलाप का मयूर के सुन्दर पखो के रूप म देखकर वहा से खिसक जाते हैं। यही नही उनके अगो पर लगी हुई भस्म भी पार्वती के वस्त्र के आन्दोलन के पवन से दूर हो जाती है। इस प्रकार शभु की स्फटिक के समान उज्ज्वल देह पर जब गौरी की वेष-भूषा का प्रतिबिंब गिरता है तब वे बहुत ही सुन्दर लगने लगते हैं। वे हमे आनन्द प्रदान करें।

पुरा राणेन्द्रस्त्वच्चरणशरणं सेतुविलस-
त्प्रबन्धं कृत्वाब्धिं नवमिह तडागं रचितवान् ।
प्रतिष्ठामस्याद्धा तव विवरराज्ये भगवति
प्रभावो निर्विघ्नं स गिरिवरमातर्जय जय ॥३॥

भावार्थ—हे गिरिवर माता ! महाराणा पहले आपके चरणों की शरण में आया। तदनन्तर उसने सुन्दर सेतु बांधकर आपके इस विवर-राज्य में सरोवर का निर्माण किया जो एक नया समुद्र है। इसके बाद उसने इसकी प्रतिष्ठा भी की। हे भगवती ! यह सब जो निर्विघ्न संपन्न हुआ, वह आप का ही प्रभाव है। आप की जय हो जय हो।

वराभीत्योर्दात्रीं पृथुतमकुचां कामवशगां
महाकालान्तःस्थां समुखमजचन्द्रीन्द्रविनुताम् ।
प्रसन्नाक्षीं श्यामां स्मितमयमुखीं दक्षिणतमां
स्तुवन्कालीं विद्याक्षितिसुतधनानीह लभते ॥४॥

भावार्थ—कालिका वर और अभय देनेवाली है। उसके पयोधर पीन हैं। वह काम के वशीभूत है। महाकाल के हृदय में उसका निवास है। ब्रह्मा विष्णु और इन्द्र उसकी वन्दना करते हैं। वह श्यामा प्रसन्न नयना स्मेरमुखी और अतिशय उदार है। उसकी स्मृति करता हुआ मनुष्य इस संसार में विद्या पृथ्वी, पुत्र और धन प्राप्त करता है।

चतुर्भिः कैलासस्फुरितकरिभिर्हेमसमुदैः-
र्घटैः शुण्डोत्क्षिप्तैः स्नपति सुखसिक्ता कनकभा ।
वराभाजद्वाभययुतकरा त्वाबुजगता
रमे श्रीमत्तो यो मुखमपि स मत्तोभवनवान् ॥५॥

भावार्थ—हे लक्ष्मी ! आपकी कान्ति सुवर्ण सदृश है। कैलास पर्वत के समान उज्ज्वल चार हाथी अपनी सूंडों में अमृत भरे कनक-कलश उठाकर उनसे आपका अभिषेक करते हैं। आपने दो हाथों में दो कमल ले रखे हैं दूसरे दो हाथ

वर और अभय दान की मुद्रा में हैं तथा आप का मुख श्री-युक्त है। आपका जो स्मरण करता है वह गज और धन से सम्पन्न होता है।

रुचदैव्याभा सत्स्फटिकहिमकुन्दाब्जजयकृ-
दधाना वासो वा मुकुररुचिपद्मासनगता।
नवीना वीणाभृद्विधिहरिहरेन्द्रादिकनुता
सरस्वत्यास्ता न सुमतिकृतये जाड्यहृतये ॥६॥

भावार्थ—सरस्वती की कान्ति चन्द्रमा की किरणों के समान है। स्फटिक, हिम, कुन्द तथा अब्ज से भी अधिक श्वेत वस्त्र उसने धारण कर रखा है। दर्पण के समान उज्ज्वल पद्मासन पर वह विराजमान है। वह अभिनव और वीणाधारिणी है। ब्रह्मा विष्णु, शिव, इन्द्र आदि उसकी वन्दना करते हैं। वह हमें सुमति प्रदान करे और हमारे अज्ञान का नाश करे।

मृदु वाणी लज्जा श्रियमपि दधाना मणिलस-
त्किरीटेंदुद्योता मणिघटलसत्सव्यचरणा।
त्रिनेत्रा स्मेरास्या समणिचषकाब्जोद्यतकरा
जपारक्ता भक्ता भजत भुवनेशी पृथुकुचा ॥७॥

भावार्थ—हे भक्तो! भुवनेशी देवी का भजन करो। उसने मृदु वाणी लज्जा और श्री धारण कर रखी है। उसके मणि-लसित किरीट पर चन्द्रमा है जिसका प्रकाश छिटक रहा है। उसका सव्य चरण मणि घट पर सुशोभित है। उसके तीन नेत्र हैं। वह स्मेरमुखी है। हाथों में उसने मणिमय सुरापात्र और कमल ले रखे हैं। उसके पयोधर पीन हैं तथा उसकी कान्ति जपा पुष्प के समान लाल है।

स्वगाल खड्गो ललितकमलो ह्रीमयमुख
क एष प्रागीट्क् लघुकलितशक्तिहमकर।
हलासो हल्लेखी धृतमकलमायोऽनलवधू-
स्तुतिर्मंत्र जप्त्वा जयति धरणीशो मनुरिव ॥८॥

भावार्थ —पृथ्वीपति राजसिंह कान्ति में अगार है। उसने खड्ग धारण कर रखा है। वह श्री-सम्पन्न और विनयशील है। उसके समान हस्तलाघव गुण वाला और प्रजा रंजक दूसरा कौन है? इसके वक्ष हरि के समान सुदृढ हैं। वह चित्ताकर्षक मकर माया को धारण करने वाला एवं यशोभागी है। श्लोक में बताये गये मन्त्र को जपकर वह मनु के समान विजयी हो।

> कपोलप्रोल्लासत्कनकविलसत्कुण्डलयुगा
> मुखेन्दु बिभ्राणा कनकविलसच्चम्पकरुचिः।
> गदाघातैर्गार्नि क्रतरिपुजिह्वां च बगला-
> मुखी ध्यानेष्वस्ताद्विमुखमुखसंस्तंभनविधिः ॥६॥

भावार्थ —बगलामुखी देवी के कपोलों पर सोने के दो सुन्दर कुण्डल झूल रहे हैं। उसका मुख चन्द्रमा है। उसकी कान्ति कनक सदृश खिले हुए चम्पा के समान है। गदा प्रहार कर उसने शत्रुओं का विनाश कर दिया है तथा उसने अपने हाथ में शत्रु की जिह्वा ले रखा है। जो उसका ध्यान करता है, उसके शत्रुओं का मुख-स्तम्भन होता है।

> शतायुः सिद्धिं वा सदसि बहुबुद्धिं विदवती
> प्रसिद्धिं नाके वा सततमृणवृद्धिं च विगता।
> गुणानामृद्धिं वा सुभगसुतवृद्धिं धनगिरां
> समृद्धिं भक्तानां सपदि हरसिद्धिं भज मनः ॥१०॥

भावार्थ —हरसिद्धि देवी भक्तों को सौ वर्षों की आयु, सिद्धि, सभा में प्रचुर बुद्धि, संसार में प्रसिद्धि, गुणों की ऋद्धि, भाग्यवान् पुत्रों की वृद्धि, धन एवं विद्या की समृद्धि तत्काल प्रदान करती है तथा उनकी ऋण-वृद्धि को सदा के लिये दूर करती है। हे मन! तू उसका भजन कर।

> शिवे राजन्यानां जयसि समरादौ जयकरी
> सनायुष्यं गणं कनय जयसिंह सतनय।

म्थिर राणाराज्य जगति रचयाऽऽचद्रतपन
प्रशस्ते स्थैर्यं त्व मम सुतगिरायुधनसुख ।।११।।

भावाथ —हे पावता ! ग्राप युद्धादि मे क्षत्रियो को जय देनेवाली हैं। आपकी जय हो ! राणा को तथा पुत्र सहित जयसिंह को शतायुषी करो। राणा के राज्य को विश्व म यावच्चन्द्र दिवाकर स्थिर रखो। इस प्रशस्ति को स्थिरता ग्रौर मुझे पुत्र विद्या ग्रायु एव धन का सुख प्रदान करो।

चतुर्वार तेतज्जनकलकलालकृततनु
गिरिं श्रुत्वा लोके तवविवरराज्य त्वनुमित ।
ध्रुव नि सदेह रचय नृपदेह मम वपु
स्थिर गेह स्नेह तनयमपि तेह निजजन ।।१२।।

भावाथ —हे भगवती ! ग्रापके इस पवत मे से मनुष्यो की कलकलमयी वाणी का सुनकर ससार मे ग्रनुमान किया गया कि इस विवर मे ग्रापका ही राज्य ह, जो सन्देह-रहित ग्रौर ध्रुव है। हे देवी ! मैं ग्रापका भक्त हूँ। राजा की देह को तथा मेरे शरीर घर, स्नेह ग्रौर पुत्र को स्थिरता प्रदान करो।

इद स्तोत्र स्तुत्य पठति मनुजो मगलकर
सुकार्यादौ यस्तद्भवति सफल विघ्नरहित ।
प्रपूरग वा तूर्णं जननि रणछोडेन रचित
पठित्वा श्रुत्वादो जगदखिलमास्ता सुखमय ।।१३।।

भावाथ —यह भवानी स्तोत्र स्तुति करने योग्य एव मगलकारी है। उत्तम काय के ग्रारम्भ म जो मनुष्य इसे पढता है उसका काय निर्विघ्न सफल होता है। हे जननी ! रणछोड रचित इस स्तात्र को सम्पूण पढ कर ग्रथवा सुनकर सारा ससार शीघ्र सुखी हो।

इति भवानीस्तोत्र ।

सरोलब स्रम्बेरमभुग सदबेक्षितमुखे
मुहेरव त्व बेदवनि गुणलये त्वयि विभौ ।
समालबे क बेग्तिवति भृश बेदितविप-
त्वदबेऽनालव सुकविनिकुरबे कुरु कृपा ।।१४।।

भावार्थ —हे प्रभु ! आप गज वदन है। आप पर भौरे मडरा रहे हैं। आपके मुख को आपकी माता निहार रही ह। आप नानवान् और गुणो के आधार हैं। आपके रहते मैं किसका आसरा लू ? कवि समुदाय निराश्रय होता ह। आपके आग अपने दु खो को उनने खोलकर रखा और उनस छुटकारा पाने के लिए वह आप ही से निवदन करता रहा ह। आप उस पर कृपा कीजिये।

नद्य क्षुद्रा समुद्रा सनवखसलिला कूपवाप्योऽप्यभद्रा
दारिद्रय वीक्ष्य वारा किल सुरसरिता वारि गृह्णाति लग्न ।
शैवाल केशपक्ति शिरसि च शकल चद्रक रत्नसेतो
सिदूर वालुकौघ दधदिति गुणिभि पातु गीतो गणेश ।।१५।।

भावार्थ — नदिया छोटी है। समुद्रा म जल खारा है तथा कप और वाविकाए भी अपवित्र ह। इस प्रकार भूतल पर जल की कमी देखकर गणेश न जब देवनदी स जल ग्रहण किया तब स्वादी स जल क साथ-साथ उसका शवाल रत्न निर्मित सतु का खण्ड और बालुका का ढर भी उनके मस्तक पर गिरा, जा क्रमश, उनक केश चन्द्रमा तथा सिन्दूर बन गये। गुणवानो ने जिन गणेश की इस प्रकार स्तुति की है वे हमारी रक्षा करें।

कर्णौ सूपद्वय वाप्यलिवलयमिपाच्चालनी दतदर्वी
चद्र रौप्य कटाह विद्युकरनिकर पिष्टक स्निग्धकु भा ।
स्नान मिष्ट जल यत्पचति दधदल धूमकेतु च सर्व-
नडडूकालि तदुक्तो ह्यसुरसुरनरालवलवोदरोऽव्यात् ।।१६।।

भावार्थ — गणेश दैत्य दानव तथा मनुष्य क पोषक है उनके दोनो कान दो सूप है। भ्रमरा का मण्डल माना छलनी है। दात करछी है। चन्द्रमा चादी

की बनी बड़ा-ही है। चन्द्र की किरणों का समूह आटा है। कुम्भस्थल घृत के दो कुम्भ हैं। मद मीठा जल है। धूमकेतु [ध्वजा विशेष] अग्नि है। इन्हें धारणकर वे लड्डू बनाते हैं। सर्वों ने जिनका इस प्रकार वर्णन किया है, वे गणेश हमारी रक्षा करें।

शुंडादंडं प्रचंड मदलसदसितं रम्यवह्निशस्त्रं
विभ्राणो धूमकेतुं मधुकरगुटिका दंतमुद्दंडदंडं।
तन्नूनं वह्निशस्त्री दितिजहतिकृते स्थापितं शंभुनासौ
भ्रात्या लोकैर्गजास्य कथित इति मुदे श्रीगणेशः सुवेषः ॥१७॥

भावार्थ —गणेश का रूप बड़ा ही सुन्दर है। उन्होंने प्रचण्ड और लम्बी सूँड के रूप में बन्दूक उठा रखी है। वह मदच्युत काले रंग की तथा छेदवाली है। इसके अतिरिक्त उनके पास धूमकेतु [ध्वजा आग], दाँत रूपी एक लंबा डण्डा और भौंर रूपी गोलियाँ भी हैं। कवि कहता है कि वास्तव में यह कोई बन्दूकधारी है जिसे शम्भु ने दानवों का संहार करने के लिये नियुक्त किया है। मुख हाथी का है यह बात तो लोगों ने भ्रान्ति से कह दी है। ऐसे गणेश हमें आनन्द दें।

पुज्योऽभूद्वक्रतुंडः सुरदितिजनरैः सर्वकार्येषु कस्मा-
त्तन्मन्ये क्रीडनेयं जलनिधिमखिलं शुंडया पीतवान्वै।
लंकास्थद्वारकास्थाऽमुरसुरमनुजाहीद्रलक्ष्मीस्वयंभू-
विष्णुस्तोत्रैस्तु मुंचेसकलमिदमतः सर्ववंद्यो मुदे स ॥१८॥

भावार्थ —देव, दानव और मनुष्य अपने सब कामों में गणेश की पूजा क्या करते हैं? मैं ऐसा मानता हूँ कि जब गणेश ने खेल खेल में अपनी सूँड से समुद्र का बहुत सा जल पी लिया तब लंका और द्वारका के रहनेवाले देव, दानव मनुज शेष लक्ष्मी ब्रह्मा और विष्णु ने इनकी स्तुतियाँ की, जिन से प्रसन्न होकर इन्होंने उस समूचे जल को वापस उगल दिया। इसी कारण सब लोग इनकी पूजा करने लगे। वे हमारी रक्षा करें।

प्रातर्भानुं रसालोत्तमफलमतिनो निर्मलोद्यस्मिताभि-
श्चाजल्लड्डूकबुद्ध्या निशि मधुरविधुं चंडया शुंडया यत् ।
धृत्वा स्वास्ये दधे तद्ग्रहणमिति जनैः स्नायिभिः श्रातमस्मा-
त्सावत्या मोचितौ तौ महमितमवतात्क्लेशहर्त्ता गणेशः ॥१९॥

भावार्थ —गणेश ने प्रातः सूर्य को आम का फल और रात्रि में चन्द्रमा को शक्कर का लड्डू समझकर अपनी प्रचण्ड सूंड से जब उन्हें अपने मुख में रख लिया तब स्नान करनेवाले लोगों ने समझा कि ग्रहण है। यह देखकर पार्वती हंसी और उसने उन दोनों को मुक्त करवाया। वे क्लेश-हर्त्ता गणेश हमारी रक्षा करें।

भ्रातः किं वाहनस्य प्रकटयसि न वा लालनं स्कंदवाक्या-
दवं प्रोद्दंडशुंडामुखकनितमहामूषकम्पशनेशः ।
भोक्तुं भागी किमित्य द्रवति कृतमतौ मूषकेस्मादकस्मा-
त्स्कंधात्तस्य स्खलन्नस्खनितमतिवचश्चारु दद्याद्गणेशः ॥२०॥

भावार्थ —कार्तिकेय के कहने पर कि क्या भाई ! अपने वाहन को कभी प्यार करते हो या नहीं गणेश ने जब अपनी लम्बी सूंड से अपने विशाल मूषक को थोड़ा-सा छूआ तब चूहे ने समझा कि यह कोई सांप है जो मुझे निगलने के लिये आया है। इस कारण वह अचानक भागा। उसके भागने पर उसके कंधे पर से गणेश भी गिर गये। ऐसे गणेश हमें अकुंठित और सुन्दर बुद्धि तथा वाणी प्रदान करें।

मत्कुंभौ दुंदुभी द्वौ भुजगमुखकरं वाद्यमुद्दंडशुंडा
तालौ वा कर्णतालौ त्रिपुरहरमहाताडवाडम्बरे यत् ।
चंडाद्या वादयन्ति द्विपवदनविभोरेव तुष्टौ विशिष्ट
स्वाविष्टं स्पष्टनृत्यं प्रविदधदधिकं पातु मामिष्टशिष्टं ॥२१॥

भावार्थ —शिव के ताण्डव नृत्य का जब विशाल समारोह होता है तब चण्ड आदि गण गजानन के दो कुम्भस्थलों, कानों तथा लम्बी सूंड को क्रमशः दुंदुभियां, ताल और पूंगी के रूप में बजाते हैं। प्रसन्न होकर गणेश भी तब आवेश में आजाते हैं और विशेष प्रकार का एक नृत्य करने लगते हैं वे मुझ कृपा पात्र भक्त की रक्षा करें।

श्रीवक्रतु डस्तव एप तु ड–
स्थित सता मडितसूक्तिकु ड ।
उद्दवेतडघटाप्रचड–
विद्यामणीकु डलद सदा स्यात् ।।२२।।

भावाथ —गणेश का यह स्तोत्र मनोहर सूक्तियो का कुण्ड है। इसे पढकर साधु पुरुष प्रमत्त हाथी, प्रचण्ड विद्या, मणि और कुण्डल सदा प्राप्त करें।

इति गणेशस्तोत्रम् ।

स्वनामस्रज गायत स्रस्तरोगा–
नजस्र जनान्दस्रवद्वं वित वन् ।
जय नम्रपा भूपय घस्रमुच्चै
सहस्रद्युतिम्समुदेस्तादुदुस्र ।।२३।।

भावाथ—अपने नाम का स्मरण करने वाले लोगो को सूय अश्विनी कुमारों के समान सदा नीरोग बनाता रहा है। वह राक्षसो पर विजय पाता रहा है। उसकी हजार किरणें हैं वह हमें आनन्द प्रदान करे।

सत्पीत चामर किं कलयति तपनो धायमाण दिगीशै
सूताभावाहभाभि कृतपटघटनायापि सूचीसहस्र ।
वेध्दु तद्धवातदतावलसबलबल स्वणवाणव्रज वा
तर्क्यते तक्यलोकैरिति रविकिरणा येत्र ते पुत्रदा स्यु ।।२४।।

भावाथ— क्या यह सूय दिक्पालो पर सुनहला चँवर उडा रहा है ? या अ ा आर अश्वा की आभाओ क बने लाल-हरे रग के वस्त्रो को जोडन क लिय हजार सुइया तयार चला रहा है ? अथवा अन्धकार रूपी हाथियो के सबल स य को बीधने के लिये सोने के बाण छोड रहा है ?' तक शील मनुष्य सूय की जिन रवि- किरणो के विषय म इस प्रकार तकना करते हैं वे हमें पुत्र प्रदान करें।

जात यस्योदय मावुदयगिरिवर मुयवाहारग्णाभा-
　　स्प शुद्धैर्हिरण्यम क्तमणिभि पद्मराग कृत द्राक्
शृ ग्स्तोम समस्ते रचयति निचय भूषणाना यथेच्छ
　　याहग्यत्रापयुक्त स भवतु भगव भूतय भानुमाली ॥२५॥

भावार्थ —वह ऐश्वर्यशाली सूर्य हमें वैभव प्रदान करे जिसके उदय होने पर यह उदयाचल अपने समस्त शिखरों को मनचाहे और सुन्दर आभूषणों से अलङ्कृत करता है। ये आभूषण सूर्य अश्व एव अरुण की सुनहली हरी तथा लाल किरणों के रूप में क्रमश सुवर्ण मरकत मणि और पद्मराग के बने प्रतीत होते हैं।

प्रान्या मूद् ना घृतामा म क्तनकनकाद्रामिताम्भ च्च-
　　व त्ताग्रत्स्वर्णपत्र हरिदरुणपट छत्रक मूर्द्धिन मेरो ।
वयास्य द्र न वा हरिचनुरुना कुण्डलीभूतमित्थ
　　मूतम्दाश्वप्रभा मृतमुनिभिरिदिन मण्डल पातु पूष्ण ॥२६॥

भावार्थ — क्या यह पूर्व दिशा ने अपने मस्तक पर सिर पेंच पहना है जो सोन का बना है और मरकत मणि जटित है? अथवा मेरु के मस्तक पर यह छत्राकार वितान सोने का छत्र है जिसमें लाल-हरे रग के वस्त्र लगे हैं? या क्या यह यह इन्द्र-धनुष है जो इस समय कुण्डलाकार हो गया है? मुनियों ने सारथी अरुण की सूर्य की तथा अश्वों की लाल पीली और हरी किरणों वाले जिस रवि-मण्डल का इस प्रकार वर्णन किया है वह हमारी रक्षा करे।

मुक्तागुच्छ विवस्वद्धुर गमणि विद्रुम पुनन्य
　　छत्र म पुष्पराग हरि हि नमणी दीदत्स्यत्नान् ।
त्रिनेत्रद्वयस्य चत्र श्वेतमणिरु प्रयगामदमच
　　श्रीमाना मुच्यतत्न मनसि गतु पुना हन्तु सवग्रहाणि ॥२७॥

भावार्थ —सूर्य के रथ में मोतियों के गुच्छे सुशोभित हैं। वहां सूर्य का रह रूप पद्मराग सारथी रूप विद्रुम छत्र रूप पुखराज और अश्व रूप मरकत मणियां

भी विद्यमान हैं। उसके डन्ड वैडूय मणि के हैं। पहिया वज्र मणि का है। इसी प्रकार उसका धुरा नील मणि का और मच गामद मणि का है। हे राजन्! आप उसका ध्यान कीजिये। वह आपके नवो ग्रहो स उत्पन्न होन वाले कष्टों को दूर करे।

विश्रामच्छद्मना ये लघुगमनकरा मूर्द्धि्न मेरोद्यु नद्या
कल्लोलोल्लासितेस्मिन्मयुवरयुवतीसचये चचलाक्षा ।
हेपामक्तेशब्दैर्विदधति भृशमासक्तिमह्ला गुरुत्व
ग्रीष्मे कुवति युक्त हरिहरय इतस्ते श्रिय ते दिशतु ॥२८॥

भावाथ—सूय के अश्व मरुपवत पर विश्राम करने के बहाने धीमी चाल से चल कर आकाश गगा की तरगो मे प्रफुल्लित किन्नर युवतियो को चचल नत्रो से देखते हैं और हिनहिनाकर सात्तिक शब्दा से उनके प्रति अतिशय अनुराग व्यक्त करते हैं। ग्रीष्मकाल म दिन के बडे होन का कारण यही है। हे राजन्! ऐसे अश्व आप को लक्ष्मी प्रदान करें।

चक्राग्र शक्र सम्यक धुरि यम समतामक्षमावेहि रक्ष-
स्त्व वीतीनीतिहोनारुणमिह वरुण स्थापय त्व रथेश ।
वायो याऽऽयाजयत्र रथमथ धनदाराधन त्व हरीणा
शभा त्व भो प्रिय मे वदति तदरुणो दिक्पतीन् शास्ति मोऽव्यात् ॥२९॥

भावाथ — हे इन्द्र! पहिये के अग्र भाग को ठीक तरह थामो। हे यम! धुरे को सन्तुलित रखो। हे रक्षस! सारथी अरुण को यहा बिठाओ। हे वायु! रथ को जोतो। हे कुबर! अश्वो की आराधना करो। हे शभु! आप मरा मगल करो। जो सूय दिक्पालो को इस प्रकार कहकर उन पर शासन करता है वह हमारी रक्षा करे।

आग्नेये पश्चिमाशाकुचयुगविनमत्कु कुमालेपसक्त
स्निग्धा बाल प्रवालैर्जलनिधिजठरे स्पशनैर्घपराश्च ।

प्रेम्णा वाच्छादितं किं हरिहरिदबलापाणिना मत्कुसुंभा-
रक्तेनैवाम्बरेण ॥३०॥

भावार्थ—क्या यह सूर्य पश्चिम दिशा रूपी रमणी से आलिंगन करते समय उसके कुचों पर लगा कुंकुम में सन गया है? अथवा समुद्र के अन्तराल में नवीन प्रवालों के स्पर्श घर्षण से इसका रंग लाल हो गया है? या पूर्व दिशा रूपी सुन्दरी ने इस कुसुंभिया वस्त्र ओढ़ा दिया है।

[इति सूर्य-स्तवनम्]
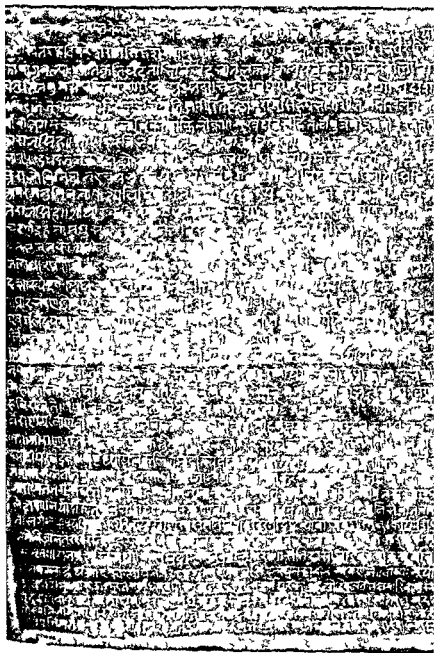
राजप्रशस्ति महाकाव्यम् के प्रथम सर्ग की दूसरी शिला का फोटो ।

॥ श्री ॥

॥ ॐ नम श्रीगणेशाय नम ॥

प्रथम सर्ग

[दूसरी शिला]

मुनिनृपमनुजेभ्यो दशन सप्रदातु
परमकरुणयैवागत्य कैलासशैलात् ।
तटभुवि कुटिलाया एकलिगस्त्रिकूटे
स्थित इह विवरेद्रो राजसिहेशमव्यात् ॥१॥

भावाथ —एकलिग महाराणा राजसिह की रक्षा करें, जो परम करुणा करके कलास पवत से आकर मुनियो नरेशो और मनुष्यो को दशन देने के लिये, कुटिला नदी के किनारे त्रिकूट पवत के विवर मे विराजमान हुए ।

तुहिनकिरणहीरक्षीरकपू रगौर
वपुरपि जलदाभ कालिका पागवल्ल्या ।
प्रतिकृतिघटनाभिर्बिभ्रदभ्रातभक्त
कलयतु तव राजमगलायेकलिग ॥२॥

भावाथ —हे राजन् ! भक्तो का ध्यान रखने वाले व एकलिग आपका मगल करें जिनका शरीर चन्द्र, हीरक, क्षीर और कपूर के समान गौरवण होते हुए भी पावती की अपाग–वल्ली क प्रतिबिंब के गिरने से मेघ के समान श्यामवण हो जाता है ।

चतुर्मितपुमथसद्वितरणाय सद्भ्य सदा
चतुभु जधरो मुदा किल चतुर्युगोद्यद्यशा ।
चतुभु जहरिश्चिर निजचतुभु जाभि शुभ
चतु श्रुतिसमीरित दिशतु राजसिहप्रभो ॥३॥

भावाथ —सज्जन पुरुषो म चारो प्रकार के पुरुषाथ का वितरण करने के लिये जिसने चार भुजाएँ धारण कर रखी हैं तथा जिसका यश चारो युगो मे फैला

हुआ है वह चतुर्भुज विष्णु अपने चारों हाथों से महाराणा राजसिंह को, चारों वर्गों से कथित सम्पत्ति प्रदान करे।

पादाब्जिजजनाना पालनादम्बिका वा
निगमवचसि यावनाविक्वाता विनोक्ता।
सुखयतु सहित त्वा पुत्रपौत्रप्रपौत्रै—
रवतु तव तु गात्र साम्बिका राजसिंह ॥४॥

भावार्थ—हे राजसिंह! यह अम्बिका पुत्र पौत्र एवं प्रपौत्र सहित आप को सुखी रखे और आप के गात्र की रक्षा करे जो संसार के समस्त मनुष्यों का पालन करने से अम्बा और निगम-वाणी में अवाचा अम्बिका तथा अम्बा कही गई है।

ऐंद्रिग विभव दद्यात् शाश्वती वृत्ति दत्वा।
बुधे प्रसन्नासौ (ना) स्फूर्जद्वाला भूप प्रवालभा ॥५॥

भावार्थ—हे राजन्! मन्त्र गुण को धारण कर विद्वान् पर अतिशय प्रसन्न होने वाली एवं शक्तिमती वर वाला त्वा आप को धन-समृद्धि प्रदान करे जिसकी कान्ति प्रवाल के समान है।

दधन्तुनकरे व्रातमाल्य यस्य भक्त
कलयति सफलार्थ मोदक राजसिंह।
नृपवर स तु विघ्न विघ्नराजा विनिघ्नन्
रचयतु ननयम्न मोद मगनाय ॥६॥

भावार्थ—हे नृप-श्रेष्ठ राजसिंह! पार्वती-पुत्र गणेश आपके विघ्नों का नाश करता हुआ आप को मोद करे जिसके हाथ में मोदक रखकर भक्त आनन्द-दायक सफल अर्थ को तत्काल पा लेता है।

प्रथमनृपमनी यह सिद्धिदाना विवस्वान्
अपरमनुमिव त्वा वीर्य सिद्धि प्रदातु।
दशगनकरयुक्ता पुत्रमव यहा त्वा—
मवतु स तु नितान भूतन राजसिंह ॥७॥

भावार्थ —हे पृथ्वीपति राजसिंह! प्रथम नृपति मनु को जिस सूर्य ने सिद्धि प्रदान की थी उसीने आपको दूसरे मनुके रूप में देखकर सिद्धि देने के लिये माना सहस्र कर धारण कर लिये हैं। यह ठीक ही है। वह आपकी रक्षा करे।

धीरः कविः स्फुटपुराणवरोनुशास्ता
धाता स्फुरद्गुणगणस्य तमःसपत्नः।
आदित्यवर्ण इह मां मधुसूदनोऽया-
त्कार्येतिदुस्तरतरे प्रविशतमद्धा ॥८॥

भावार्थ —प्रशस्ति की रचना करना मेरे लिये बडा ही कठिन काम है। फिर भी इसे मैं हाथ में ले रहा हूँ। इस समय वह मधुसूदन मेरी रक्षा करे, जो धीर, सर्वज्ञ, पुरातन-श्रेष्ठ, सृष्टि का शासक, गुणों का आधार या कर्त्ता, अज्ञान का शत्रु एवं सूर्य सदृश दीप्तिमान है।

इति मंगलाष्टकम्

यस्यासी मधुसूदनस्तु जनको जातः कठोडीकुले
तैलंगः कविपंडितः सुजननी वेणी च गोस्वामिजा।
कुर्वे राजसमुद्रनामकजलाधारप्रशस्तिं त्वहं
सोदर्यं रणछोड एष भरताद्यं लक्ष्मणं शिक्षयन् ॥९॥

भावार्थ —मेरे पिता मधुसूदन ने तैलंग जाति के कठोडी कुल में जन्म लिया। वह कवि और पंडित है। मेरी माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है। मेरा नाम रणछोड है। भरत से बड़े सहोदर लक्ष्मण को शिक्षा देते हुए मैं राजसमुद्र नामक सरोवर की प्रशस्ति रचता हूं।

पूर्णे सप्तदशे शते समतनोत्स्वष्टादशाख्येब्दके
माघे श्यामलपक्षके नरपतिः सत्सप्तमीवासरे।
धातुं दायसतिजलाशयमहारंभं च तस्याज्ञया
प्रारंभं रणछोड एष कृतवांस्तस्य प्रशस्तेस्तथा ॥१०॥

भावार्थ —सागरों में रहते हुए नृपति राजसिंह ने सं० १७१८ माघ कृष्णा सप्तमी को इस सरोवर के निर्माण का कार्यारंभ किया। तदनुसार इस रणछोड ने भी नृपति के आदेश से उक्त सरोवर की प्रशस्ति की रचना प्रारम्भ की।

वर्ण्य त्ववर्ण्यमपि वेत्ति न बालको वा
दृष्टार्थसत्कथक एव गलद्भयश्च ।
सोऽहं तथैव गुणवृद्धसभोपविष्ट
किंचिद्वदामि मम धार्ष्ट्यमिद क्षमध्व ।।११।।

भावार्थ—"क्या वर्णन करना चाहिए और क्या नही ?" इस बात को बालक तो नहीं अर्थ का पारखी और सही बोलने वाला निर्भीक व्यक्ति ही समझ सकता है । मैं भी एक बालक हूँ जो गुणवानो की सभा मे बैठकर कुछ बोल रहा हूँ । मेरी इस धृष्टता को क्षमा करें ।

जिह्वासु चेत्फणिपतिर्लिखनेषु कार्त-
वीर्यार्जुनो वचसि वाक्पतिरेव वाहं ।
नानु गुणास्तव तदा निपुणो भवामि
वक्तुं ततो नृप वदाम्यति साहसेन ।।१२।।

भावार्थ—हे पृथ्वीपति ! यदि मै जिह्वा मे शेषनाग, लिखने मे कार्त्तवीर्यार्जुन और वाणी मे बृहस्पति होऊँ तभी आप के गुणो को समझ सकता हूँ । इस कारण यहाँ मैं आपके कुछ ही गुणो का वर्णन कर पा रहा हूँ और वह भी अति साहस करके ।

पुण्याजनार्दनहरेस्तु कथास्ति पुण्य-
श्लोकस्य वा नलनृपस्य युधिष्ठिरस्य ।
तादृक्कथा जयति बाप्पनृपस्य वंश्य
श्रीराजसिंह नृपतेरपि सत्कथा तत् ।।१३।।

भावार्थ—जनार्दन हरि पुण्यश्लोक राजा नल एव युधिष्ठिर की जो पवित्र कथा है उसी के समान पृथ्वीपति बाप्प और नृपति राजसिंह की कथा भी सर्वोपरि है । उस सुन्दर कथा का मैं कहूँगा ।

रामायणे भारतेऽस्ति प्रोक्तानां भूभुजां यशः ।
यथा राजसिंहोक्तानां स्यात्तथाऽऽचन्द्रतारकं ।।१४।।

भावाथ —जिस प्रकार रामायण और महाभारत मे वर्णित राजाओ का यश स्थिर है उसी प्रकार इस प्रशस्ति म कथित राजाओ का यश भी जब तक चद्रमा और तारे हैं तब तक बना रहे।

खडप्रशस्तिर्भुवने रामचद्रस्य शोभते ।
श्री अखडप्रशस्तिस्ते राजसिंह विराजते ।।१५।।

भावाथ —हे राजसिंह ! ससार मे रामचन्द्र की खड प्रशस्ति शोभा पा रही है और आपकी यह अखड प्रशस्ति ।

मर्त्यायुर्ष्यैस्तुल्यमायुस्तु भाषा-
ग्रथाना स्याद्देववाग्भारतादे ।
देवायुर्ष्यैस्तुल्यमायुस्ततोह
ग्रथ कुर्वे राण गीर्वाणवाण्या ।।१६।।

भावाथ —हे राणा ! भाषा-ग्रथो की आयु मनुष्यो की आयु के समान नश्वर और सस्कृत भाषा के महाभारत आदि ग्रथो की आयु देवताओ की आयु के समान अमर होती है। अत मैं इस ग्रथ की रचना सस्कृत भाषा मे करता हूँ।

व्यासवाल्मीकिवद्वद्यो वाणश्रीहर्षवन्नृपै ।
स सस्कृतकवी राज्ञा यशोगस्यापवश्चिर ।।१७।।

भावार्थ—सस्कृत भाषा का कवि राजाओ द्वारा वाण और श्री हर्ष के समान पूजा जाता है क्योकि वह राजाओ के यश रूपी शरीर को चिरस्थायी बनाने वाला होता है।

श्रीराणाराजसिंहस्य वणन कर्तुमुद्यत ।
भूपा वाप्पादिकान्वक्तु वक्ष्येह मुनिसमर्ति ।।१८।।

भावाथ —राणा राजसिंह का वणन करने के लिये मैं तत्पर हू। यहा मैं वाप्प आदि राजाओ क वणन मे मुनियो के मत को कहता हूँ।

वक्ष्ये वायुपुराणस्य मेदपाटीयखण्डके ।
षष्ठेऽध्याये त्वेकलिंगमाहात्म्ये वाक्यमीरितं ॥१६॥

भावार्थ—वायुपुराण के मेदपाटीय खण्ड के छठे अध्याय में एकलिंगमाहात्म्य के अन्तर्गत कहे गये वचन को कहता हूं।

अथ शैलात्मजा ब्रह्मन् शोकव्याकुललोचना ।
नंदिनं प्रथमं बाष्पं सृजती समुवाच ह ॥२०॥

भावार्थ—हे ब्रह्मा! इसके बाद शोक से व्याकुल नेत्रोंवाली पार्वती आंसू बहाती हुई पहले नन्दी से बोली।

यस्माद्बाष्पं सृजाम्यद्य वियोगाच्छंकरस्य च ।
पूर्वदत्ताच्च मच्छापाद्बाष्पो राजा भविष्यसि ॥२१॥

भावार्थ—क्योंकि आज मैं शंकर के वियोग से बाष्प [=अश्रु] बहा रही हूँ। इस कारण मेरे पूर्वदत्त शाप से तुम बाप्प नामक राजा बनोगे और

आराध्य त्वं जगन्नाथं तीर्थे नागह्रदे शुभे ।
राज्यं शक्र इव प्राप्य पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥२२॥

भावार्थ—नागह्रद नामक तीर्थ में उस जगन्नाथ की आराधना करके इन्द्र के समान राज्य पाकर पुनः स्वर्ग प्राप्त करोगे।

पुनश्चंडगणं प्राह पार्वती व्याकुलेक्षणा ।
मर्यादा हतवानद्य द्वाररक्षोऽप्यरक्षणात् ॥२३॥

भावार्थ—इसके बाद व्याकुल नेत्रोंवाली पार्वती चंड नामक गण से बोली—द्वार-रक्षक होते हुए भी तुमने आज रक्षा न कर मर्यादा भंग की है।

हारीत इति नाम्ना त्वं मेदपाटे मुनिर्भव ।
तत्राराध्य शिवं देवं ततः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥२४॥

भावार्थ—इस कारण तुम मेदपाट में हारीत नामक मुनि बनो। वहां भगवान् शिव की आराधना करने के पश्चात् तुम्हें पुनः स्वर्ग प्राप्त होगा।

इति वायुपुराणस्य समतिस्तत्र विस्तर ।
द्रष्टव्यो वाप्पवशेस्मिन् काय शिष्टैस्तदादर ॥२५॥

भावाथ—यह वायुपुराण की समति है। विद्वानो को विस्तार पूवक इसे वायुपुराण मे देखना चाहिये और वाप्प-वश के सबध मे उसका आदर करना चाहिये।

न मे विज्ञानतरणी राजसिंहगुणाबुधे ।
पाराप्त्यै वक्त्रमुडुपमस्याज्ञाकरमाश्रये ॥२६॥

भावाथ—राजसिंह के गुणो के सागर को पार करने के लिये मेरे पास विज्ञान की नौका नही है आज्ञाकरी मुख-रूप डागी ही है उसीका आश्रय लेता हूँ।

मालकारमणि सूक्तिमौक्तिक सद्रसामृत ।
राजप्रशस्तिग्रथोस्ति समुद्रोय सुवणभू ॥२७॥

भावाथ—यह राजप्रशस्ति ग्रथ दूसरा समुद्र है। इसमे अलकार रूप मणियाँ हैं सूक्तिया रुपी मुक्ताएँ हैं रस रूप अमृत है तथा यह सुवण=भू [=सुदर अक्षरा से रचित चद्र का उत्पत्ति-स्थान] है।

सेतिहासो भारतवत्प्रोक्तसूर्यान्वय सम ।
रामायणेन पठनाद्ग्रथस्तादृक् फलाय न ॥२८॥

भावाथ—यह ग्रथ महाभारत के समान ऐतिहासिक है। इसमे रामायण के सदृश सूय-वश का वणन है। इसे पढने पर हमे उनके समान फल मिले।

श्रीराणाराजसिंहस्य महावीरस्य वणने ।
वाप्प सूया वयी सर्गे सूयवश वदेग्रिमे ॥२९॥

भावाथ—वाप्प सूयवशी है। इस कारण महान् वीर राणा राजसिंह का वणन करने स पूव मैं अगले सग मे सूय-वश का वणन करता हूँ।

आसीद्भास्करतस्तु माधवबुधोस्माद्रामचद्रस्तत
सत्सर्वेश्वरक वठोडिकुलजो लक्ष्म्यादिनाथस्तत ।
तैलगाख्य तु रामचद्र इति वा कृष्णाख्य वा माधव
पुत्राभू मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमा ॥२०॥

भावार्थ—भास्कर का पुत्र माधव था । माधव के पुत्र हुआ रामचद्र और रामचद्र के सर्वेश्वर । सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ जो वठोडी कुल म उत्पन्न हुआ । उसके हुआ तैलग रामचद्र । उस रामचद्र के ब्रह्मा शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए—कृष्ण माधव और मधुसूदन ।

यस्यासी मधुसूदनस्तु जनका वेणी च गोस्वामिजा
माता वा रणछोड एष कृतवा राजप्रशस्त्याह्वय ।
काव्य मान्वयराजसिंहनृपति श्रीवर्णनाढय महद्-
वीरांक प्रथमोत्र पूर्तिमगमत्सर्गोथवर्गोत्तम ॥२१॥

भावार्थ —जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है उस रणछोड न राजप्रशस्ति नामक यह काव्य रचा है । इसम नृपति राजसिंह उसके वश एव वभव का वणन है । इसके अतिरिक्त यह बड–बड योद्धाओ क जीवन–चरित्र स अक्ति है । यहाँ यह पहला सग सम्पूण हुआ जिसम उत्तम ग्रथ भर हैं ।

इति श्रीमधुसूदनभट्टपुत्ररणछोडकृत
श्रीराजप्रशस्त्याख्य महाकाव्ये
प्रथम सग ॥

॥ ॐ नम श्रीगणेशाय ॥

द्वितीय सर्ग

[तीसरी शिला]

गु जापु जाभरणनिचय चद्रकालीकिरीट
गोत्र वेत्र करकमलयो पु जित चित्रवस्त्र ।
मध्ये पीत वसनमपर किंकिणी वक्रवेणी
नासामुक्ता दधदतिमुदे तेस्तु गोवर्द्धनेंद्र ॥१॥

वह गोवर्द्धनेन्द्र आपको अतिशय आनन्द प्रदान करे, जिसने गु जाओं के आभूषण पहन रखे हैं जिसका किरीट मोर पख का बना है, जिसने एक हाथ में पर्वत उठा रखा है और दूसरे म बेंत ले रखी है कमर मे जिसके चित्र कबरा वस्त्र बँधा हुआ है जिसने अनुपम पीताम्बर और किंकिणी धारण कर रखी है जिसकी वेणी वक्र है तथा नाक मे जिसने मोती पहन रखा है ।

आदौ जलमय विश्व तत्र नारायण स्थित ।
हिरण्यहारी तन्नाभौ पद्मकोप इहाभवत् ॥२॥

प्रारभ मे विश्व जलमय था । वहाँ नारायण विद्यमान थे । उनकी नाभी स हिरण्य हारी पद्मकोप और उस पद्मकोष से

ब्रह्मा चतुमु खस्तस्य मरीचि कश्यपोस्य तु ।
सुतो विवस्वास्तस्यासीन्मनुरिक्ष्वाकुरस्य स ॥३॥

चतुमु ख ब्रह्मा उत्पन्न हुआ । ब्रह्मा के मरीचि, उसके कश्यप, उसके विवस्वान् उसके मनु और उसके इक्ष्वाकु नामक पुत्र हुआ ।

विकुक्षि स शशादान्यनामा तस्य पुरजय ।
ककुत्स्थापरनामायमस्यानेनास्तत पृथु ॥४॥

भावार्थ—इक्ष्वाकु के विकुक्षि अपरनाम शशाद उसके पुरंजय, अपरनाम ककुत्स्थ, उसके अनना उसके पृथु

ततोभूद्विश्वरंधिस्तु　　ततश्चन्द्रस्ततोभवत् ।
युवनाश्वोस्य शावस्तो बृहदश्वोस्य वात्मज ॥५॥

भावार्थ—उसके विश्वरंधि उसके चन्द्र उसके युवनाश्व उसके शावस्त तथा उसके बृहदश्व हुआ।

तत　　कुवलयाश्वोभूद्धुमारापराभिध ।
दृढाश्वोस्यास्य हयश्वो निकुंभस्तस्य वा तत ॥६॥

भावार्थ—उसके हुआ कुवलयाश्व जिसका अपर नाम धुंधुमार था। उसके दृढाश्व उसके हयश्व उसके निकुंभ उसके

वहणाश्व कृशाश्वोस्य सेनजित्तस्य वा तत ।
युवनाश्वोस्य माधाता त्रसद्दस्युपराभिध ॥७॥

भावार्थ—वहणाश्व उसके कृशाश्व उसके सेनजित् उसके युवनाश्व और उसके माधाता हुआ जिसका दूसरा नाम त्रसद्दस्यु और वह

चक्रवर्त्यस्य तनय पुरुकुत्सोस्य वा सुत ।
त्रसद्दस्युर्द्वितीयोस्मादनरण्यस्ततोभवत् ॥८॥

भावार्थ—चक्रवर्ती था। उसके हुआ पुरुकुत्स और पुरुकुत्स के त्रसद्दस्यु द्वितीय। उसके अनरण्य उसके

हयश्वोस्यारुणस्तस्य त्रिवंधननृपस्तत ।
सत्यव्रतस्त्रिशंकुस्तु तस्य नामान्तर तत ॥९॥

भावार्थ—हयश्व उसके अरुण राजा त्रिबंधन उसके सत्यव्रत अपरनाम त्रिशंकु उसके

हरिश्चंद्रो रोहितोस्य तस्य वा हरितस्तत ।
चपस्तस्य सुदेवोस्माद्विजयो भरुकोस्य वा ।।१०।।

भावार्थ —हरिश्चन्द्र, उसके रोहित, उसके चप, उसके सुदेव, उसके विजय, उसके भरुक,

तस्माद्वृको वाहुकोस्य तत्पुत्र सगर स च ।
चक्रवर्त्ती सुमत्या तु पत्न्या तस्याभवन् सुता ।।११।।

भावार्थ —उसके वृक, उसके वाहुक और उसके सगर हुआ। सगर के चक्रवर्त्ती था और उसकी सुमति नामक पत्नी से उसके पुत्र हुए

श्रेष्ठा षष्टिसहस्रोद्यत्सस्या सागरकारका ।
सगरस्यापत्न्या तु केशियामसमजस ।।१२।।

भावार्थ—साठ हजार। वे श्रेष्ठ और समुद्र के निर्माता थे। सगर के उसकी दूसरी पत्नी केशिनी से उत्पन्न हुआ असमजस।

ततोशुमान्दिलीपोस्मात्तस्माज्जातो भगीरथ ।
तत श्रुतस्ततो नाभ सिंधुद्वीपोस्य तत्सुत ।।१३।।

भावार्थ —उसके अशुमान् उसके दिलीप उसके भगीरथ उसके श्रुत, उसके नाभ उसके सिंधुद्वीप उसके

अयुतायुस्तस्य जात ऋतुपर्णस्तु तत्सुत ।
सवकाम सुदासोस्य तस्मान्मित्रसह पति ।।१४।।

भावार्थ —अयुतायु उसके ऋतुपर्ण उसके सवकाम उसके सुदास और उसके मित्रसह हुआ। मित्र सह

मदयत्या स कल्मापपादापरयोस्य चाश्मक ।
मूलकोस्माद्दशरथस्तत ऐडविडस्तात ।।१५।।

भावार्थ —मदयन्ती का पति था। उसका अपर नाम कल्मापपाद था। उसके अश्मक उसके मूलक उसके दशरथ, उसके ऐडविड उसके

जातो विश्वसहस्तस्मात्खट्वागश्चक्रवर्त्यत ।
दीघबाहुर्दीलीपोस्य रघुरस्याज इत्यत ।।१६।।

भावार्थ—विश्वसह उसके चक्रवर्ती खटवाग, उसके दीघबाहु उसके रघु, उसके अज तथा उसके

जातो दशरथस्तस्य कौशल्याया सुतोभवत् ।
श्रीरामचद्र कैकेय्या भरतो रामभक्तिमान् ।।१७।।

भावार्थ—दशरथ हुआ । उसके उसकी पत्नी कौशल्या स रामचन्द्र तथा ककयी स राम भक्त भरत हुआ । इसी प्रकार

सुमित्राया लक्ष्मणश्च शत्रुघ्नश्चेति रामत ।
श्रीसीताया कुशो जातो लवश्चेति कुशादभूत् ।।१८।।

भावार्थ—सुमित्रा स लक्ष्मण और शत्रुघ्न । राम के सीता स कुश और लव नामक दो पुत्र हुए । कुश क

कुमुद्वत्यामतिथिको निषधोस्य ततो नल ।
नभोथ पुडरीकोस्य क्षेमधन्वा ततोभवत् ।।१९।।

भावार्थ—उसकी पत्नी कुमुद्वती स अतिथि हुआ । उसक निषध उसके नल उसके पुडरीक उसक क्षेमधन्वा आर उसक

दवानीकस्ततोऽहीन पारियात्रोस्य तत्सुत ।
बलस्तस्य स्थलस्तस्माद्वज्रनाभस्ततो भवत् ।।२०।।

भावार्थ—दवानीक हुआ । देवानीक के अहीन उसके पारियात्र, उसक बल उसके स्थल उसक वज्रनाभ और उसक हुआ

सगणस्तस्य विधृति पुत्रस्तस्य सुताभवत् ।
हिरण्यनाभ पुष्यास्माद्ध्रुवसिद्धिरततोभवत् ।।२१।।

भावार्थ—सगण । उसक विधृति उसक हिरण्यनाभ और उसक पुष्य हुआ । पुष्य के ध्रुवसिद्धि उसक

सुदर्शनोस्याग्निवर्णस्तस्य शीघ्रस्ततो मरुत् ।
ततः प्रसुश्रुतस्तस्मात्सन्धिस्तस्यतु मर्षण ।।२२।।

भावार्थ—सुदर्शन उसके अग्निवर्ण, उसके शीघ्र, उसके मरुत, उसके प्रसुश्रुत, उसके सन्धि और उसके मर्षण हुआ।

ततो महस्वांस्तस्याभूद्विश्वसाह्व प्रसेनजित् ।
ततस्ततस्तक्षकास्माद्बृहद्बल इतित्वय ।।२३।।

भावार्थ—मर्षण के महस्वान्, उसके विश्वसाह्व, उसके प्रसेनजित, उसके तक्षक और उसके बृहदबल हुआ। वह

महाभारत सग्रामे निहितस्त्वभिमन्युना ।
एते त्वतीता व्यासेन सप्रोक्ता भारते नृपा ।।२४।।

भावार्थ—महाभारत सग्राम मे अभिमन्यु के द्वारा मारा गया। व्यासने इन प्राचीन राजाओ का वर्णन महाभारत मे किया है।

अनागतान् जगादव व्यासस्तन्न वदामितान् ।
बृहद्बलादवहद्रणस्तस्योरुक्रिय इत्यत ।।२५।।

भावार्थ—महाभारत मे जिनका समावेश नहीं हो पाया है उनका नामोल्लेख व्यासने [भागवत मे] इस प्रकार किया है। उनको मैं यहाँ बता रहा हूँ—बृहदबल के बृहद्रण, उसके उरुक्रिय, उसके

वत्सवद्ध प्रतिव्योमस्तस्यास्माद्भानुरस्य वा ।
दिवाकस्तस्य पदवी वाहिनीपतिरित्यभूत् ।।२६।।

भावार्थ—वत्सवृद्ध, उसके प्रतिव्योम, उसके भानु और उसके दिवाक हुआ। दिवाक की पदवी 'वाहिनी-पति' थी।

तस्यामीत्सहदेवोस्य बृहदश्वस्ततोभवत् ।
भानुमान् वा प्रतीकाश्वोस्य तस्मात्सुप्रतीकक ।।२७।।

भावार्थ—उसके सहदेव उसके बृहदश्व, उसके भानुमान्, उसके प्रतीकाश्व और उसके सुप्रतीक हुआ।

ततोभू मरुदेवोस्मात्सुनक्षत्रोस्य पुष्कर ।
ततोतरिक्ष सुतपास्तस्मा मित्रजिदस्य तु ।।२८।।

भावार्थ —सुप्रतीक के मरुदेव उसके सुनक्षत्र उसके पुष्कर, उसके अतरिक्ष उसके सुतपा उसके मित्रजित उसके

वृहद्भ्राजस्ततो बर्हिस्तस्मात्तस्य कृतजय ।
तस्माद्रणजयस्तस्य सजय शाक्य इत्यत ।।२९।।

भावार्थ —वृहद्भ्राज उसके बर्हि उसके कृतजय उसके रणजय उसके सजय, उसके शाक्य उसके

शुद्धोदोस्माल्लागलास्य प्रसेनजिदथत्वत ।
क्षुद्रकस्तस्य रणकस्तस्यासीत्सुरथस्तत ।।३०।।

भावार्थ —शुद्धोद उसके लागल उसके प्रसेनजित उसके क्षुद्रक, उसके रणक उसके सुरथ और उसके

सुमित्रस्तु सुमित्रात इक्ष्वाकोरन्वयोभवत् ।
उक्ता भागवते स्कधे नवमे ते मयोदिता ।।३१।।

भावार्थ —सुमित्र हुआ । सुमित्र पर्यन्त इक्ष्वाकु का वश चला । भागवत के नवम स्कन्ध मे इन राजाओ का उल्लेख हुआ है । उनको मैंने यहाँ बताया है ।

द्वाविंशत्यग्रशतकमेषा सख्या कृता बदे ।
प्रसिद्धान्सूयवशस्यावज्रनाभोभवत्तत ।।३२।।

भावार्थ —इनकी सख्या एकसो बाईस है । सुमित्र के बाद हुआ वज्रनाभ । उसके

महारथीति राजेंद्रस्तस्मादतिरथि नृप ।
तस्मादचलसेनस्तु सेनास्यत्वचला रणे ।।३३।।

भावार्थ —राजेन्द्र महारथी उसके राजा अतिरथी और उसके अचलसेन हुआ उसकी सेना युद्ध में अचल रहती थी ।

तस्मात्कनकसेनोस्य महासेनाग इत्यत ।
तस्माद्विजयमेनोस्याऽजयसेनस्ततो भवत् ।।३४।।

भावाय —उसके कनकसेन, उसके महासेन, उसके अग, उसके विजयसेन उसके अजयसेन तथा अजयसेन के

अभगसेनस्तस्मात्तु मदसेनस्ततोऽभवत् ।
भूप सिंहरथस्त्वेते अयोध्यावानिनो नृपा ।।३५।।

भावाय —अभगसेन हुआ । उसके मल्नसेन और मदनसो के राजा सिंहरथ हुआ ये राजा अयोध्या मे रहते थे ।

तस्माद्विजयभूपोय मुक्त्वाऽयोध्या रणागनान् ।
जित्वा नृपा दक्षिणस्थानवसद्दक्षिणक्षितौ ।।३६।।

भावाय —सिंहरथ क राजा विजय हुआ । उसने अयोध्या छोडी और युद्ध-भूमि मे दक्षिण देश के राजाओ को परास्तकर वह वहाँ—दक्षिण देश मे—रहने लगा ।

तत्रास्याकाशवाण्यासो मुक्त्वा राजाभिधामथ ।
आदित्याग्या तु धर्त्व्या भवता भवद न्वये ।।३७।।

भावाय —वहा उसके लिये आकाशवाणी हुई कि हे राजन् ! आप अब 'राजा' पदवी छोडकर अपन वश मे आदित्य पदवी को धारण करें ।

जाता विजयभूपाता राजानो मनुपूवका ।
वीरा सग्येरिता तेपा पचत्रिंशद्युत शत ।।३८।।

भावाथ —मनु से लकर विजय तक जो वीर राजा हुए उनकी सख्या एक सौ पतीस बताई गई है ।

आसीदित्यादि ।

[इति] द्वितीय सग

संवत १७१८ वर्षे माघमास कृष्णपक्षे सप्तम्यां तथौ राजसमुद्र मुहूरत राणा राजसींगजी कीधो ॥ संवत १७३२ वर्ष माघमास शुक्लपक्षे १५ तिथौ राजसमुद्र प्रतिष्ठा कीधी [॥] गजधर मुकुंद गजधर कल्याणजी सुत सुरजण गजधर सुखदेव गजधर केसा ॥ सुंदर ॥ लाला ॥ सोमपुरा जाति ॥ चतुरा पुरुष ॥ राम राम वाचनाजी [॥]

तृतीय सर्ग

[चौथो शिला]

।। श्रीगणेशाय नम ।।

उल्लोलीभवदुन्नताच्छसुरभीपुच्छच्छटाचामर
सद्गोवर्द्धनधन्यगोत्रविलसच्छत्रो जितेंद्रो वली ।
गोपाल कलितश्च गोपतनयासक्तो निजप्रेम वा-
न्यायाद्गोधनभक्तरक्षणपर सच्चक्रवर्त्ती हरि ।।१।।

भावार्थ —हरि चक्रवर्ती है उनके मस्तक पर गोवर्द्धन पर्वत का सुंदर छत्र सुशोभित है। सुरभी का उन्नत एव चपल श्वेत पुच्छ उसके लिये चँवर है। वह बलशाली है। इन्द्र को उसने जीता है। ग्वाले उसकी सेवा मे रहते हैं। वह गोपियो के प्रति अनुराग और स्वजनो पर स्नेह रखता है। गो धन एवं भक्तो की रक्षा करने मे भी वह तत्पर रहता है। वह हमारी रक्षा करे ।

ततो विजयभूपस्य पद्मादित्योभवत्सुत ।
शिवादित्योस्य पुत्रोभूद्धरदत्तोस्य वा सुत ।।२।।

भावार्थ —तदनन्तर विजय के पद्मादित्य उसके शिवादित्य उसके हरदत्त उसके

मुजसादित्यनामास्मात्सुमुखादित्यकस्तत ।
सोमदत्तस्तस्य पुत्र शिलादित्योस्य चात्मज ।।३।।

भावार्थ —मुजसादित्य उसके सुमुखादित्य, उसके सोमदत्त उसके शिलादित्य उसके

केशवादित्य एतस्मान्नागादित्योस्य चात्मज ।
भोगादित्योस्य पुत्रोभूद्देवादित्यस्ततोभवत् ।।४।।

भावार्थ —केशवादित्य, उसके नागादित्य उसके भोगादित्य उसके देवादित्य उसके

आशादित्य बालभोजादित्योऽस्मात्तयोग्य तु ।
ग्रहादित्य इहादित्यास्ततुदशमितास्तत ॥५॥

भावार्थ —आशादित्य उसके बालभोजादित्य और उसके ग्रहादित्य हुआ। यहाँ ये चौदह आदित्य गिनाए गए हैं इसके बाद

ग्रहादित्यसुता सर्वे गहिलोताभिधायुता ।
जाता युक्त तत्र पुनो ज्येष्ठा बाप्पाभिधोऽभवत् ॥६॥

भावार्थ —ग्रहादित्य के सब पुत्र गहलोत कहलाए। उनमें ज्येष्ठ पुत्र बाप्प हुआ जो योग्य था।

य दृष्ट्वा नदिन गौरी दृशावाष्प पुराऽसृजत् ।
नदा गणासौ बाप्पोऽरिप्रियादृग्बाष्पदोऽभवत् ॥७॥

भावार्थ —जिस नन्दी को देखकर पार्वती ने पहले आंसू बहाए थे वही नन्दी अब शत्रु-नारियों के नेत्रों को अश्रु देनेवाला बाप्प नाम से उत्पन्न हुआ।

हारीतराशि सुमुनिश्चड शभोगणोऽभवत् ।
तस्य शिष्योऽभवद्बाप्पस्तस्याज्ञात प्रसादत ॥८॥

भावार्थ —शंभु का चण्ड नामक गण मुनि हारीतराशि हुआ। बाप्प ने उसका शिष्यत्व ग्रहण किया। हारीत ने प्रसन्न होकर जब आज्ञा दी तब

नागह्रदपुरे तिष्ठन्नेकलिंगशिवप्रभो ।
चक्रे बाप्पोऽचनचास्मै वरान्रुद्रो ददौ तत ॥६॥

भावार्थ —बाप्प ने नागह्रदपुर में रहकर भगवान् एकलिंग शिव की आराधना की तदनन्तर शिव ने भी उसे वरदान दिये —

चित्रकूटपतिस्त्व स्यास्त्वद्वश्यचरणाद्ध्रुव ।
मा गच्छतात्चित्रकूट सतति स्यादखडिता ॥१०॥

भावार्थ — तुम चित्रकूट के स्वामी होओ। चित्रकूट तुम्हारे वंशजों के अधिकार से कभी नहीं निकले। तुम्हारी संतति अखंड रहे।

प्राप्येत्यादिवरान्वाप्प एकस्मिन्शतके गते ।
एकाग्रनवतिस्वब्दे माघे पक्षे वलक्षके ।।११।।

भावार्थ—इत्यादि वरदान पाकर वाप्प १९१ वष के माघ मास के शुक्ल पक्ष की

सप्तमी दिवसे वाप्प स पचदशवत्सर ।
एकलिंगेशहारीतप्रसादाद्भाग्यवानभूत् ।।१२।।

भावाय—सप्तमी के दिन भगवान् एकलिंग और हारीत क प्रसाद स भाग्यवान् हुआ। तब उसकी आयु पद्रह वप की थी।

नागह्रदाग्ये नगरे विराजी
नरेश्वर खड्ग धरेपु धय ।
वलेन देहेन च भोजनेन
भीमो रणे भीमतमो रिपूणा ।।१३।।

भावाय—वह नरेश नागह्रद नगर मे सुशोभित हुआ। वह खड्ग धारण करनेवालो में श्रेष्ठ तथा बल मे देह मे और आहार मे भीम एव रण भूमि म शत्रुओ के लिये भीमतम [=अति भयकर] था।

पचाधिकत्रिशदमदहस्त-
प्रमाणयुक्पट्टपट दधान ।
बभा निचोल किल पोडशोद्य-
त्करप्रमाण विमल वसान ।१४।।

भावार्थ— पतीस हाथ क प्रमाण का तो पटट वस्त्र और सोलह हाथ के प्रमाण का स्वच्छ निचोल धारण कर वह शोभा पाता था।

श्री एकलिंगन मुदा प्रदत्त
हारीतनाम्ने मुनयेय तेन।

दत्तं दधानं कटकं च हैमं
पंचाशदुद्यत्पलमानमास्ते ॥१५॥

भावार्थ — प्रसन्न होकर एकलिंग ने मुनि हारीत को सोने का एक कड़ा प्रदान किया था। मुनि ने वही कड़ा बाप्प को दे दिया। बाप्प उसे पहनता था। कड़े का वजन ५० पल था।

द्वात्रिंशदुद्यत्तमटंकुकाढ्य
प्रस्थाभिधं शेरवरं कृतस्य।
मणाख्यचतस्य भरं हि चत्वा
रिंशन्मितं निस्त्रिंशमसिं दधानः ॥१६॥

भावार्थ — बत्तीस टंकुकों के बराबर एक प्रस्थ अर्थात् एक सेर और चालीस सेर के बराबर एक मन। ऐसे एक मन के वजन की तलवार को वह धारण करता था।

एकप्रहारान्महिषौ महासे
दुर्गार्चनायां जवता विनिघ्नन्।
भुंजन्महाछागचतुष्टयं स
अगस्त्ययशस्त्यं प्रबभूव बाप्पः ॥१७॥

भावार्थ — दुर्गा-पूजा के अवसर पर वह अपनी बड़ी तलवार के एक प्रहार में दो महिषों का वध करता था। उसके आहार में बड़े बड़े चार बकरे काम आते थे। इस प्रकार बाप्प अगस्त्य के समान प्रशंसनीय हुआ।

ततः स निर्जित्य नृपं तु मौरी-
जातीयभूपं मनुराजसंज्ञं।
गृहीतवांश्चित्रितचित्रकूटं
चक्रेऽत्र राज्यं नृपचक्रवर्त्ती ॥१८॥

शीघ्र जगराजाभ त्स्य राणा
निघ्य ुराम्याति न भार्वासह ॥२२॥

भावार्थ — मरवमा र नन्दनि उमक उ ाम उमक भरव उमक पु जराज उमक वर्णान्सिय धौर उनक भावसिह हुधा ।

श्रामातर्सिहाय म हमराज
मनाम्य मूनु ुभयागराज ।
म तरचाम्याय म वरिसिह-
म्ततास्य वा रायलतजसिह ॥२३॥

भावार्थ — भावसिह क गावसिह उमक हमराज उमक शुभयागराज उमक तजसिह धौर

तत ममरसिहास्य पृथ्वीराजस्य भूपत ।
पृथास्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहादत ॥२४॥

भावार्थ — तेजसिंह के समरसिंह हुधा । समरसिंह राजा पृथ्वीराज की बहिन पृथा का पति था । इस स्नेह के कारण उमन

गारी माहिबदीनन गञ्जनीशन मगर ।
कुवतो यवगवम्य महामामतशाभिन ॥२५॥

भावाथ —जब गजनी क स्वामी शाहाबुद्दीन गोरी के विरुद्ध बड़ बड़ सामन्ता का साथ म नकर महाभिमानी

दिल्लीश्वरस्य चाहानताथस्यास्य महायकृत् ।
मद्द्वादशसहस्र स्ववीरामा महिता रणे ॥२६॥

भावार्थ — दिल्ली-पति पृथ्वीराज चौहान लड रहा था तब उसकी सहायता की । समरसिंह के साथ तब स्वय क बारह हजार योद्धा थ । उसन रण भमि म

बद्ध्वा गोरीपतिं दवात्स्वयति सूर्यबिंबभित् ।
भाषागमापुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तर ॥२७॥

भावार्थ — गौरी-पति को बाधा, पर दवयोग से सूर्य मंडल को भेदकर वह स्वर्ग सिधार गया। भाषा की 'रासा' नामक पुस्तक में इस युद्ध का विस्तृत वर्णन है।

तस्यात्मजाभू नृपकर्णरावल
प्रोक्तास्तु षड्विंशतिरावला इमे ।
कर्णात्मजो माहपराजलोभव-
स्स डूंगराद्ये तु पुरे नृपो वभौ ॥२८॥

भावार्थ — समरसिंह के कर्ण हुआ ये छत्तीस 'रावल' नरेश हुए, जिनका यहाँ उल्लेख हुआ है। कर्ण के हुआ माहप। वह डूंगरपुर का राजा बना।

कर्णस्य जातस्तनयो द्वितीय
श्री राहप कर्णनृपाज्ञयोग्र ।
आक्येन वा शाकुनिकस्य गत्वा
मंडोवरे मोकलसी स जित्वा ॥२९॥

भावार्थ — कर्ण के दूसरा पुत्र हुआ राहप। वह उग्र था नृपति कर्ण की आज्ञा एवं शाकुनिक के कथन से मंडोवर पहुंच कर उसने मोकलसी पर विजय पाई तथा

तानातिके स्वानयति स्म बद्ध्वा
कर्णोस्य राणाविरुदं गृहीत्वा ।
मुमोच तं चारु ददौ तदीयं
रानाभिधानं प्रियराहपाय ॥३०॥

भावार्थ — उसे बाँध कर वह अपने पिता के समीप ले आया। कर्ण ने मोकलसी का 'राणा' विरुद छीनकर उसे छोड दिया और अपने प्रिय राहप को वह पदवी दे दी।

भट्याशिषा ब्राह्मणपल्लिवाल
　　जातीय विद्वच्छरणत्यनाम्न ।
श्री चित्रकूट बललब्धराज्य ॥
　　चक्रे तता राहप एष वीर ॥३१॥

भावार्थ — तदनन्तर पल्लिवाल जाति के शरणत्य नामक विद्वान् ब्राह्मण के उत्तम आशीर्वाद से उस वीर राहप ने चित्रकूट पर बलपूर्वक राज्य किया।

ततो बभौ चित्रकूटे राहपा वाह्पार्थक ।
पूर्व सीसोदनगरे वासात्सीसोदिया स्मृत ॥३२॥

भावार्थ — तब बप्पा का पार्थक वह राहप चित्रकूट पर सुशोभित हुआ। वह पहले सीसोद नगर में रहने के कारण सीसोदिया कहलाता था।

रानाचिह्नाभिधानेन राहप्युक्ताखिलैरभौ ।
अशम्य ग्रे भविष्यति रानाविरुदिनो नृपा ॥३३॥

भावार्थ — 'राना चिह्न' के मिलजाने पर उसे सब लोग 'राना' कहने लगे आगे भी इसवंश में जो राजा होंगे वे राना विरुद धारण करेंगे।

राजद्राजापूज्याय　　नारायणपरायण ।
विशेषणाद्यिराणिया राना रानाभिधा दधे ॥३४॥

भावार्थ — वह राजेन्द्र राजों पूज्य एवं नारायण परायण था। अर्थात् बड़े बड़े राजा उसकी पूजा करते थे तथा वह नारायण का परम भक्त था। उसने जो राना पदवी धारण की उसमें इन्हीं दो विशेषणों के प्रथम दो वर्ण [राना] लगे हैं।

आसीद्भास्करतस्तु　माधवबुधोऽस्माद्रामचन्द्रस्तत
　　सत्सर्वेश्वरक कठोडिकुलजो लक्ष्मायादिनाथस्तत ।
तैलगोस्य तु रामचंद्र इति वा कृष्णोस्य वा माधव
　　पुत्रोभू मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमा ॥३५॥

भावार्थ—भास्वर का पुत्र माधव था। माधव क पुत्र हुआ रामचद्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर। सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ जो कठोडी कुल मे उत्पन्न हुआ उससे हुआ तनय रामचन्द्र। उस रामचन्द्र क ब्रह्मा, शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए—कृष्ण माधव और मधुसूदन।

यस्यासो मधुसूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजाऽ-
भूमाता रणछोड एप कृतवा राजप्रशस्त्याह्वय।
काव्य सा जयराजसिंहसुगुणश्रीवर्णनाढय मह-
द्वीराक समभूत्तृतीय इह सत्सग सुसग स्फुट ॥३६॥

भावार्थ—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है, उस रणछोड ने राजप्रशस्ति नामक यह काव्य रचा है। इसमे नृपति राजसिह, उसके वश, वभव एव गुणो का वणन है। इसके अतिरिक्त यह बडे बडे योद्धाओ के जीवन-चरित मे अकित है। यहाँ यह तीसरा सग सपूण हुआ जिसकी रचना बहुत सुदर हुई है।

इति श्रीतेलगज्ञातीयकठोडीकविपडितोपनाममधुसूदन भटटपुत्ररण छोडकृते राजप्रशस्त्याह्वये महाकाव्ये तृतीय सग।

स० १७३२ वर्षे माघी १५ राजसमुद्रप्रतिष्ठा॥

चतुर्थ सर्ग

[पाँचवी शिला]

।। गणेशाय नम ।।

कलितहलिनिचोलो नीललोलोतिकेसौ
तररिति धृतवस्त्रा दगतो यत्र गोप्य ।
विदधति जलकेलि य च सिंचति सोम्मा
न्सुखयतु यमुनायास्तीर[व]र्त्तो नमाल ।।१।।

भावाथ —बलराम का नीला निचोल धारण कर यमुना तट पर पास ही मे खडे सावले और चचल [कृष्ण] को देखकर गोपिया ने समझा कि यह तमाल का वृक्ष है और वे वस्त्र उतारकर चपलता से जल केलि करने व उस वृक्ष पर पानी छिडकने लगी। गोपियो का वह तमाल तरु हमे आनन्द प्रदान करे।

तस्य पुत्रो नरपती रानास्य जसकरणक ।
तत्सुतो नागपालोस्य पुण्यपाल सुतोस्य तु ।।२।।

भावाथ —राहप के नरपति उसके जसकरण उसके नागपाल उसके पुण्यपाल उसके

पृथ्वीमल्ल सुतस्तस्य पुत्रो भुवनसिंहक ।
तस्य पुत्रो भीमसिंहो जयसिंहोस्य तत्सुत ।।३।।

भावाथ —पृथ्वीमल्ल उसके भुवनसिंह उसके भीमसिंह, उसके जयसिंह तथा उसके

लक्ष्मसिंहस्त्वेप गढमडलीकाभिधोस्य तु ।
कनिष्ठो रत्नसी भ्राता पद्मिनी तत्प्रियाभवत ।।४।।

भावाथ —लक्ष्मणसिंह हुआ। वह गढमडलीक कहलाता था। उसका छोटा भाई रत्नसी था। रत्नसी की पत्नी पद्मिनी थी।

तत्कृतेल्लावदीनेन रुद्धे श्रीचित्रकूटके ।
लक्ष्मसिंहो द्वादशस्वभ्रातृभि सप्तभि सुतै ॥५॥

भावार्थ —पद्मिनी के लिये अल्लाउद्दीन ने जब चित्रकूट को घेर लिया तब लक्ष्मणसिंह अपने बारह भाइयो तथा सात पुत्रो

सहित शस्त्रपूतासौ दिव यातोस्य चात्मज ।
एक उवरितोऽजैसी राज्य चक्रे ततोऽरसी ।[।६।।]

भावार्थ —सहित शस्त्राहत होकर स्वर्ग सिधार गया । उसका अजैसी नामक एक पुत्र बचा जिसने राज्य किया । उसके बाद अरसी,

ज्येष्ठ सुत पितु सगे यो हतस्तत्सुतो दधे ।
राज्य हमीरो दानीद्रो मूर्द्ध गगाप्रदर्शक ।।७।।

भावार्थ —जो लक्ष्मणसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था और अपने पिता के साथ युद्ध मे मारा गया था, के पुत्र हमीर ने राज्य किया । वह दानियो मे श्रेष्ठ था । उसके मस्तक पर गगा दिखाई देती थी । उसने

विद्धरे त्विद्रसरसि श्रीमूर्त्ति स्फाटिकी धृता ।
न प्राप्ता सुस्थ समये एकलिगस्य तद्वयधात् ।।८।।

भावार्थ —स्फटिक की बनी एकलिंग की मूर्ति, जो सकट के समय इन्द्रसर नामक सरोवर मे रख दी गई थी के न मिलने पर शुभ समय में

मूर्ति चतुर्मुखीमेता श्यामा श्यामायुना तत ।
क्षेत्रसिहस्ततो लाखा लक्षदो मोकलस्तत ।।९।।

भावार्थ —श्याम [पाषाण निर्मित] इस चतुर्मुखी प्रतिमा की प्रतिष्ठा की । साथ मे पार्वती की भी । तदनन्तर हमीर के क्षेत्रसिंह और उसके लाखा हुआ वह लाखो का दान देता था । उसके हुआ मोकल । उसने

भातृरावतवाघस्याऽनपत्यस्य फनाप्तये ।
वाघेलाग्य तडाग तन्नाम्ना नागह्र्देऽकरोत् ।।१०।।

भावार्थ—सतति हीन भाई रावत बाघ के मा त क लिये नागह्रद म उसके नाम से वाघेला' नाम का एक तडाग बनवाया।

त्रिद्वार स्फटिकाभाश्मजुष्ट कलासवन्नृप ।
प्राकारमुत्तमाकारमेकलिंगप्रभो र्यधात् ।।११।।

भावार्थ—नृपति मोकल न भगवान् एकलिंग के मन्दिर का उत्तम प्राकारवाला कैलास के समान परकोटा बनवाया जिसकी जुड़ाई स्फटिक के समान सफेद पत्थरो से हुई है। उसम तीन द्वार रखे गये।

कृत्वाथ द्वारका यात्रा शखोद्धार गतस्तत ।
सिद्ध एकोस्य पत्न्यास्तु गर्भे राज्याप्तयेविशत् ।।१२।।

भावार्थ—इसके बाद द्वारका यात्रा करके वह शखोद्धार नामक तीर्थ स्थान पर पहुँचा। वहा एक सिद्ध ने राज्य प्राप्ति के लिय उसकी पत्नी के गभ में प्रवेश किया।

स कु भकर्णोभूत्पुत्रो मोकलस्यास्य मस्तकात् ।
स्रवति स्म जल गाग प्रसिद्धमिति निश्चयभूत् ।।१३।।

भावार्थ—वही सिद्ध कु भकरण नाम से मोकल का पुत्र हुआ। मोकल के मस्तक से रात में गगा का जल बहता था जो प्रसिद्ध ही है।

कु भकर्णोथ भूपोभूद् गकु भलमेरुकृत् ।
स षोडशशतस्त्रीयुक् रायमल्लोथ राज्यकृत् ।।१४।।

भावार्थ—मोकल के बाद कु भकरण राजा बना। उसने कु भलमेरु नाम का एक दुर्ग बनवाया। उसके सोलह सौ स्त्रियाँ थी। कु भकरण के बाद रायमल न राज्य किया।

सग्रामसिंहस्तत्पुत्र स द्विलक्षमितैर्भट ।
युक्तो बाबरदिल्लीशदेशे फत्तेपुरावधि ।।१५।।

भावार्थ —रायमल के पुत्र संग्रामसिंह हुआ। दो लाख सैनिकों को साथ लेकर वह दिल्ली के स्वामी बाबर के देश में फतहपुर तक

गत्वात्र पीलियाखालपर्यं(त) पयकल्पयत् ।
स्वदेशसीमानमय रत्नसिंहोथ राज्यकृत् ।।१६।।

भावार्थ —पहुंचा। वहाँ उसने पीलियाखाल पर्यन्त अपने देश की सीमा बनाई। तदनन्तर रत्नसिंह ने राज्य किया।

तदभ्राता विक्रमादित्यो भूपोभूत्तस्य सोदर ।
राना उदयसिंहोथ स दिव्योदयसागर ।।१७।।

भावार्थ —रत्नसिंह के बाद उसका भाई विक्रमादित्य पृथ्वीपति बना। तत्पश्चात् विक्रमादित्य का सहोदर उदयसिंह राणा हुआ। उसने उदयसागर नाम का एक सुन्दर सरोवर

तथोदयपुर चक्रे तडागोत्सगकर्मणि ।
छीतूभट्टाय सोदयलक्ष्मीनाथयुतायच ।।१८।।

भावार्थ —बनवाया और उदयपुर नगर की स्थापना की। तड़ाग के प्रतिष्ठा-कार्य में उसने छीतूभट्ट एव उसके सहोदर लक्ष्मीनाथ को

भूरवाडाग्राममदाद्व्यधाद्दान तुलादिक ।
चित्रकूटेथ योद्धास्य राठोडो जैमलो रण ।।१९।।

भावार्थ —भूरवाडा नामक गाँव दिया। उस अवसर पर उसने तुलादिक दान भी दिये। तदनन्तर उसके योद्धा राठोड़ जमल,

पत्ता सीसोदिया चक्रे दिल्लीशेन महायशा ।
अकब्बरेण भटयुग्वीर ईश्वरदासक ।।२०।।कुलक।।

भावार्थ —महान् यशस्वी सीसोदिया पत्ता और सैनिकों सहित वीर ईश्वरदास ने दिल्ली पति अकबर से युद्ध किया।

प्रतापसिहाय नृप वच्छवाहेन मानिना ।
मानसिहन तस्यामीद्वैमनस्य भुजेर्विधौ ॥२१॥

भावार्थ—उदयसिह क बाद प्रतापसिह राजा हुआ । भाजन क प्रसग को लेकर अभिमानी मानसिह कछवाहा म उसकी शत्रुता हो गई ।

अकब्बरप्रभा पार्श्वे मानसिहस्ततो गत ।
गृहीत्वा तदबल ग्रामे खँभनोर समागत ।२२॥

भावार्थ—इस कारण मानसिह बादशाह अकबर के पास गया और उसकी सेना लकर खमणोर गाव म आया ।

तयोयु द्धमभूदघोर लोहकोष्ठगतस्य स ।
मानसिहस्य कु भाद्रकु भे शु भपराक्रम ॥२३॥

भावार्थ—वहाँ प्रताप और मानसिह क बीच भीषण युद्ध हुआ । मानसिह हाथी पर लोह क बने होदे म बठा था । उसी हाथी के कु भस्थल पर शु भ के समान पराक्रमी

ज्येष्ठ प्रतापसिहस्य अमरशाभिध सुत ।
कु त शकु तवेगोय मुमुचारुणलोचन ॥२४॥

भावार्थ—प्रतापसिह क ज्यष्ठ पुत्र अमरसिह न पक्षी का तरह भपटकर अपना भाला फका । उसकी आखें क्रोध क कारण लाल हो रही थी ।

राणाप्रतापसिहोथ मानसिहस्य हस्तिन ।
कु भे कु त मुमोचाशु पश्चाद्दती पलायित ॥२५॥

भावार्थ—इसक बाद राणा प्रतापसिह न भी मानसिह क उस हाथी के कु भस्थल पर अपना भाला अविलम्ब फका । हाथी भाग गया ।

समयेत्र प्रतापेश शक्तिसिहोस्य सादर ।
मानसिहस्य सगस्थो दृष्ट्वैव स्नेहतोवदत् ॥२६॥

भावार्थ—इसी समय राणा प्रताप को देखकर उसका सहोदर शक्तिसिह जो मानसिह के समीप खडा था स्नह पूवक इस प्रकार बोला —

नोलाश्वस्याश्ववार त्व पश्चात्पश्य प्रभा तत ।
प्रतापसिहो ददृशे श्वमेकमथ निर्ययौ ॥२७॥

भावाथ —'हे स्वामी ! नीले घोडे के सवार !! पीछे देखो ! प्रताप न एक अश्व देखा। इसके बाद वह वहाँ से निकल गया।

ततो द्वौ मुगलौ वीरौ मानसिहन वेगत ।
प्रेषितौ शक्तसिहोपि गृहीत्वाज्ञा महाबल ॥२८॥

भावार्थ —तदनतर मानसिह ने तत्काल दा मुगल वीरो का [उसके पीछे] भजा। मानसिह की आज्ञा लकर महाबली शक्तिसिह भी चल पडा।

मानसिहस्य मुगला प्रतापेंद्रेण सगर।
चक्रतु श्री प्रतापेन शक्तसिहेन तौ तत ॥२९॥

भावाथ —मानसिह के उन दा मुगलो न राणा प्रताप स युद्ध किया। तब प्रताप और शक्तिसिह के द्वारा व दोनो

निहतौ हितकारीति शक्तसिह सहोदर ।
राणेनोक्त शक्तसिहवशस्तद्राणवल्लभ ॥३०॥

भावाथ —मारे गये। राणा ने कहा -- सहोदर शक्तिसिह हितषी है। इसी कारण शक्तिसिह का वश राणा का प्रिय बना।

अकब्बर इहायातस्ततश्चक्रे स सगर ।
प्रतापसिह बलिन मत्वा शेखूसुनामक ॥३१॥

भावार्थ —इसक बाद अक्बर वहा पहुँचा और उसने युद्ध किया लेकिन प्रताप सिह को वलशाली समझकर वह अपने शखू नामक

सस्थाप्यात्र सुत ज्येष्ठमागरा प्रति निर्ययौ ।
अमरेश खानखानादाराणा हरण व्यधात् ॥३२॥

ज्येष्ठ पुत्र को वहाँ रख स्वय आगरा की ओर चला गया। अमर सिह ने खानखाना की स्त्रियो का हरण किया।

सुवासिनीवत्मतोप्य प्रेपयामास ता पुन ।
खानखानस्याद्भ ुत तज्जात शेखूमनस्यापि ॥३३॥

भावाय —कि तु वह्नि-चटिया के समान उन्हे सतुष्ट कर उसन वापस भेज दिया । इस बात को लेकर खानखाना और शेखू के मन में आश्चय हुआ ।

तत शेखू जहागीरनामा दिल्लीश्वरोभवत् ।
पुनरत्रागतो युद्ध कृत्वा खुरमनामक ॥३४॥

भावाय —इसके बाद शेखू जहागीर नाम से दिल्ली का स्वामी बना । एक बार फिर वहाँ आकर उसने युद्ध किया । तत्पश्चात् खुरम नामक

सस्थाप्यात्र सुत स्वीय रद्ध कृत्वा प्रतापिन ।
प्रतापसिंह चतुरशीतिसयवृ त गत ॥३५॥

भावाय —अपने पुत्र को वहाँ रखकर तथा प्रतापी प्रतापसिंह को चौरासी सनिकों स घरकर वह

दिल्लीं प्रति प्रतापेशो घट्टे देवेरनामके ।
मुलतान मेरिमाख्य चकताग्य गजस्थित ॥३६॥

भावाथ —दिल्ली की ओर चला गया । प्रताप ने दीवेर के घाटे म, हाथी पर बठे हुए मुलतान सरिम चकता को

दिल्लीशस्य पितृ य त वीक्ष्याभूत्समुखस्तत ।
सोऽ कभृत्यश्चिच्छेद गजाह्नी पडिहारक ॥३७॥

भावाय —देखकर उसका सामना किया । चकता दिल्ली-पति का काका था । तब सोनकि भृत्य पडिहार न सेरिम के हाथी के दो पाँव काट दिय ।

प्रना [प] सिंहा राणद्रा रण रावणविक्रम ।
शकु तवेग कु तेन कु भिकु भ वभज स ॥३८॥

भावार्थ —युद्ध म रावण के समान पराक्रमी राणा प्रतापसिंह ने भी पक्षी की तरह झपटकर भाले स उस हाथी के कु भस्थल को फोड दिया ।

पपात कुंभी तुरगमारुरोहाथ सेरिम ।
अमरेश स्वकुंतेन व्यहनत्सेरिमाभिध ॥३९॥

भावार्थ —हाथी गिर गया। तब सेरिम घोड़े पर चढा। अमरसिंह ने भाले से सेरिम पर वार किया।

स कुंत सशिरस्त्राणवर्माश्व तमखंडयत् ।
अमरेशकराकृष्ट सकुंतो न विनिसृत ॥४०॥

भावार्थ —अमरसिंह के भाले ने टोप, कवच और अश्व सहित उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। अमरसिंह ने हाथ से भाले को खींचा पर वह निकला नहीं।

तत प्रतापेंद्राज्ञातो दत्त्वा लत्ता पदेन स ।
कुंत चकर्षामर्षेण कुंताप्त्या हर्षमादधे ॥४१॥

भावार्थ —तब प्रताप की आज्ञा से उसने पाव से लात देकर भाले को क्रोध पूर्वक खींचा। भाले के निकल जाने पर उसे हर्ष हुआ।

दर्शनीय स येनाह निहत सेरिमोवदत् ।
प्रतापसिंहस्तच्छ्रुत्वा प्रैषयत्कंचिदुद्भट ॥४२॥

भावार्थ —सेरिम ने कहा—"जिसने मुझे मारा है, उसे दिखलाइये।" यह सुनकर प्रतापसिंह ने उसके पास किसी योद्धा को भेजा।

भट त वीक्ष्य तेनोक्त नाय प्रेष्य स एव तु ।
राणेंद्र प्रेषयामास अमरेश रणोत्कट ॥४३॥

भावार्थ —उस वीर को देखकर सेरिम बोला— यह नहीं है। उसी को भेजिये।' महाराणा ने तब रणोन्मत्त अमरसिंह को भेजा।

त दृष्ट्वा सेरिमोवाच सोयमस्ति मयेक्षित ।
युद्धकाले नभोभूमिव्यापिशीर्षशरीरवान् ॥४४॥

भावार्थ —उसे देखकर सेरिम ने कहा – यह वही है जिसे मैंने युद्ध में देखा है। उस समय इसका मस्तक तो आसमान से जा लगा था और शरीर पृथ्वी पर फैल गया था।

दवानन हताह हि यास्य स्थान शुभ तन ।
कासीयलादयु चतुरशीतिप्रमिता गता ॥४५॥

भावार्थ —ह महाराणा ! मैं इसके द्वारा मारा गया हू । इस कारण मैं देवलोक म जाऊगा । इसके बाद कामोदन प्रादि स्थानो म नियुक्त चौरासी

स्थानपाला प्रतापेंद्रा महान्ग्यपुरवमन् ।
दान ददा कापि भाट प्राप्याप्णीषादिक धन ॥४६॥

भावार्थ —थानत चल गय । प्रतापसिंह उदयपुर में रहने लगा । वह दान भी करता रहा । कोई भाट पगडी आदि धन

प्रतापसिंहादिल्लीश द्रष्टु यातस्तदतिक ।
यदा प्राप्तस्तदा बद्ध तदुष्णीष करेदधत् ॥४७॥

भावाथ —प्रतापसिंह स लेकर दिल्ली-पति को देखने के लिए दिल्ली गया । वह जब बादशाह क समीप पहुचा तब उसने बँधी हुई पगडी हाथ म रखली ।

गत्वा सलाम कृतवादिल्लीशेन तदेरित ।
किमिद सोवदद्राणाप्रतापोष्णीषमित्यत ॥४८॥

भावार्थ —निकट जाकर जब उसन सलाम किया तब बादशाह ने कहा— ऐसा क्यों ? भाट न उत्तर दिया—'राणा प्रताप की दी हुई यह पगडी है इस कारण

न धृत मूर्द्धि दिल्लीशस्तुतोष नापिताशय ।
तदा समस्त जगति सर्वेहिंदूतुरुष्कके ॥४९॥

भावाथ —मैंने इस मस्तक पर धारण नहीं किया । आशय को समझकर बादशाह प्रसन्न हुआ । तब सारे ससार में समस्त हिन्दुओ और तुर्कों न

अनम्र श्रीप्रतापेंद्रा वीर इत्युक्तमौचिती ।
इति राणाप्रतापस्य प्रताप कथिता मया ॥५०॥

भावाथ — यह कहा— 'श्री प्रतापसिंह अनम्र वीर है । यह उचित ही है । राणा प्रताप के प्रताप का मैंने इस प्रकार वर्णन किया ।

इति श्रीराजप्रशस्त्याह्वये महाकाव्य वीराक चतुर्थ सर्ग ।

पचम सर्ग

[छठी शिला]

।। श्री गणपतये नम ।।

राना अमरसिंहाख्योऽकरोद्राज्य तत पुरा ।
मानसिंहस्य सग्रामे खानखानावधूहृतौ ।।१।।

भावार्थ—प्रताप के बाद राणा अमरसिंह ने राज्य किया । पहल मानसिंह के सग्राम, खानखाना की स्त्रियो के अपहरण और

सेरिमासुलतानस्य वध प्रोक्तोस्य विक्रम ।
जहागीरस्यापितेन खुरमेणाथ युद्धकृत् ।।२।।

भावार्थ—सुलतान सेरिम के वध क प्रसग म इसके पराक्रम का वर्णन किया जा चुका है। तत्पश्चात् उसन जहाँगीर के द्वारा नियुक्त खुरम से युद्ध किया ।

अब्दुल्लहखानेन वक्रश्चक्रे रण तत ।
चतुर्विशतिसख्यैस्तै रुद्ध स्थानेश्वरैरल ।।३।।

भावाथ—तदनन्तर उस वक्र वीर अमरसिंह ने अब्दुल्लाखाँ से युद्ध किया। इसके बा॰ उस चौबीस थानेता ने घेर लिया ।

दिल्लीपतेर्भृत्यवर जघ्ने कायमखानक ।
ऊटालाया मालपुरभग चक्रेन दडकृत् ।।४।।

भावाथ—दिल्ली पति के भृत्यवर कायमखाँ को उसने ऊँटाला मे मारा । मालपुर को नष्ट कर उसन वहा से कर वसुल किया

पुत्रोस्य कर्णसिंहाख्य सिरोज मालवाभुव ।
धधेराक्ष्मा बभजात्र दड चेक्रेतिलुटन ।।५।।

भावाथ—अमरसिंह के पुत्र कर्णसिंह ने सिरोज तथा मालवा और धंधेरा देश को नष्ट कर उन्हे खूब लूटा और वहाँ से कर वसूल किया ।

ततो जहांगीरानात खुरमा मिलन व्यधात् ।
गोघूंदाया समायात अमरेशो निजस्थलात् ॥६॥

भावार्थ—इसके बाद जहांगीर की आज्ञा से खुरम ने [अमरसिंह से] संधि की अमरसिंह अपने स्थान से गोगूंदा में आया।

महोदयपुरात्तत्र खुरमोपि समागत ।
श्लाघ्यरीत्या सादर तौ सस्नेहौ मिलितौ तत ॥७॥

भावार्थ—उदयपुर से खुरम भी वहाँ पहुँचा। और सस्नेह वे दोनों प्रशंसनीय रीति से आदरपूर्वक मिले। तत्पश्चात्

राना अमरसिंहद्रो महोदयपुरेऽवसत् ।
महादानानि विदधे चक्रे राज्य सुखाधिवत ॥८॥

भावार्थ—राणा अमरसिंह उदयपुर में रहने लगा। उसने बड़े-बड़े दान दिये। और सुखपूर्वक राज्य किया।

लक्ष्मीनाथाम्यभट्टाय गुरवेमन्त्रदायिने ।
राना अमरसिंहद्रो होलीग्राम ददौ मुदा ॥९॥

भावार्थ—प्रसन्न होकर राणा अमरसिंह ने मन्त्र देने वाले गुरु लक्ष्मीनाथ भट्ट को होली गाँव प्रदान किया।

अथ रानाकर्णसिंहश्चक्रे राज्य पुराकरोत् ।
महाकौमारपदे गगातीरे रूप्यतुला ददौ ॥१०॥

भावार्थ—इसके बाद राणा कर्णसिंह ने राज्य किया। पहले जबकि वह कुमार पद पर था उसने गंगा के तट पर चांदी का तुलादान किया।

शूकरक्षेत्रविप्रेभ्यो ग्राम पूर्व तु विद्धरे ।
घंघेरामालवादेशसिरोजपुर भग्नकृत् ॥११॥

भावार्थ—शूकर क्षेत्र के ब्राह्मण को तब उसने एक गांव भी दिया। पहले जैसा कि कह आये हैं युद्ध घंघेरा और मालवा देश को तथा सिरोजपुर को नष्ट किया।

3539

अखैराज सिरोहीश चक्रे शत्रुजित बलात् ।
पद्मलक्ष्माह्रिकमल कर्णदानपराक्रम ॥१२॥

भावार्थ—अखैराज को शत्रुओ ने जीत लिया था। पर उसने बलपूर्वक उसे सिरोही का स्वामी बनाया। कर्णसिह के चरण कमलो मे पद्म चिह्न थे। वह कर्ण के समान दानी एव पराक्रमी था। उसने

दिल्लीश्वरराज्जहांगोरात्तस्य खुरमनामक ।
पुत्र विमुखता प्राप्त स्थापयित्वा निजक्षितौ ॥१३॥

भाशय—दिल्ली-पति जहाँगीर से विमुख हुए उसके पुत्र खुरम को अपने देश म ठहराया और

जहागीरे दिव याते सगे भ्रातरमजु न ।
दत्वा दिल्लीश्वर चक्रे सोऽभूत्साहिजहाभिध ॥१४॥युग्म

भावार्थ—जहाँगीर के देवलोक होजान पर साथ मे भाई अजु न को भेजकर उसे दिल्ली का स्वामी बनाया। खुरम 'शाहजहाँ' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शते पोडशकेतीते चतु पष्ट्यभिधेब्दके ।
भाद्रशुक्लद्विती [या] या कर्णसिहनृपादभूत् ॥१५॥

भावार्थ—सवत् १६६४, भाद्रपद शुक्ला द्वितीया के दिन नृपति कर्णसिह के

जगत्सिहो महेचाख्यराठोडजसवन्तजा ।
श्रीमज्जाबुवती तस्या कुक्षेर्जातो बली महान् ॥१६॥

भावार्थ—महेचा राठौड जसवन्तसिह की पुत्री श्रीमती जाबुवती की कोख से, महाबली जगतसिह हुआ।

शते पोडशकेतीते पचाशीत्यभिधेब्दके ।
राधशुक्लतृतीयाया राज्य प्राप जगत्पति ॥१७॥

भावार्थ—जगतसिह ने सवत् १६८५ वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन राज्य प्राप्त किया।

जगत्सिंहाज्ञया मन्त्री अखैराजा बलान्वित ।
स डूगरपुर प्राप्त पुजानामाय रावल ॥१८॥

भावार्थ —जगतसिंह की आज्ञा से मन्त्री अखराज सेना लेकर डूगरपुर पहुचा उसके पहुचने पर रावल पुजा वहाँ से

पलायित पातित तच्चदनस्य गवाक्षक ।
लुटन डूगरपुरे कृत लोकैरल तत ॥१९॥

भावार्थ —भाग गया । लोगो ने उसके चदन के बने गवाक्ष को गिरा दिया डूगरपुर को खूब लूटा । तत्पश्चात

जगत्सिंहाज्ञया याता राठोडो रामसिंहक ।
प्रति देवलिया सेनायुक्ता रावतमुद्भट ॥२०॥

भावार्थ —जगतसिंह की आज्ञा से रामसिंह राठौड सेना लेकर देवलिया की ओर गया । वहाँ के उद्भट रावत

जसवत मानसिंहपुत्रयुक्त जघान स ।
पुर्यां देवलियाया च लुटन रचित जनै ॥२१॥

भावार्थ —जसवतसिंह को उसने मारा । साथ में उसके पुत्र मानसिंह को भी । लोगो ने तब देवलिया नगरी को लूटा ।

शते षोडशकेनीते षडशीत्यधिकेऽब्दके ।
ऊर्जेकृष्णद्वितीयाया जगत्सिंहमहीपते ॥२२॥

भावार्थ —सवत् १६८६ कार्तिक कृष्णा द्वितीया के दिन पृथ्वीपति जगतसिंह के

पुत्र श्रीराजसिंहोभूद्वर्षानि अरसी तथा ।
मेडताधिपराठोडराजसिंहमहीभृत ॥२३॥

भावार्थ —राजसिंह तथा एक वर्ष के बाद अरसी नामक पुत्र हुआ । मेडता के स्वामी राजसिंह राठौड की

पुत्री जनादेनाम्नो तत्कुक्षिजाताविमौ सुत ।
अभू मोहनदासाख्योऽपरिणीताप्रियाभव ॥२४॥

भावार्थ —पुत्री जनाद की कोख से ये दो पुत्र हुए। अपरिणीता प्रिया से उसके माहन दास नामक पुत्र हुआ।

अखैराज सिरोहीश वश्य चक्रेऽग्रहीद्भुव।
तोगाख्यवालीसाभूपादखैराजेन खडितात् ॥२५॥

भावार्थ —जगतसिंह ने सिराही के स्वामी अखैराज का वश मे किया और अखराज द्वारा पराजित तोगा वालीसा राजा से पृथ्वी छीन ली।

प्रासाद स्वगृहे चक्रे मेरुमदिरनामक।
पीछोलाख्यतटाकस्य तट मोहनमदिर ॥२६॥

भावार्थ —उसने अपने निवास स्थान म मेरुमदिर और पिछोला' भील के किनार माहनमदिर' नाम के प्रासाद बनवाये।

जगत्सिहनृपाज्ञातो बाँसवालापुरे गत।
प्रधानो भागचदाख्यो रावल सावलो गिरौ ॥२७॥

भावार्थ—नृपति जगतसिंह की आज्ञा से प्रधान भागचद बासवाडा नगर मे पहु चा। उसके पहुँचने पर स्त्रियो को साथ लेकर वहाँ का रावल

गत समरसीनामा ततो लक्षद्वय ददौ।
दड रजतमुद्राणा भृत्यभाव सदा दधे ॥२८॥

भावाथ —समरसी पहाडो म चला गया। रावल ने तब दो लाख रुपये दड स्वरूप दिये और सदा के लिये महाराणा की अधीनता स्वीकार की।

बूँदीशत्रुशल्यस्य भावसिहाख्यसूनवे।
स्वकन्या विधिना भूपो दत्वात्रैव ददौ पुन ॥२९॥

भावार्थ—इसके बाद जगतसिंह ने बूँदी के स्वामी शत्रुशल्य के पुत्र भावसिंह के साथ अपनी पुत्री का विधिपूवक विवाह किया और उसी अवसर पर

सप्तविंशतिमरयाम्तु राजयेभ्यो यकन्यका।
एकलिंगालये चक्रे हेमकु भध्वजादिकान् ॥३०॥

भावार्थ —मल्लार्दम श्रय कयाए क्षत्रियो को दी। उसने एकलिग के मन्दिर पर स्वर्ण कलश ध्वजा आदि चढ़ाये।

वत्सरेऽष्टनवत्याग्ये शत षोडशके गत।
दीपावल्युत्सवे बाईराजजाम्बुवती व्यधात् ॥३१॥

भावार्थ —सवत् १६९८ म दीपावली क उत्सव पर बाइराज जाबुवती न

द्वारकातीर्थयात्रा श्रीरणछोडस्य सेवन।
तथा रूप्यतुला चक्रे दाना न दानि सादर ॥३२॥

भावार्थ —द्वारका की तीर्थ यात्रा और रणछोड की सवा की। उसने आदर पूर्वक चादी का तुलादान किया और अन्य दान दिये।

गोस्वामिधन्ययदुनाथतनुजासुवर्णे
भूमि हलद्वयमिता पुरआहडाख्य।
तद्भर्तृ धीरमधुसूदनभट्टनाम्ना
पत्र विधाय च ददौ जगदीशमाता ॥३३॥

भावार्थ —जगतसिंह की माता न गोस्वामी यदुनाथ की पुत्री वर्णी को आहड नगर म दो हलवाह भूमि और उसके पति मधुसूदन भट्ट क नाम से बनाकर उस भूमि का पट्टा दिया।

राज्यप्राप्ते समारभ्य तुला रूप्यमयीं व्यधात्।
प्रतिवर्ष जगत्सिंहो दानान्ययानि वातनोत् ॥३४॥

भावार्थ —जगतसिंह जब से राजा बना तब स वह प्रतिवर्ष चादी का तुलादान एव अन्य दान करता रहा।

शते सप्तदशे पूर्णे चतुराख्येऽब्दके शुचौ
सूर्यग्रहे जगत्सिंह सपूज्यामरकण्टके ॥३५॥

भावार्थ —सवत् १७०४ के आषाढ में सूर्यग्रहण के अवसर पर अमरकण्टक म

ज्योतिर्लिंग तु माधातृसेव्यमोकारमीश्वर ।
सुवर्णस्य तुला चक्रे अथ प्रत्यब्दमातनोत् ॥३६॥

भावाथ —मान्धाता के पूजनीय ज्योतिर्लिंग ओंकारेश्वर की पूजाकर उसने सोने की तुला की। इसके बाद वह प्रति वष करता रहा।

स्वजन्मदिवसे मोदा महादान पुरा व्यधात् ।
कल्पवक्ष स्वर्णपृथ्वी सप्तसागरनामक ॥३७॥

भावाथ —अपन ज म दिन पर पहले वह बडे बडे दान देता रहा। तदन तर उसने कल्प क्ष स्वणपृथ्वी सप्तसागर और

विश्वचक्र क्रमादस्मि वर्षे माता जगत्पते ।
श्रीमज्जाबुवतीवाई प्रतस्थे तीथदृष्टये ॥३८॥

भावाथ —विश्वचक्र नामक दान क्रम से दिये। इसी वष जगतसिंह की माता श्रीमती जाबुवती बाई ने तीथ-दशन करने के लिये प्रस्थान किया।

कार्त्तिके मथुरायात्रा चक्रे गोकुलदशन ।
श्रीगोवर्द्धननाथस्य दीपावल्य नकूटयो ॥३९॥

भावाथ —उसने कार्तिक माह मे मथुरा की यात्रा की, गोकुल के दशन किये तथा श्री गोवर्द्धननाथ के दीपावली और अनक्ट के

अपश्यदुत्सव तूजपौर्णमास्या तु शौकरे ।
क्षेत्रे गगातटे चक्रे तुला रूप्यस्य वातनोत् ॥४०॥

भावार्थ —उत्सव को देखा। कार्त्तिक की पूर्णिमा को उसने शूकर-क्षेत्र मे गगा के तट पर चाँदी का तुलादान किया।

बीकानेरीशकर्णस्य सुता रामपुराप्रभो ।
हठीसिंहस्य सत्पत्नी उदारानदकुवरि ॥४१॥

भावाथ —बीकानेर के स्वामी कर्णसिंह की पुत्री एव रामपुरा के स्वामी हठीसिंह की पत्नी उदार नदकुंवरि ने

मातामह्या जावुवत्या मगे रूप्यतुला व्यधात् ।
पूर्ववर्षे जावुवत्या आज्ञया नदकुवरि ॥४२॥

भावार्थ—अपनी नानी जांबुवती के साथ चांदी की तुला की। इससे एक वर्ष पहले जावुवती की आज्ञा से नदकुंवरि ने

श्रीजावुवत्याग्रे मा स्थापयित्वा मुदा ददौ ।
रणछोडाय मह्य सा दान सोमामहेश्वर ॥४३॥

भावार्थ—मुझ रणछोड भट्ट को उमामहेश्वर दान स्वरूप दिया। यह दान जावुवती के समक्ष उपस्थित कर मुझे दिया गया था।

प्रयागे राजततुला काश्ययोध्यादिदर्शन ।
कृत्वा गृहे समायाता चक्रे रूप्यतुलागण ॥४४॥

भावार्थ—तदनन्तर प्रयाग में चांदी का तुलादान कर काशी अयोध्या आदि तीर्थ-स्थानों के दर्शन करती हुई जावुवती घर पहुँची। घर पहुँचकर उसने चांदी के तुलादान किये।

वेणीमाकाय गोस्वामितनया मधुसूदन ।
तत्पतिं श्रीजगत्सिंहस्त्रिया सोमामहेश्वर ॥४५॥

भावार्थ—गोस्वामी की पुत्री वेणी और उसके पति मधुसूदन को बुलाकर उन्हें जगतसिंह की पत्नी से

अदापयत्कृत दान श्रीमज्जावुवती यथा ।
राणा अमरसिंहस्य राज्ञीभिदत्तमादित ॥४६॥

भावार्थ—श्रीमती जांबुवती ने उमामहेश्वर दान दिलवाया। जिस प्रकार पहले राणा अमरसिंह की रानियों ने

इद दान यथत्राभ्यामद्यावधि मिति वदे ।
त्रिशत्समितदानानि आभ्या लब्धानि तत्स्फुट ॥४७॥

भावार्थ —यह दान दिया था, उसी प्रकार इन दोनों ने भी दिया। वेणी और मधुसूदन ने अबतक जो दान प्राप्त किये, उनकी सख्या मैं ३० बता रहा हूँ, जो स्पष्ट है।

अग्निवर्षे पूर्णिमाया वैशाखे श्रीजगत्पति ।
श्रीजगन्नाथराय सत्प्रासादे स्थापयन्वभौ ।।४८।।

भावार्थ —इसी वर्ष, वैशाखी पूर्णिमा को जगतसिंह ने भव्य मन्दिर मे श्री जगन्नाथराय की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई।

गोसहस्र महादान दान कल्पलताभिध ।
हिरण्याश्वमहादान ग्रामपचकमप्यदात् ।।४९।।

भावार्थ —[उस अवसर पर] उसने गोसहस्र, कल्पलता और हिरण्याश्व नामक महादान तथा पाच गाँव प्रदान किये।

मधुसूदनभट्टाय महागोदानमप्यदात् ।
कृष्णभट्टाय सुग्राम भसडा रत्नधेनुद ।।५०।।

भावार्थ —उसने मधुसूदन भट्ट को महागोदान और कृष्णभट्ट को 'भँसडा' गाँव तथा 'रत्नधेनु' दान दिया।

श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमत्प्रताप सुत-
स्तस्य श्री अमरेश्वरोस्य तनय श्रीकर्णसिंहोस्य वा ।
पुत्रो रानजगत्पतिश्च तनयोस्माद्राजसिंहोस्य वा
पुत्र श्रीजयसिंह एष कृतवान्सत्प्रस्तराऽऽलेखित ।।५१।।

भावार्थ —राणा उदयसिंह के प्रताप, उसके अमरसिंह उसके कर्णसिंह उसके जगतसिंह उसके राजसिंह तथा राजसिंह के जयसिंह हुआ, जिसने यह शिलालेख उत्कीर्ण करवाया।

वीराक रणछोडभट्टरचित द्वात्रिंशदास्येब्दके
पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमाया तिथौ।
काव्य राजसमुद्रमिष्ट जलधे श्री राजसिहेन वा
सृष्टोत्सगविधे सुवर्णनमय राजप्रशस्त्याह्वय ॥५२॥

भावाय —योद्धाम्रा के जीवन चरित से अकित यह 'राजप्रशस्ति' काव्य है। इसकी रचना रणछोड भट्ट ने की। इसम क्षीरसागर-रूप राजसमुद्र का सुन्दर वणन हुआ है जिसकी प्रतिष्ठा राजसिह ने स० १७३२ के माघ महान की पूर्णिमा को करवाई।

इति पचमसग ।

गजधर उरजण गजधर सुखदेव सूत्रधार केसो लाडो सू दरमणजी [?] लाला जात सोमपुरा चुनरा पुरवीय्या—सवन १७४४ [॥]

षष्ठ सर्ग

[सातवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

शते सप्तदशे पूर्णे नवाख्येब्देकरोत्तुला ।
रूप्यस्य मार्गे चक्रेथ फाल्गुने कृष्णपक्षके ॥१॥

भावार्थ—नृपति राजसिंह ने सं० १७०९ के मार्गशीर्ष मास में चाँदी की तुला की। इसके बाद फाल्गुन कृष्णा

द्वितीयादिवसे राज्य राजसिंहो नरेश्वरः ।
राज्ञा भुरटियाकर्णनाम्ना ज्येष्ठाय सूनवे ॥२॥

भावार्थ—द्वितीया के दिन उसका राज्याभिषेक हुआ। उसने भुरटिया राजा कर्ण के ज्येष्ठ पुत्र

अनूपसिंहाय ददौ स्वसारं विधिना नृप ।
क्षत्रेभ्योऽदाद्वधूकन्या एकसप्ततिसंमिता ॥३॥

भावार्थ—अनूपसिंह के साथ अपनी बहिन का विधिपूर्वक विवाह किया। तब नृपति ने अपने सबंधियों की ७१ कन्याएं क्षत्रियकुमारों को दिलाईं।

तुलक

शते सप्तदशे पूर्णे दशाख्येब्दे तु पौषके ।
कृष्णैकादशिकायां तु राजसिंहनरेश्वरात् ॥४॥

भावार्थ—संवत् १७१० पौषकृष्ण एकादशी के दिन नृपति राजसिंह के,

पवार इद्रभानाम्यरावस्य तनया तु या ।
सराकू वरिनाम्नी तत्कुक्षेर्जातो जगत्प्रिय ॥५॥

भावार्थ—राव इन्द्रभान पँवार की पुत्री सरदार कुँवरि की कोख से ससार का प्यारा

जयसिहाभिध पुत्र पवित्रश्चित्रकेलिकृत् ।
मजानो जगदाह्लादचद्रमा कीर्त्तिचद्रमान् ॥६॥

भावार्थ—जयसिंह नामक पुत्र हुआ । वह पुण्यशाली और नाना प्रकार की क्रीडाएँ करनेवाला था । उसकी कीर्ति चन्द्र के समान उज्ज्वल थी । ससार को आह्लाद देने मे वह चन्द्रमा था ।

भीमसिंह पुत्र आस्ते गजसिंह सुतस्तथा ।
सूर्जसिंहाभिध पुत्र इन्द्रसिंह सुतस्तथा ॥७॥

भावार्थ—इसके अतिरिक्त राजसिंह के भीमसिंह गजसिंह सूरजसिंह इन्द्रसिंह तथा

स बहादुरसिंह श्रीराजसिंहात्मजास्तथा ।
स न.रायणदासा वाऽपरिणीताप्रियाभव [ ] ॥८॥

भावार्थ—बहादुरसिंह ये पुत्र हुए । नारायणदास उसकी उपपत्नी से हुआ ।

आरम्य कौमारपदात्सवत्तसुखलब्धये ।
श्रीसवत्तुविलासाम्य स्वाराम कृतवान्नृप ॥९॥

भावार्थ—सब ऋतुओं का आनन्द लेने के लिये नृपति राजसिंह ने सवतु विलास नाम का एक उद्यान लगवाया जिसका आरभ वह कुमार पद मे करवा चुका था ।

वाप्या क्षीरनिधौ धन्यो लक्ष्मीयुक्तो विराजते ।
नारायणगुणो राणा नौकाशेषफणाश्रय ॥१०॥

भावार्थ —राणा राजसिंह नारायण के समान है। वह वापी-रूप क्षीरसागर में नौका रूपी शेष फण पर लक्ष्मी-सहित विराजमान है।

शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे एकादशे त्विषे।
अजमेरौ साहिजहां दिल्लीशः त समागत ॥११॥

भावार्थ —संवत् १७११ के आश्विन मास में बादशाह शाहजहाँ अजमेर में आया और

श्रुत्वाथ राजसिंहेद्रश्चित्रकूटे समागत।
त सादुल्लहखानाख्य दिल्लीशवरमन्त्रिण ॥१२॥

भावार्थ —इसके बाद उसका मन्त्री सादुल्लाखां चित्रकूट पहुँचा। यह सुनकर राजसिंह ने

प्रेषयामास तत्पार्श्वे भट्ट तु मधुसूदन।
कठोंडीवंशतैलंग स गत खानसंनिधौ ॥१३॥

भावार्थ —कठोंडी कुलोत्पन्न तैलंग मधुसूदन भट्ट को उसके पास भेजा। मधुसूदन खान के पास पहुँचा।

खान पडितसबुद्ध्या भट्ट प्रत्युक्तवान्कथं।
गरीबदासो राणेन कथमाकारितस्तथा ॥१४॥

भावार्थ —खान ने पंडित समझकर भट्ट से कहा "राणा ने गरीब दास और

झालारयरायसिंहश्च भट्टेनोक्त सदादित।
जातमेव प्रतापाख्यरानाभ्राता रणोत्कट ॥१५॥

भावार्थ —झाला रायसिंह को क्यों बुलवा लिया ?' भट्ट ने उत्तर दिया —'ऐसा पहले भी हुआ है। राणा प्रताप का भाई रणोन्मत्त

पवार इद्रभानाम्यरावस्य तनया तु या ।
सदावू वरिनाम्नी तत्कुक्षे र्जातो जगत्प्रिय ॥५॥

भावार्थ —राव इन्द्रभान पवार की पुत्री सदाकुंवरि की कोख से ससार का प्यारा

उयसिहाभिध पुत्र पवित्रश्चित्रकलिकृत् ।
मजातो जगदाह्लादचद्रमा कीर्त्तिचद्रवान् ॥६॥

भावार्थ —जयसिह नामक पुत्र हुआ । वह पुण्यशाली और नाना प्रकार की क्रीडाए करनेवाला था । उसकी कीर्ति चन्द्र के समान उज्ज्वल थी । ससार को आह्लाद देने म वह चन्द्रमा था ।

भीमसिह पुत्र आस्ते गजसिह सुतस्तथा ।
सूर्जसिहाभिध पुत्र इन्द्रसिह सुतस्तथा ॥७॥

भावाय —इसके अतिरिक्त राजसिह के भीमसिह गजसिह सूरजसिह इन्द्रसिह तथा

म बहादुरसिह श्रीराजसिहात्मजास्तथा ।
स न।रायणदासा वाऽपरिणीताप्रियाभव [ ] ॥८॥

भावाय —बहादुरसिह ये पुत्र हुए । नारायणदास उसकी उपपत्नी से हुआ ।

आरम्य कौमारपदात्सवत्त सुखलब्धये ।
श्रीसवत्तु विलासारय स्वाराम कृतवान्नृ ॥६॥

भावाय —सब ऋतुओ का आनन्द लेने के लिय नृपति राजसिह न सवत्तु विलास नाम का एक उद्यान लगवाया जिसका आरभ वह कुमार पद म करवा चुका था ।

वाप्या क्षीरनिधौ धन्यो लक्ष्मीयुक्तो विराजते ।
नारायणगुणो राणा नौराशेषफणाश्रय ॥१०॥

भावार्थ—राणा राजसिंह नारायण के समान है। वह वापी-रूप क्षीरसागर मे नौका रूपी शेष फण पर लक्ष्मी-सहित विराजमान है।

शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे एकादशे त्विषे।
अजमेरौ साहिजहा दिल्लीश त समागत ॥११॥

भावार्थ—सवत् १७११ के आश्विन मास मे बादशाह शाहजहाँ अजमेर मे आया और

श्रुत्वाथ राजसिहेद्रश्चित्रकूटे समागत।
त सादुल्लहखानाख्य दिल्लीशवरमत्रिण ॥१२॥

भावार्थ—इसके बाद उसका मन्त्री सादुल्लाखाँ चित्रकूट पहुँचा। यह सुनकर राजसिंह ने

प्रेषयामास तत्पार्श्वे भट्ट तु मधुसूदन।
कठोडीवशतैलग स गत खानसन्निधौ ॥१३॥

भावार्थ—कठोडी कुलोत्पन्न तैलग मधुसूदन भट्ट को उसके पास भेजा। मधुसूदन खान के पास पहुँचा।

खान पडितसबुद्ध्या भट्ट प्रत्युक्तवान्कथ।
गरीबदासो राणेन कथमाकारितस्तथा ॥१४॥

भावार्थ—खान ने पडित समझकर भट्ट से कहा "राणा ने गरीब दास और

झालारायरायसिहश्च भट्टेनोक्त सदादिन।
जातमेव प्रतापाख्यरानाभ्राता रणोत्कट ॥१५॥

भावार्थ—झाला रायसिंह को क्यो बुलवा लिया ?' भट्ट ने उत्तर दिया—
'ऐसा पहले भी हुआ है। राणा प्रताप का भाई रणोमत्त

शक्तसिंहो मेघनामा रावतो मेदपाटत ।
आयातौ स्थापितौ दिल्लीनाथेन किल तौ पुन ॥१६॥

भावार्थ —शक्तिसिंह एव रावत मेघसिंह म-पाट से दिल्ली गये । दिल्ली-पति ने उन्हें अपने यहां रखा । फिर वे

मेदपाटे समायातौ चकार परमेश्वर ।
इति स्वामिप्रमुक्ताना राजयाना स्थलद्वय ॥१७॥

भावार्थ —मेदपाट चले आये । अपने स्वामियों से विलग हुए क्षत्रियों के लिये भगवान् ने दो ही स्थान बनाये हैं ।

खानेनोक्त सत्यमेतत्पुन( ) खानस्ततोवदत् ।
रानेशम्याश्ववाराणा सख्या कथय पडित ॥१८॥

भावार्थ —तब खान बोला— यह सत्य है । उसने फिर कहा— हे पडित ! राणा के अश्वारोहियों की सख्या बताओ ।

सद्विशतिसहस्राणि भट्टेनोक्त स उक्तवान् ।
दिल्लीशस्य श्ववाराणा लक्षसख्यास्ति तत्कथ ॥१९॥

भावार्थ —भट्ट ने उत्तर दिया— बीसहजार ।" इस पर खान ने कहा- दिल्ली पति के अश्वारोहियों की सख्या एक लाख है । कसे

कार्यं समान भट्टेन प्रोक्त खान शृणु स्फुट ।
दिल्लीशस्याश्ववाराणा लक्ष राणमहीपते ॥२०॥

भावार्थ —समता की जाय ?" भट्ट ने कहा— हे खान ! स्पष्ट सुनो ! दिल्ली पति के एक लाख और महाराणा के

सद्विशतिसहस्राणि साम्य सृष्टिकृता कृत ।
खानोत कोपवान् खानो जयसिंहस्तदोचतु ॥२१॥

भावार्थ —तीस हजार अश्वारोहियों को विधाता ने समान बनाया है।" यह सुनकर खान मन ही मन कुपित हुआ। तब खान और जयसिंह ने बातें की।

खानसंगे साहिजहांदर्शनं चेत्करोत्यहो।
राणाकुमारस्तु तदा चतुर्दशमिता मया ॥२२॥

भावार्थ —अंत मे निर्णय हुआ कि यदि राणा का कुंवर खान के साथ जाकर शाहजहां से मिले तो वह

देशो दिल्लीश्वराद्दाप्या विद्धरे मधुसूदन।
राणसेवा व्यधादेव स्वामिधर्मी महोक्तिकृत् ॥२३॥

भावार्थ —उससे [महाराणा को] चौदह देश दिलवाएगा। स्वामिभक्त एव वाक्पटु मधुसूदन ने सकट के समय राणा की ऐसी सेवा की।

दिल्लीश्वरकुमारस्य सगेऽस्मत्पूर्वजन्मना।
कुमारा मिलनं चक्रू राजसिंहो विचार्यतत् ॥२४॥

भावार्थ —'हमारे पुरखाओं के कुंवरो ने दिल्लीपति के शाहजादे के साथ संधि की है।' यह विचारकर राजसिंह ने

मुलतानसिंहनामकमहाकुमारं तु ठक्कुर सहित।
साहिजहासुतदारासकोहसगेथ सप्रेष्य ॥२५॥

भावार्थ —शाहजहां के पुत्र दाराशिकोह के साथ अपने बडे कुमार सुलतानसिंह को भेजा। उसके साथ ठाकुर भी गये।

एवं साहिजहानेन मिलनं कृतवा नृप।
राजसिंहो भाग्यदानविक्रमैर्विक्रमाकवत् ॥२६॥

भावार्थ —इस प्रकार नृपति राजसिंह ने शाहजहां के साथ संधि की। वह भाग्य दान और पराक्रम मे विक्रमादित्य के समान था। उसने,

जनादनामजननी चक्रे रूप्यतुलाम्यिता ।
तथा कारितवान्यत्र गजदानस्य निष्क्रय ॥२७॥

भावार्थ—अपनी माता जना॰ म चाँदी का तुलादान करवाया और इस अवसर पर गज-दान क निष्क्रय रूप

द्रव्य मकल्पित रूप्यमुद्रापचशतैमित ।
मधुसूदनभट्टाय रानेंद्रस्तद्ददौ धन । ॥२८॥ युग्म॥

भावार्थ—पाँच सौ रुपयों का सकल्प करवाया। महाराणा ने वह धन मधुसूदन भट्ट को दिया।

राठोररूपसिंहाख्य स्वमडलगटाद्बल ।
वैश्य राघवदासाख्य प्रेषयन्विद्रुत व्यधात् ॥२९॥

भावार्थ—राजसिंह न वश्य राघवदास को भेजकर रूपसिंह राठौड को माँडलगढ से भगा दिया।

गते सप्तदशे पूर्णे त्रयोदशमितब्दके ।
हेम्न माद्ध द्विशतकपलैब्र ह्याडकृत ॥३०॥

भावार्थ—राजसिंह ने दो सौ पचास पल सोने का बना ब्रह्माण्ड दान सवत् १७१३ म

कार्तिक्या पूर्णिमाया श्रीएकलिंगशिवान्तिके ।
दत्त्वा वेदोक्तविधिना राजसिंहो विराजते ॥३१॥

भावार्थ—कार्तिक महिने की पूर्णिमा के दिन वेदोक्त विधि स दिया। यह दान एकलिंगजी म दिया गया।

पचमहाभूतमय ब्रह्माड मृज्जलोड्डयलघुमूल्य ।
मत्वा सुवर्णपूर्ण कृत्वा ब्रह्माडक त्वया दत्त ॥३२॥

भावार्थ —'पंच महाभूतों से व्याप्त इस ब्रह्माण्ड मे मिट्टी और जल भरा हुआ है। अत एव यह कम मूल्य का है। ऐसा समझकर हे राजन्! आपने यह सोने से भरा 'ब्रह्माण्ड' प्रदान किया।

हेमब्रह्माडदानेन ब्रह्माडस्था क्षितीश्वर।
ब्राह्मणास्तोषिता दान त्वया ब्रह्मार्पणीकृत ॥३३॥

भावार्थ —हे पृथ्वीपति! आपने जो यह सोने का ब्रह्माण्ड दान ब्रह्मार्पण किया उससे ब्रह्माण्ड स्थित ब्राह्मण स तुष्ट हो गये।

हेमब्रह्माडदानेन ब्रह्माडस्था श्रिय भवान्।
स्थापयन्ब्राह्मणगृहे दारिद्रय हृतवास्तत ( ) ॥३४॥

भावार्थ —सोने का ब्रह्माण्ड दान देकर आपने ब्रह्माण्ड-स्थित लक्ष्मी को ब्राह्मणो के घर म ला रखा है और उनके दारिद्र य को नष्ट कर दिया है।

ब्रह्माडे राजसिहप्रभुवर भवता दत्त एव द्विजेभ्य—
स्तद्देवास्तद्गृहे वा परनिजतनुभिर्भुजते भावुक यत्।
शभुर्भूर्नविहीनो विधिरपि बहुधा सृष्टिकार्यानधीनो
भानुर्वा शीतभानुधरणिधरमणेर्भ्रातिदु खाद्विमुक्त ॥३५॥

भावार्थ —हे स्वामि श्रेष्ठ राजसिह! आपने ब्राह्मणो को ज्यो ही 'ब्रह्माण्ड दान प्रदान किया त्यो ही उनके घर मे [अपना अपना काम छोडकर] देवता परोक्ष अपरोक्ष रूप म सानन्द भोजन करने लगे। देखिये, शभु ने अपने गणो को छोड दिया है ब्रह्मा सृष्टि के कार्यों से प्राय दूर रहता है और सूर्य तथा चन्द्र सुमेरु पर्वत का चक्कर लगाना बद कर दु ख से मुक्त हो गए हैं।

ब्रह्माडे राजसिहप्रभुवर भवता दत्त एव द्विजेभ्य
क्रीडार्थ तत्सुताना भवत इनविधू कदुकौ लोलगोलौ।
आरोहार्थ च नन्दिद्रुहिणसितमहाहसकौ पचवक्त्र
श्चित्रायानेकनेत्रो भवति सुरपतिस्तर्जनार्थं गजास्य ॥३६॥

भावार्थ—हे स्वामि श्रेष्ठ राजसिंह ! आपने ब्राह्मणो को ज्यों ही 'ब्रह्माण्ड' दान प्रदान किया सूय और चन्द्र उसके बालकों के खेलने के लिये चंचल और गोल दो गेंद बन गये। नन्दी तथा ब्रह्मा का श्वेत बडा हंस उन बालकों के लिये सवारी का काम देने लगे। उन बालकों को आश्चर्य मे डालने के लिये पंचमुखी शिव और अनेक आँखों वाला इन्द्र उपयोग में आने लगे इसके अतिरिक्त हाथी के मुँह वाला गणेश उन बालकों को डराने का काम देने लगा।

श्रीराजसिंहनृपतिः कलिकालमध्ये
　　कर्त्तुं न योग्यमतुलं हयमेधकर्म।
प्राप्तुं समस्तमधुना हयमेधधर्म
　　पूर्णे तु सप्तदशके शतके सुवर्षे ॥३७॥

भावार्थ—नृपति राजसिंह ने यह सोचकर कि कलियुग में अश्वमेध करना उचित नहीं है अश्वमेध का समग्र पुण्य प्राप्त करने के लिये संवत् सत्रह सौ

एकोनविंशतिसुनाम्नि च पौषमासे
　　एकादशीशुभदिने किल शुक्लपक्षे।
मन्वादिदिव्यदिवसे मधुसूदनाय
　　तैलंगसद्गुरुकुलस्थकठोडिकाय ॥३८॥

भावार्थ—उन्नीस पौष शुक्ला एकादशी के उत्तम मन्वादि दिवस पर कठौंडी वंश के तैलंग गुरु मधुसूदन को

श्वेताश्वमुच्चतममुच्चगुणातिगेय-
　　मुच्चैःश्रवःसममहो विधिनैव दत्वा
पल्याणहेमगुणमेरुसमं च भाति
　　प्रायो हरिर्गुरुगुरोर्गुरुरचनेन ॥३९॥

भावार्थ—एक श्वेत अश्व विधिपूर्वक प्रदान किया। साथ में सोने के मेरु सदृश एक पलान भी। अश्व बहुत ही प्रशंसनीय गुणावाला बडा ऊँचा और इन्द्र के उच्चैःश्रवा नामक घोड़े के समान था। अश्व प्रदानकर राजसिंह उसी प्रकार सुशोभित हुआ, जैसे गुरु बृहस्पति की पूजा करके महान् इन्द्र।

संस्थाप्य तत्र नवलादितुरंगधुर्य-
स्कंधे मदुक्तिमधुरं मधुसूदनाख्यं ।
सप्तप्रविंशतिपदानि हयस्य गच्छ-
न्नग्रेस्थ एव घृतवान् हयमेधधर्मं ।।४०।।

भावार्थ—अश्व का नाम नवल था। उसके कंधे पुष्ट थे। मधुर एवं सत्यभाषी मधुसूदन को राजसिंह ने उसपर बिठाया और उसके आगे २७ पाँव चलकर अश्वमेध का पुण्य कार्य किया।

सिंहासने स्फुरितचामरवीज्यमान
छत्रोपशोभिन शिरा रचिताश्वमेध [ ] ।
श्रीरामचंद्र इव भाति सुलक्ष्मणाढ्य
श्रीराजसिंहनृपतिर्नृपसिंह एष ।।४१।।

भावार्थ—नृप-श्रेष्ठ यह राजसिंह रामचन्द्र के समान है। सिंहासन पर यह सुशोभित है। इस पर चँवर उड रहे हैं। मस्तक पर छत्र शोभा पा रहा है। इसने अश्वमेध किया है। यह सुन्दर लक्ष्मण [=राज्य चिह्न राम का भाई] से भी युक्त है।

नवलाग्यतुरगस्य हेमपल्याणमेरुग ।
कृतवानुचित भूपो विबुध मधुसूदन ।।४२।।

भावार्थ—नवल नामक अश्व के सोने के मेरु सदृश पलान पर राजसिंह ने विबुध मधुसूदन को बिठाया है जो उचित ही है।

राणाश्रीराजसिंहादि सुखापाठकमुख्यक [ ] ।
अग्रेसरजनैर्युक्तो विभाति मधुसूदन ।।४३।।

भावार्थ—मधुसूदन को घोडे पर बिठाकर जब उसके आगे-आगे राजसिंह मांगलिक पाठ करने वाले इत्यादि लोग चले तब वह बहुत सुशोभित हुआ।

श्वेनाश्वे दत्तमात्रे त्वतिहयमखसत्पुण्यतो भास्दरोद्य-
ल्लोकश्रीमेदपाटो भवदतिललिता ते सभासौ सुधर्मा ।
जिष्णुस्त्व सत्सहस्रेक्षण इह दिवुधव्रातकारुण्यदृष्टौ
तुष्टो जेतासुराणा गुरुगुणगुरुता स्थापको युक्तमेतत् ।।४४।।

भावार्थ—हे राजसिंह ! आप जिष्णु [= जयशील इन्द्र] हैं । आपका यह जगमगाता हुआ मेदपाट स्वर्ग और सुन्दर सभा देव-सभा है । विबुधों [= पंडितो देवताओं] के प्रति दया-दृष्टि रखने के कारण आपके हजार आँखें हैं । आपने असुरों [= यवनों राक्षसो] पर विजय पाई है और गुरु [= मधुसूदन बृहस्पति] के गुण-गौरव की प्रतिष्ठा प्रदान की है । हे राजन् ! केवल एक श्वेत अश्व प्रदान कर आपने अश्वमेध का जो पुण्य प्राप्त किया है वह उचित ही है ।

दानस्य चास्य नवदिव्यसहस्रसख्या
दत्त्वा गुणज्ञगुरवे सुरूप्यमुद्रा ।
काशीनिवासमथ कारितवान्नरेंद्र
स्वस्यापि पुण्यवृतये मधुसूदनस्य ।।४५।।

भावार्थ—गुण-ज्ञाताओं में श्रेष्ठ नृपति राजसिंह ने मधुसूदन को उक्त दान के नौ हजार रुपये प्रदान कर अपने पुण्योपार्जन के लिये भी उसे काशी भेज दिया ।

विश्वेशदर्शनविधौ मणिकर्णिकाया
स्नानेषु तीर्थकृतिपूत्तमदेवताना ।
पूजासु चाशिषमहो नृपराजसिंह-
वीरोन्नताय स ददौ मधुसूदनाख्य ।।४६।।

भावार्थ—काशी विश्वनाथ के दर्शन करते समय मणिकर्णिका घाट पर स्नान करते समय तीर्थ-यात्राएँ करते समय तथा उत्तम देवताओं की पूजा करते समय मधुसूदन ने वीर शिरोमणि नृपति राजसिंह को आशीर्वाद दिया ।

इति श्रीषष्ठ सर्ग

सप्तम सर्ग:

[आठवीं शिला]

।। श्रीगणेशाय नम ।।

शते सप्तदशे पूर्णे चतुदशमितेब्दके ।
राधे शुक्लदशम्या तु जैत्रयात्रा नृपो व्यधात् ।।१।।

भावार्थ —सवत् १७१४, वैशाख शुक्ला दशमी के दिन नृपति राजसिह ने विजय-यात्रा की।

मध्योद्यद्भानु रेवा द्विजपति विनुता मगलाढ्या बुधाति-
स्तुत्या जीवालिवद्या कविकृतनुतयोऽमदरूपप्रकाशा ।
विस्फूर्जत्सहिकेया विदधति चलन केतव किं ग्रहास्ते
अग्रे मोग्रप्रतापास्तव विजयकृते राजसिहेति जाने ।।२।।

भावार्थ —हे राजसिह ! आपकी सेना प्रचड है। उसमे सूर्याङ्कित राज-चिह्न चमक रहा है। द्विजपति स्तुति कर रहे हैं । मगल पूण वस्तुऐं शोभायमान हैं। बुध प्रशसा कर रहे हैं। जीव मात्र वदना कर रहे हैं। कवि स्तवन कर रहे हैं। उसका अमन्द रूप प्रकाशित हो रहा है। सैंहिकेय कडक रहे हैं। केतु फर-फरा रहे हैं । हे राजन् ! मुझे ऐसा लगता है कि मानों ये नौ ग्रह हैं जो आपको विजय दिलाने के लिये आपके समक्ष उपस्थित हैं।

पार्श्वस्थगोलकच्छद्ममुण्डमाला अवस्थिता ।
भाति स्वच्छा शत्रुभक्षा कालिका किलनालिका ।।३।।

भावाथ —हे राजन् ! ये सुन्दर तोपें शत्रुओ का सहार करने वाली कालिकाऐं हैं। बगल मे रखे हुए गोलो के बहाने इहाने मुण्ड-मालाऐं पहन रखी हैं।

किं मृत्युदंष्ट्रा किं शत्रुप्राणसस्यानकंदरा ।
किं वारिलोकभुग्नवक्त्रास्यानीह नालिका ॥४॥

भावार्थ—ये तोपें क्या हैं मौत की दाढ़ें हैं अथवा शत्रुओं के प्राणों का सचय करने वाली कंदराएँ हैं ? या पाताल लोक के घड़ियाल के वक्र मुख हैं ?

किं वा वीररसाब्धिरेव विलसत् लोलमालोन्नत
किं वा दिक्तरुणीकटाक्षपटलेनालंबित स्वीकृत ।
किं वारै स्फुटमेकनिगमनितो नीलाब्जपत्राचितो
राणेंद्र कवच दधत्सुरुचिर लोकैरिति प्रोच्यते ॥५॥

भावार्थ—महाराणा ने जब सुन्दर कवच धारण किया तब लोग कहने लगे—क्या यह वीर रस का समुद्र है जिसमें उत्ताल तरंगें उठ रही हैं ? अथवा कटाक्ष मारकर दिशा रूपी तरुणियों ने इसका वरण किया है ? या इसे प्रथम पंक्ति समझकर लोगों ने इस पर नील कमल की पंखुरियाँ चढ़ाई हैं ?

भावार्थ—लोग कहने लगे कि क्या त्रिभुवन का अखंड महामंडल खंड-खंड हो गया है। पृथ्वी तब विस्मय में डूब गई। वह डगमग होकर घबराने लगी। दिग्गज भी अस्थिर होकर गेंद की तरह लुढकने लगे।

सभूलोकमुख्याखिला ऊर्द्ध्वलोका-
स्तलाद्यास्तथा सप्तलोका अधस्या।
सकपा समुद्राप्तभपा सशपा-
स्तदाऽभ्रे बभूवुस्तथाभा अशुभ्रा ॥८॥

भावार्थ—भूलोक आदि समस्त ऊर्द्ध्व लोक और तल इत्यादि सात नीचे के लोक काँप उठे। समुद्रों में तूफान आने लगे तथा आकाश में काले-काले बादलों में बिजली कौंधने लगी।

जवेनोच्छलति स्म सर्वे समुद्रा-
स्तथाऽक्षुद्ररूपाश्च भद्रास्तटिन्य।
महीध्रास्तथा उच्छिलीध्रानुकारा
पतंति स्म वृक्षा सदृक्षा क्षतागै ॥९॥

भावार्थ—सभी समुद्र बड़ी जोर से उछलने लगे। सुंदर नदियों ने भयंकर रूप धारण कर लिया। पर्वत और वृक्ष कुकुरमुत्तों की तरह टूट-टूट कर गिरने लगे।

मल म्लेच्छसीमस्थिता [ ] सर्ववीरा-
स्तथा मानुषा मक्षु दिक्षु स्थिताश्च।
विदीर्णीकृतोद्वक्षसोऽनच्छकर्णा
वमंति स्म रक्तं सुरक्तं मुखेभ्य ॥१०॥

भावार्थ—कहाँ तक कहूँ? म्लेच्छ-सीमा पर रहने वाले समस्त योद्धाओं और सुदूर दिशाओं में बसने वाले मनुष्यों के हृदय तत्काल फट गये और कान बहरे होगये। उनके मुँह से खून की लाल-लाल उल्टियाँ होने लगीं।

भावार्थ —हे स्वामिश्रेष्ठ राणा राजसिंह ! आपके विजय-यात्रोत्सव में सदा आपके आतंक से व्याकुल हो गई। कोंकण की दिशा रूपी अबला के हाथ कङ्कण-रहित हो गए। कर्णाट देश के द्वार बन्द हो गए। मलय काँप उठा। द्रविड़ का स्वामी भाग गया। चोल देश डगमगा गया तथा सेतुबन्ध भय से पताका की तरह काँप उठा।

सौराष्ट्रो राष्ट्रहीन प्रभवति सबल कच्छदेशोप्यनच्छ
प्टट्टा हट्टातिहीना विगलति वलको रोमधर्त्ता ।
खधार साधकारो धनददिगधुना निधना धावतेद्धा
श्रीरानाराजसिंह क्षितिधव भवतो ज[य]यात्रोत्सवोस्मिन् ॥१८॥

भावार्थ —हे पृथ्वीपति राणा राजसिंह ! आपकी इस विजय-यात्रा के उत्सव में सौराष्ट्र की शासन-व्यवस्था टूट गई है। समूचे कच्छ की दशा बिगड़ गई है। टट्टा का बाजार उजड़ गया है। वलक नष्ट हो गया है। रोमधारी । खधार अंधकार से भर गया है। कुबेर की उज्ज्वल दिशा भी आज निधन होकर चक्कर खा रही है।

दरीवाजनास्ते दरीवासभाजो
जना माडिलस्यास्तथा स्थंडिलस्था ।
जना फूलियाया शिरोधूलियासा-
स्त्वदीयप्रयाणे खुमानेशरत्न ॥१९॥

भावार्थ—हे खुमाण ! आपके प्रयाण करने पर दरीबा के लोग नगर छोड़कर कन्दराओं में रहने लगे हैं। माडल के निवासी घर-बार छोड़कर खुली धरती पर रह रहे हैं। फूलिया के मनुष्यों के मस्तक धूल में लुढ़क रहे हैं।

राहेलायाश्चित्तहेलाश्चीनचेला सुयोषित ।
सववेलासु निर्वेला भर्तृहेलाकृतोभवन् ॥२०॥

भावार्थ —चीन के रेशमी वस्त्रों से अलङ्कृत एवं सदा प्रसन्न चित्त रहने वाली रायला की स्त्रियाँ अपने भर्तारों का अत्यधिक अनादर करने लगीं।

एषा साहिपुरा प्रवाहितसुखा सा केकरी किंकरी-
भाव वा विदधाति मक्षु सभयाऽकुक्षिभरि साभरि ।
आजज्जाजपुराधिभाजनमहो दु खावर सावर
श्रीरानामणिराजसिह भवति त्वज्जैत्रयात्रोत्सवे ।।२१।।

भावार्थ—हे महाराणा राजसिंह ! आपकी विजय-यात्रा के उत्सव म शाहपुरा का सुख नष्ट हो गया है। केकडी आप का दासत्व ग्रहण कर रही है। भय के मारे साँभर ने खाना छोड दिया है। जगमगाने वाला जहाजपुर चिंतित हो उठा है। सावर भी अत्यन्त दु खी हो गया है।

गौडजातीयभूपाना देश कनेशविशेषवान् ।
अनच्छ कच्छवाहाना जैत्रयात्रासु तेभवत् ।।२२।।

भावार्थ—आपकी विजय-यात्रा में गौड जाति के राजाओ का देश अतिशय दु खी और कच्छवाहो का देश उदास हो गया है।

रणस्तभसस्था रणस्तभयुक्ता
प्रमत्तेतरास्तेपि फत्तेपुरस्था ।
बयानाजना दूरससृष्टयाना
जयार्थ प्रयाणे खुमानेश ते स्यु ।।२३।।

भावार्थ—हे खुमाण ! विजय के लिय आपके प्रयाण करने पर रणथभोर के लोग रण-भूमि मे ठिठक जायें । फतेपुर के निवासियों का अभिमान चूर्ण हो जाय । बयाना के लोग अपने रथो को छोड दें ।

मेरी लक्ष्म्याजमेरो विषम उरुभय जायते स्फीत फेरी
श्रोडाद्या भाति तोडाद्यवनिपु गलितत्राणमाना बयाना ।
धत्ते फत्तेपुर न क्षणमपि न सुख दक्षयुद्धे तवाद्धा
श्रीराणाराजसिह क्षितिप जयकृतेऽमानमाने प्रयाणे ।।२४।।

भावार्थ—हे पृथ्वी-पति राणा राजसिंह ! आपके योद्धा रण-कुशल और बडे स्वाभिमानी हैं। उनको लेकर जब आपने विजय के लिये प्रस्थान किया,

तब अजमेर राज्य जो वमत्र में मह है म गीन्ड फैल गय। इस कारण वह बडा भयावना हो गया है। तान्त आदि दर्शों मे सूअर आदि जगली जीव घूमने लग हैं। बयाना का अभिमान चूर्ण हो गया है। उसे कोई बचा नहीं पा रहा है। फत्तपुरा को एक क्षण के लिए भी चैन नहीं है।

पूवमेवास्तवगर्वेलु टिन भवनो भटे ।
दरीबानगर शून्यदरीभाव ममादधौ ॥२५॥

भावार्थ—इसके पहले आपके बड स्वाभिमानी योद्धाओं न दरीबा नगरी को लूटा। लूटी जाने पर वह सूनी कन्दरा के समान हो गई।

मडपास्ते माडिलस्य श्रिता योधस्तु तद्भटा ।
द्वाविंशतिमहस्राणि रूप्यमुद्रावलददु [ ] ॥२६॥

भावार्थ—आपके योद्धाओं ने मांडल के सुरा पीन वाले सनिकों को अधीन बनाया और उनसे उन्होंने दड के रूप म बाईस हजार रुपये लिए।

वनहटास्थिता वीरा रानेंद्र भवते ददु ।
सद्विंशतिसहस्रोद्यद्रूप्यमुद्रा कर वर ॥२७॥

भावार्थ—हे महाराणा! बनडा के वीरों ने आपको कर के रूप में बीस हजार रुपये दिये।

धीरा साहिपुरावीरा रानेंद्र भवते ददु ।
द्वाविंशतिसहस्रोद्यद्रूप्यमुद्रा [ ] कर पर ॥२८॥

भावार्थ—हे महाराणा! शाहपुरा के सधीर योद्धाओं ने भी आपको दड के रूप म बाईस हजार रुपये दिये।

तोडाया प्रेषयित्वा भटपटलभृतौ रायसिंहस्य रान
फत्तेचद सहस्रत्रयमितसुभटभ्राजमानं प्रधान ।
षष्टिस्फूर्जत्सहस्रप्रमितरजतसन्मुद्रिकासंख्यदड
तन्मानी सप्रणीतं प्रहरदशकतस्त्व गृहीत्वा विभासि ॥२९॥

भावार्थ—राजा रायसिंह की तोडा नगरी में यद्यपि अनेक बहादुर थे फिर भी आपने जब तीन हजार सैनिक देकर प्रधान फतेचन्द को वहाँ भेजा, तब रायसिंह की माता ने दस पहर के भीतर-भीतर साठ हजार रुपयों का दंड भरा। हे राजसिंह! उस धन-राशि को प्राप्त कर आप सुशोभित हो रहे हैं।

अहो वीरमदेवस्य पुरं महिरवं परं।
राजन्वह्नौ जुहोति स्म कोपि कोपोद्भटो भटः ॥३०॥

भावार्थ—हे राजन्! आश्चर्य है कि क्रोध में प्रचंड हुए आपके किसी योद्धा ने वीरमदेव के महिरव नामक सुंदर नगर को जला डाला।

भवान्मालपुरे रान लक्ष्मीमालातिलुंटनं।
शौर्याऽऽलोकै रचितवाँल्लोकैर्नवदिनावधि ॥३१॥

भावार्थ—हे राणा! आपने पराक्रमी लोगों से मालपुर में नौ दिनों तक प्रचुर धन लुटवाया।

युष्मद्दिगन्तुरगप्रचुरखुरपुटैश्चूर्णिताना पुरेस्मि
न्पूर्णाना शर्कराणां पटुकरटिघटाकर्णतालप्रवातैः।
उड्डीनानां समूहैर्जलनिधय इमे पूरिताः क्षारभावं
मुक्त्वा मिष्टत्वभाजः कृत इति भवता भूप विश्वोपकारः ॥३२॥

भावार्थ—हे राजन्! आपके घोड़े जब मालपुर में चले, तब उनकी असंख्य टापों की टक्कर से शक्कर के ढले चूर-चूर हो गये और जब वह पिसी हुई शक्कर प्रचंड हाथियों के कर्ण-तालों की हवा से उड़कर समुद्रों में जा गिरी तब वे खारापन छोड़कर मीठे बन गये। यह आपने संसार का उपकार किया है।

जाते मालपुरस्य लुंटनविधौ सच्छर्कराणां पुरः
कर्पूरप्रकरस्य वा हयखुरप्रोद्धूतशुद्धं रजः।
उड्डीनं गगने विभाति भवतो भूयो मया तर्कितं
श्रीरानामणिराजसिंहनृपते कीर्त्तेः [ ] प्रकाश परं ॥३३॥

भावार्थ—मालपुर को जब आपने लूटा तब घोडो की टापो से शक्कर अथवा कपूर के ढेर की सफेद धूल उडी और आकाश मे शोभा पाने लगी। उस देखकर मैंने तर्कना की कि वह तो महाराणा राजसिंह की कीर्ति का सुदर प्रकाश है।

गुच्छवद्गुच्छहारास्त कनक कनकोपम।
प्रवालवत्प्रवालाश्च प्राचुर्याल्लुटनेभवत् ॥३४॥

भावार्थ—मालपुर म मुक्ताहार तृणादि के गुच्छो की तरह स्वर्ण धतूरे के समान और मूंग कोपलो की तर_ अतिशय लूटे गये।

सुक्वुरा सुद्वर्णा सद्वरिष्ठा प्रवालाः।
हट्टेभ्यश्च गृहेभ्यश्च सप्राप्ता लुटने जन ॥३५॥

भावार्थ—उस लूट म लोगो ने _काना और घरो से सोना चांदी और मूंग प्राप्त किय।

सुजातारूपक तीक्ष्ण श्वेतशोभ जनमुहु।
नानाम्लेच्छ मुख दृष्ट पतित पथि लुटने ॥३६॥

भावार्थ—उस लू म लोगो को सोना लोहा चांदी और नाना प्रकार के म्लेच्छ मुड माग मे बिखर हुए बार-बार दिखाई दिये।

लुटने लुटनकरलुंटित येन यत्त्वया।
तस्म प्रदत्ता तद्दृष्ट्वा तवोदार चरित्रता ॥३७॥

भावार्थ—हे राजन्! लूट म जिसने जो लूटा आप ने उसे वह दे दिया। लूटने वालो ने आपकी यह उदार चरित्रता देखी।

प्राप्ता भूपालता रका नि शका घनलाभत।
लुटने पुरभूपास्तु निधना रकता गता ॥३८॥

भावार्थ—लूट में जो धन मिला उससे रक नि शक होकर राजा बन गये और नगर के राजा निधन होकर रक हो गये।

लक्ष्मीस्त्र मणिकल्पवृक्षसुरभीहालाधनुर्वाजिन
शखाश्चद्रसुधागजेंद्रसुमन स्त्रीवैद्यविद्याधरा ।
लोकैर्मालपुरोल्लसज्जलनिधेर्मंथेषु रत्नान्यल
लब्धानीति विचित्रमत्र न विष केनापि लब्ध क्वचित् ।।३६।।

भावार्थ —मालपुर रूपी सुन्दर समुद्र के मथन में लोगो ने लक्ष्मी, मणि कल्पवृक्ष, सुरभी हाला, धनुष अश्व, शख, चन्द्र, सुधा गजेन्द्र सुमन स्त्री वैद्य तथा विद्याधर ये पूरे चौन्ह रत्न प्राप्त किये। लेकिन आश्चर्य है कि वहाँ किसी को कही विष प्राप्त नही हुआ।

सुवर्णमूल्यस्य तु रूप्यमुद्रिका
सद्वस्तुनो मूल्यमभूद्विलु टने ।
सद्रूप्यमुद्रामितवस्तुन पुन
कर्पोपि कपस्य वराटक तथा ।।४०।।

भावार्थ —लूट में सुवर्ण के मूल्य की वस्तु का मूल्य रुपया हो गया। इसी प्रकार रुपये के मूल्य की वस्तु का कप और कप के मूल्य की वस्तु का मूल्य वराटक हो गया।

स्वीयब्राह्मणमडलीकृतमहाहोमाग्निहोत्राष्टभि-
यज्ञैभू रिकृतादिवस्तुरचिताजीर्णस्यशात्यै मुखे ।
वह्नेर्मालपुर शुभौषधमय होमीकृत सृष्ट्वा-
मन्ये खाडवमेप पाडव इव श्रीराजसिहोनृप ।।४१।।

भावार्थ —अपने ब्राह्मणो द्वारा राजसिह ने जो बड बडे हवन, अग्निहोत्र और आठ यज्ञ करवाये उनकी प्रचुर घृत आदि सामग्री से अग्निदेव को अजीर्ण हो गया। ऐसा लगता है कि उस अजीर्ण को मिटाने के लिये उत्तम औषधियो से भरा यह मालपुर अग्निदेव के मुख में झोंक दिया गया है। इस प्रकार अर्जुन के समान नृपति राजसिह ने मालपुरा को खाण्डव वन बना दिया।

भावार्थ—मालपुर को जब आपने लूटा तब घोडो की टापों से शक्कर अथवा कपूर के ढेर की सफेद धूल उडी और आकाश म शोभा पाने लगी। उसे देखकर मैंने तक्ना की कि वह तो महाराणा राजसिंह की कीर्ति का सुन्दर प्रकाश है।

गुच्छवद्गुच्छहारास्ते कनक कनकोपम।
प्रवालवत्प्रवालाश्च प्राचुर्याल्लुटनेभवत् ॥३४॥

भावार्थ—मालपुर म मुक्ताहार तृणादि के गुच्छो की तरह स्वण धतूरे के समान और मूंग कोपला की तर_ ग्र तिशय लूटे गये।

सुकवुरा मुर्वणा सद्वरिष्ठा प्रवाला। ।
हट्टेभ्यश्च गृहेभ्यश्च सप्राप्ता लुटने जन ॥३५॥

भावार्थ—उस लूट मे लोगा न ुकानो और घरा से सोना चादी और मूंगे प्राप्त किय।

सुजातरूपक तीक्ष्ग श्वेतशोभ जनैमुहु ।
नानाम्लेच्छ मुख दृष्ट पतित पथि लुटने ॥३६॥

भावार्थ—उस लूट म लोगा को सोना, लोहा चांदी और नाना प्रकार के म्लेच्छ मुड माग म बिखर हुए बार–बार दिखाई दिये।

लुटने लुटनकरलुटित येन यत्त्वया।
तस्मै प्रदत्त तद्दृष्टवा तवोदार चरित्रता ॥३७॥

भावार्थ—हे राजन्! लूट म जिसने जो लूटा आप ने उसे वह दे दिया। लूटने वाला ने आपकी यह उदार चरित्रता देखी।

प्राप्ता भूपालता रका निशका धनलाभत ।
लुटने पुरभूपास्तु निधना रक्ता गता ॥३८॥

भावार्थ—लूट में जो धन मिला उससे रक निशक होकर राजा बन गये और नगर के राजा निधन होकर रक हो गये।

लक्ष्मीसमणिकल्पवृक्षसुरभीहालाधनुर्वाजिन
शखाश्चद्रसुधागजेंद्रसुमन स्त्रीवद्यविद्याधरा ।
लोकैर्मालपुरोत्लसज्जलनिधेर्मथेपु रत्नान्यल
लब्धानीति विचित्रमत्र न विप केनापि लब्ध क्वचित् ॥३९॥

भावार्थ—मालपुर रूपी सुदर समुद्र के मथन में लोगो ने लक्ष्मी, मणि, कल्पवृक्ष, सुरभी हाला धनुप, अश्व, शख, चन्द्र, सुधा गजेन्द्र, सुमन स्त्री वैद्य तथा विद्याधर ये पूरे चौदह रत्न प्राप्त किये। लेकिन आश्चर्य है कि वहाँ किसी को कही विप प्राप्त नही हुआ ।

सुवर्णमूल्यस्य तु रूप्यमुद्रिका
सद्वस्तुनो मूल्यमभूद्विलुटने ।
सद्रूप्यमुद्रामितवस्तुन पुन
कर्पोपि कपस्य वराटक तथा ॥४०॥

भावार्थ—लूट में सुवण के मूल्य की वस्तु का मूल्य रुपया हो गया । इसी प्रकार रुपये के मूल्य की वस्तु का कप और कप के मूल्य की वस्तु का मूल्य वराटक हो गया ।

स्वीयब्राह्मणमडलीकृतमहाहोमाग्निहोत्राष्टभि-
यज्ञैर्भूरिकृतादिवस्तुरचिताजीर्णस्यशात्य मुखे ।
वह्नेर्मालपुर शुभौपधमय होमीकृत सृष्ट्वा-
मन्ये खाडवमेप पाडव इव श्रीराजसिहोनृप ॥४१॥

भावार्थ—अपने ब्राह्मणो द्वारा राजसिंह ने जो बडे-बडे हवन, अग्निहोत्र और आठ यज्ञ करवाये उनकी प्रचुर घृत आदि सामग्री से अग्निदेव को अजीण हो गया। ऐसा लगता है कि उस अजीण को मिटाने के लिये उत्तम औपधियो से भरा यह मालपुर अग्निदेव के मुख में झोंक दिया गया है । इस प्रकार अर्जुन के समान नृपति राजसिंह ने मालपुरा को खाण्डव वन बना दिया ।

टोंक च साम्भर ग्रामौ मालपुरोंटि च चाटसू ।
गौडेन्द्रमुभटा जित्वा दण्डयित्वा धनं भृश ॥४२॥

भावार्थ —टोंक सांभर लालसोट और चाटसू ग्रामों को जीतकर तथा दण्डित कर महाराणा के योद्धा अतिशय शोभित हुए।

राना अमरसिंहोऽत्र उवीयाम्बुद स्थित ।
राजसिंह स्थितस्तत्र दिन नवदिनावधि ॥४३॥

भावार्थ —शक्तिशाली राणा अमरसिंह जहां बादल की तरह ठहर सके आश्चर्य है कि राजसिंह वहाँ नौ दिनों तक ठहरा।

घनाद्भुतखड्गाग्निनिम्नगाऽगता
नदी भवत्यत्र हि नीचगामिनी ।
विघ्न कृता नीचतया तया तत [ ]
श्रीराजसिंह [ ] स्वपुर समागत ॥४४॥

भावार्थ —छोटी नदी में बाढ़ आ गई। चूंकि नदी नीचगामिनी होती ही है उसने अपनी नीचता के कारण विघ्न उपस्थित किया। इसीलिए राजसिंह अपने नगर लौट आया।

मनोज्ञरम्योगवाक्षितगवाक्षपङ्क्तये
विचित्रपटघट्टनाविलसदट्टहट्टे पुन ।
समुद्भटभटयुत कटिसद्घटाटोपके
महोदयपुर नृप प्रविशति स्म वीरोन्नत ॥४५॥

भावार्थ —विजय यात्रा से लौटकर वीर-शिरोमणि राजसिंह ने जब उदयपुर में प्रवेश किया तब मार्ग के दोनों तरफ के गवाक्ष सुन्दर तरुणियों से भर गये। दुकानें और अट्टालिकाएँ चंचल एवं रंगबिरंगी पताकाओं से शोभा पा रही थीं। जुलूस में प्रचण्ड योद्धा और मदोन्मत्त हाथी विद्यमान थे।

इति राजप्रशस्तिमहाकाव्ये सप्तम [ ] सर्ग [ ] ॥

गजधर कल्याण तत्पुत्र जगनाथ भ्रात उरजण तत्पुत्र लाला लघा वसा हरजी ज्ञात सोमपुरा गोत्र भारद्वाज वास उदयपुर

अष्टम सर्ग

[नवीं शिला]

।। श्रीगणेशाय नम

शते सप्तदशेतोते चतुर्दशमितेऽब्दके ।
शिविरे छाइनिनदीतीरस्थे ज्येष्ठमासके ।।१।।

भावार्थ—सवत् १७१४ के ज्येष्ठ महीने में छाइनि नदी के तट पर, शिविर में

औरंगजेब दिल्लीश जात श्रुत्वाथ तन्मुदे ।
अरिसिंह प्रेषितवान् भ्रातर नृपतिस्तत ।।२।।

भावार्थ—राजसिंह ने औरंगजेब के दिल्ली-पति बनने के समाचार सुने। तब उसने बादशाह को प्रसन्न करने के लिये अपने भाई अरिसिंह को भेजा।

अरिसिंह [ ] सिंहनदपर्यंत गतवान्ददौ ।
अरिसिंहाय दिल्लीश स डूंगरपुरादिकान् ।।३।।

भावार्थ—अरिसिंह सिंहनद तक गया। दिल्ली-पति ने उसे डूंगरपुर आदि

देशान्गजादि तत्सर्व अरिसिंह समार्पयत् ।
श्रीराजसिंहचरणे सोस्मै योग्य ददौ मुदा ।।४।।

भावार्थ—देश एव हाथी इत्यादि दिये। अरिसिंह ने उन सब को राजसिंह के चरणो में रख दिया। प्रसन्न होकर राजसिंह ने उसका यथोचित सम्मान किया।

गत्वा शते सप्तदशे तु वर्षे
चतुर्दशाख्ये बहुबाणवर्षे ।
सूजाख्यसोदयवरेण युद्ध
औरंगजेबस्य वितन्वतोस्य ।।५।।

भावार्थ —संवत् १७१४ में जब औरंगजेब और उसके ज्येष्ठ सहोदर शुजा के बीच भीषण युद्ध हुआ तब औरंगजेब को

मुदे कुमारं सिरदारसिंह
　　स प्रेषयामास नृप पुरस्तात् ।
औरंगजेबस्य पुरः स्थितासौ
　　रणे कुमारो जयदा स जातः ॥६॥

भावार्थ —प्रसन्न करने के लिये राजसिंह ने कुंवर सरदारसिंह को भेजा था जिसने वहाँ पहुँचकर युद्ध में औरंगजेब के समक्ष विजय पाई थी । इस कारण

औरंगजेबः सिरदारसिंह
　　वीराय देशाश्वगजाद्यदात्स ।
राणाङ्घ्रिपद्मे प्रददौ स सर्वं
　　प्राप्य स चास्मै प्रददे नपेंद्रः ॥७॥

भावार्थ—औरंगजेब ने उस भी देश अश्व गज आदि प्रदान किये । सरदारसिंह ने इन सब को महाराणा के चरण-कमलों में भेंट कर दिया । राजसिंह ने उसका यथोचित सम्मान किया ।

पूर्णे सप्तदशे शते नरपति सत् षोडशाब्देऽब्दके
　　आचार्योत्तमठक्कुरैर्गिरिधरं तं डूंगराद्ये पुरे ।
सद्राज्य स्थितं रावलं विदधतं कृत्वात्मनः सेवकं
　　प्रेम्णास्मै प्रददौ सुयोग्यमखिलं सेवां व्यधाद्रावलः ॥८॥

भावार्थ —सं० १७१६ में राजसिंह ने ठाकुरों द्वारा रावल गिरिधर को जो उस समय डूंगरपुर में राज्य कर रहा था बुलवाकर उसे अपना सेवक बनाया तथा उचित उपहार के रूप में उसको समूचा डूंगरपुर राज्य प्रेम-पूर्वक प्रदान किया । रावल ने भी राजसिंह की सेवा को निभाया ।

शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे षोडशनामके ।
श्रावणे तु वसाडाख्यदेशं द्रष्टुं नृपो ययौ ।।९।।

भावार्थ—संवत् १७१६ के श्रावण महीने में राजसिंह वसाड देश को देखने गया ।

भटैरुद्भट रावलाद्यैर्बलाढ्यै
प्रचण्डैश्च वेतण्डवर्यैरुपेता ।
गृहीत्वा महावाहिनीं राजसिंह
प्रतस्थे वसाडप्रदेशेक्षणाय ।।१०।।

भावार्थ—वसाड देश को देखने के लिये जब राजसिंह ने प्रस्थान किया, तब उसने अपने साथ बडी सेना ली, जिसमें रावल आदि शक्तिशाली एवं उद्भट योद्धा और बड़े-बड़े प्रचंड हाथी थे ।

ततो दुंदुभि प्रोच्चशब्दैर्जिताब्दा-
रवै पार्श्वदेशस्थिताना जनाना ।
विदीर्णानि वक्षासि वक्षो विभिन्न
महारावतस्यापि नश्यद्बलस्य ।।११।।

भावार्थ—तदनन्तर घन-गर्जन से भी बढकर दुंदुभियो की गड़गड़ाहट से पडौसी देशो में रहने वाले लोगों के हृदय फट गये । सेना-विहीन हुए महारावत का हृदय भी विदीर्ण हो गया ।

झालोद्यत्सुलतानाख्य चौहाण तं महाबलं ।
राव सबलसिंहाख्य रघुनाथाख्यरावत ।।१२।।

भावार्थ—सुलतान झाला राव सबलसिंह चौहान, रावत रघुनाथ

चोंडावत मुहकमसिंह शक्तावनोत्तम ।
एतान्पुरोगमान्कृत्वा एतेषा बाहुमाश्रयन् ।।१३।।

भावार्थ—चूंडावत और मुहकमसिंह शक्तावत को आगे करके तथा उनकी बाहु का आश्रय लेकर

स रावतो हरीसिंहो ययौ देवलियापुरात् ।
आगत्य राजसिंहस्य राजेंद्रस्य पदेऽनमत् ॥१४॥

भावार्थ—रावत हरीसिंह देवलिया से चला और आकर महाराणा राजसिंह के चरणों में गिर गया।

रूप्यमुद्रागुप पञ्चाशत्सहस्राणि यवदयत् ।
मनरावतनामानं करिणं करिणीमपि ॥१५॥

भावार्थ—उसने पचास हजार रुपये, एक हथिनी और मनरावत नामक एक हाथी महाराणा को भेंट किया।

शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे पंचदशाभिधे ।
वैशाखे कृष्णनवमीदिवसे भौमवासरे ॥१६॥

भावार्थ—संवत् १७१५ वैशाख कृष्णा नवमी मंगलवार को

महाराजसिंहाज्ञया वांसवाले
क्षणार्थं फतेचंदमन्त्री प्रतस्थे ।
चमू पंचराजत्सहस्राश्ववारै-
र्महाठक्कुराणां ठिना ता गृहीत्वा ॥१७॥

भावार्थ—बड़े-बड़े पाँच हजार अश्वारोही ठाकुरों की सेना लेकर मंत्री फतेचंद ने महाराणा राजसिंह की आज्ञा से बांसवाड़ा को देखने के लिये प्रस्थान किया।

ततः समरसिंहस्य रावलस्याबलस्य वै ।
लक्षसंख्या रूप्यमुद्रा देशदानं च हस्तिनी ॥१८॥

भावार्थ—उसने सेना हीन रावल समरसिंह से एक लाख रुपये, देशदान, एक हथिनी,

गजं दंडं दशग्रामा कृत्वाऽगात्यदर्हिन् ।
राणेंद्रस्य फतेचंदो भृत्य कृतवान् रावलं ॥१९॥

भावार्थ—एक हाथी और दश गाव दड स्वरूप लेकर उसे महाराणा के चरणो मे झुका दिया। फतेचद ने रावल को महाराणा का अधीन बनाकर ही छोडा।

दशग्रामा देशदान रूप्यमुद्रावलेर्नृप ।
सद्विशतिसहस्राणि रावलाय ददौ मुदा ॥२०॥

भावार्थ—प्रसन्न होकर राजसिंह ने दस गाव देशदान और बीस हजार रुपये रावल को दिये।

श्रीराजसिंहवचनात्फतेचद सठक्कुर ।
चक्रे देवलियाभग हरीसिंह पलायित ॥२१॥

भावार्थ—राजसिंह की आज्ञा से ठाकुरो को साथ लेकर फतेचद ने देवलिया का विध्वस कर दिया। हरीसिंह वहाँ से भाग गया।

हरीसिंहस्य माता तु गृहीत्वा पौत्रमागता।
प्रतापसिंह विदने प्रसन्न राणमनिण ॥२२॥

भावार्थ—तब हरीसिंह की माता अपने पौत्र प्रतापसिंह को लेकर महाराणा के पास पहुँची तथा उसने उसे प्रसन्न किया।

रूप्यमुद्रासहस्राणि विंशत्याख्यानि हस्तिनी।
दड प्रकल्प्य स्वल्प स फतेचदो दयामय ॥२३॥

भावार्थ—दयालु फतेचद ने उससे स्वल्प दड के रूप मे बीस हजार रुपये और एक हथिनी ली। इसके बाद वह

राणेंद्रचरणाभ्यर्णे आनायामास त बलात्।
प्रतापसिंह जातस्तत्फतेचद प्रभो प्रिय[ ] ॥२४॥

भावार्थ—प्रतापसिंह को महाराणा के चरणो मे बलपूर्वक ले आया। इस प्रकार फतेचद अपने स्वामी का प्रिय बन गया।

भावार्थ —नृपति राजसिंह ने, दिल्ली पति के लिये सुरक्षित, राठौड रूपसिंह की पुत्री से विवाह किया।

एकोनविंशतिस्वब्दे शते सप्तदशे गते
मेवल देशमतनोत्स्वकाय त बलान्नृप ॥३१॥

भावार्थ —सवत् १७१९ मे राजसिंह ने मेवल देश को बलपूर्वक अपने अधीन कर लिया।

मीनान्निजलमीनाभान् रुद्ध्वा बद्ध्वातिदुष्करान् ।
खडयामासुरधिक मीनासैन्य महाभटा ॥३२॥

भावार्थ —कठिनाई से पकड में आने वाले मीणो को जल विहीन मच्छों की तरह घेर कर और बाँधकर राजसिंह के योद्धाओ ने उनकी भारी सेना को नष्ट कर दिया।

श्रीराणाराजसिंहेंद्रो मेवल त्वखिल ददौ ।
स्वीयराजन्यधन्येभ्यो वासोहयधनानि [च] ॥३३॥

भावार्थ —महाराणा राजसिंह ने अपने योग्य सामन्तो को वस्त्र, अश्व, धन और समूचा मेवल देश दे दिया।

शते शप्तदशेतीते विंशत्याह्वयवत्सरे ।
श्रीराजसिंहस्याज्ञात सिरोहीनगर गत ॥३४॥

भावार्थ —सवत् १७२० में राजसिंह की आज्ञा से

रानावतो रामसिंह ससैन्यो रावमाकुल ।
पुत्रेणोदयभानेन रुद्धममोचयद्बलात् ॥३५॥

भावार्थ —रानावत रामसिंह ससैन्य सिरोही नगर पहुँचा। उसने दुःखी राव अखराज को जिसे उसके पुत्र उदयभान ने कद कर रखा था, बलपूर्वक छुडाया और

अखेराज तस्य राज्ये स्थापयामास तत्स्फुट ।
राणा मित्रारिराज्याना स्थापकोत्थापका इति ॥३६॥

भावार्थ —उसे उसके राज्य पर स्थापित किया । तभी से यह प्रसिद्ध हुआ कि राणा मित्र और शत्रु के राज्यो के स्थापक और उत्थापक हैं ।

शते सप्तदशे पूर्णे एकविंशतिनामके ।
वर्षे मार्गेऽसिताष्टम्या राजसिंहो महीपति ॥३७॥

भावार्थ —सवत् १७२१ मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी को पृथ्वीपति राजसिंह ने

अनूपसिंहभूपस्य वाघेलाबाधवप्रभो ।
भावसिंहकुमाराय कन्य मजवकुँवरि ॥३८॥

भावार्थ —बाधव के स्वामी बाघेला राजा अनूपसिंह के कुमार भावसिंह के साथ अपनी पुत्री अजब कुँवरि का

सकल्प्य विधिना दत्त्वा महाराजयपत्तये ।
गोत्रजाद्यकन्यानामष्टाग्रा नवति ददौ ॥३९॥

भावार्थ —विवाह विधिपूर्वक किया । उस अवसर पर उसने अपने वश के क्षत्रियो की १८ कन्याओ का विवाह [रींवा के] राजपूतों के साथ कराया ।

अथाथ पाकशालाया राजसिंहो नरेश्वर ।
भावसिंहकुमाराद्यै बाधवीयैस्तु बाहुज ॥४०॥

भावार्थ —इसके बाद पाकशाला मे बाधव के निवासी भावसिंह आदि

अस्पर्शभोजिभि साकमुपविष्टो विशिष्टभा ।
कुर्वाणो भोजन भाति बाधवीयैस्तदेरित ॥४१॥

भावार्थ —अस्पर्शभोजी क्षत्रियो के साथ बैठकर तेजस्वी नृपति राजसिंह जब भोजन करने लगा तब वे बोले—

श्रीराणाराजसिंहस्य यदन्नमतिपावनं ।
तज्जगन्नाथरायस्य प्रसादान्न न संशयः ॥४२॥

भावार्थ—'राणा राजसिंह का जो यह अन्न है वह जगन्नाथराय का प्रसाद है और इसलिये अति पवित्र है। इसमें कोई संशय नहीं।

तदन्नभोजिनो ह्यद्य वयं प्राप्ता पवित्रता।
हयान्गजान्भूषणानि वरेभ्योदान्महीपति[ ] ॥४३॥

भावार्थ—इस अन्न को खाकर हम आज पवित्र हो गये हैं।" तदुपरान्त राजसिंह ने दूल्हों को घोडे, हाथी और आभूषण दिये।

पूर्णे शते सप्तदशे सुवर्षे
तथैकविंशत्यभिधे तु माघे।
सुरूप्यमुद्राद्विसहस्रहेम-
कृता शुभोपस्करपूरिता च ॥४४॥

भावार्थ—संवत् १७२१ के माघ महीने के सूर्यग्रहण के अवसर पर वीर शिरोमणि राजसिंह ने दो हजार रुपयों का, सोने का बना,

सूर्योपरागे तु हिरण्यकामधेनु
महादानमदात्स रूप्या।
व्यधात्तुला वा गजमौक्तिकाख्य-
गजं ददौ वीरवरो नरेंद्र ॥४५॥

भावार्थ—हिरण्यकामधेनु नामक महादान दिया। उसके साथ अन्य सुन्दर सामग्री भी। तब उसने चाँदी की तुला भी की तथा गजमौक्तिक नाम का एक हाथी प्रदान किया।

शते सप्तदशे पूर्णे पंचविंशतिनामके।
वर्षे माघे राजसिंहो दशम्यां शुक्लपक्षके ॥४६॥

भावार्थ --'रंगसर' तडाग की प्रतिष्ठा कराई। बाल्यावस्था मे पुण्य करनेवाले इस वीर ने उस अवसर पर महादान दिये।

श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमत्प्रताप[ ] सुत-
स्तस्य श्री अमरेश्वरोस्य तनय श्रीकर्णसिंहोस्य वा।
पुत्रो राणजगत्पतिश्च तनयोस्माद्राजसिंहोस्य वा
पुत्र[ ] श्रीज[य]सिंह एष कृतवान्वीर शिलाऽऽलेखित ॥५३॥

भावार्थ —राणा उदयसिंह के प्रताप, उसके अमरसिंह उसके कर्णसिंह, उसके जगतसिंह उसके राजसिंह तथा राजसिंह के जयसिंह हुआ। उस वीर जयसिंह ने यह शिला लेख उत्कीर्ण करवाया।

पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमाख्ये दिने
द्वाविंशन्मितवत्सरे नरपते श्रीराजसिंहप्रभो ।
काव्यं राजसमुद्रमिष्टजलधेरुत्सगसद्वर्णना-
सपूर्णं रणछोडभट्टरचितं राजप्रशस्त्याह्वय ॥५४॥

भावार्थ —यह राजप्रशस्ति नाम का काव्य है। इसकी रचना रणछोड भट्ट ने की। संवत् १७३२ के माघ महीने की पूर्णिमा के दिन नृपति राजसिंह के जिस राजसमुद्र रूपी मधुर सागर की प्रतिष्ठा हुई उसका इस काव्य मे सुन्दर वर्णन है।

इति श्री अष्टम सर्ग ॥

संवत् १७१८ अखरे संवत सतरे से अठारहोतरा वरषे माघमासे कृष्णपखे सप्तमी दिवसे बुधवारे श्री राजसमुद्र रो आरंभ रो मोहूरत कीधो जो। संवत १७३२ अखर संवत सतरे से बतीसा विरषे माघमासे सुक्लपखे पुरणमासी दिवसे बृहसपतिवारे श्री राजसमुद्र री प्रतीष्टा कीधी जो [।] श्री राजसमुद्र डोरो दोन ६ माहे डोरो फेरेने पाछा पधारेणे तुला सोना री बेसेने समस्त ब्राह्मण भाट चारण ने दान दीधोजो। भटरणछोडजी पुत्र सुत लखमीनाथ ॥ गजधर कल्याणजी गजधर मोहणजी उरजणजी सुखजी केसोजी सु दरजी सालाभ्री जात सोमपुरा थात उदपर [॥]

नवम सर्ग

[दसवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नम ॥

वृत्तास्योडुपशोभित प्रविलसल्लावण्यकल्लोलवा-
प्रोल्लोलन्मकराच्छकुण्डलधरो राजीवराजीक्षण ।
माणिक्योज्ज्वलहीरकोत्तममहाभूप प्रवाललसन्
शृङ्गारामृतसागरस्तनर मुदे गोवर्द्धनोद्धारक ॥१॥

भावार्थ —गोवर्द्धनधारी कृष्ण शृंगार रूपी अमृत संयुक्त सागर है। उनका गोल मुख चन्द्रमा है। लावण्यमयी तरंगों से वह शोभा पा रहा है। उसने उल्लोलित मकर कुंडल धारण कर रखे हैं। उसके नेत्र कमल हैं। उज्ज्वल माणिक्यों हीरा और मूंगा से वह अतिशय सुशोभित है। वह आपको आनन्द प्रदान करे।

महाराजाधिराजश्रीजगत्सिंहे विराजति ।
वत्सरेष्टनवत्यान्ये शते षोडशके गते ॥२॥

भावार्थ —संवत् १६९८ में महाराजाधिराज श्री जगतसिंह की विद्यमानता में,

श्रीकुमारपदे पूर्वं राजसिंहो ययौ प्रति ।
दुर्गं जैसलमेराख्य पाणिग्रहकृते तदा ॥३॥

भावार्थ —राजसिंह विवाह करने के लिये जैसलमेर दुर्ग गया था। तब वह कॅवरपदे में था। उस समय

द्वादशाब्दवया एव प्रवया इव बुद्धिमान् ।
द्वादशात्मस्फुरत्तेजा ईदृशी मतिमादधे ॥४॥

भावार्थ —उसकी आयु बारह वर्ष की ही थी पर वह वृद्ध के समान बुद्धिमान् और सूर्य के समान तेजस्वी था। उसने इस प्रकार सोचा और

घोधु दा सनवाडश्च सिवाली च भिगावंदा ।
मोचना च पसो[द]श्च खेडी छापरखेडिका ॥५॥

भावार्थ — घोयदा सनवाड सिवाली भिगावदा, मोरचणा, पसूंद खेडी छापर खेडी

तासोल मेडावरको भानो ग्रामो लुहानक ।
वासोल गुढली एपा काकरोली मढा इति ॥६॥

भावार्थ — तासोल मडावर, भांण लुहाणा बांसोल, गुढली, कांकरोली एव मढा इन

ग्रामाणा सीम्नि दृष्ट्वा क्षमा तडागकरणोचिता ।
स्वमन स्थापयामाम वद्धुमत्र जलाशय ॥७॥

भावार्थ — गाँवों की सीमा मे तडाग-निर्माण-योग्य भूमि देखकर वहाँ एक जलाशय बाँधने का मन म निश्चय किया ।

धमकार्ये मतेधर्त्ता शत्रोर्हर्त्ता सदा रणे ।
यदा राज्यस्य कर्त्ताय भुवो भर्त्ताभवत्तदा ॥८॥

भावाथ — धम काय मे बुद्धि रखनेवाला और रण-भूमि म सदा शत्रु-सहार करनेवाला यह पृथ्वीपति जब राज्याधिरूढ हुआ तब

शते सप्तदशे पूर्णे अष्टादशमितेब्दके ।
मासे मार्गे ययौ द्रष्टु रूपनारायण हरि ॥९॥

भावार्थ — सवत् १७१८ के मागशीष मे उसने रूपनारायण भगवान के दर्शन करने के लिये प्रस्थान किया ।

तदनां वीक्ष्य वसुधा तडाग वद्धुमुद्यत ।
पुरोघसावरो‍मत्र काय स्यादिति सोवदत् ॥१०॥

भावाय—तव उस भूमि को फिर स देखकर वह तडाग बांधने के लिये तयार हुआ। पुरोहित स उसन सलाह ली। पुरोहित न कहा—"यह काय होना चाहिये।

श्रद्धा पूर्णाऽविरोधित्व दिल्लीशेन व्ययो वहु ।
द्रव्यस्यति भवच्चेत्स्यादाज्ञोक्त स्यानय तत ॥११॥

भावाय—यदि पूण श्रद्धा हो दिल्ली-पति से विराध न हो तथा धन का प्रचुर व्यय हो तो यह काय हो सकता है। इस पर नृपति ने कहा—'तीनो बातें हो सकती हैं।'

पुरोहितकरश्रीमत्पुरोहितपुर सर ।
पुरोहितजयी राजा काय कत्तु मथोद्यत ॥१२॥

भावाय—फिर वह तडाग बंधवान के लिये तयार हुआ। पुरोहित आग स आग राजसिंह का हित करन वाला था और पुरोहित के प्रभाव स ही उस विजय मिलती रही थी। इस कारण महाराणा न इस काय म भी उस आगे रखा।

अखवयो पवतयारतरे गोमतीं नदी।
रोद्धु वद्ध महासेतु रानेंद्रा यत्नमादधे ॥१३॥

भावाय—महाराणा ने बड-बड दो पवता के बीच गामती नदा को रोकने और महासेतु के बाधने का प्रयत्न किया।

पूर्णे सप्तदशाभिधे तु शतके स्वष्टादशाख्येऽब्दके
माघे कृष्णसुपक्षक किल बुधे सत्सप्तमीवासर।
ईदृक्चस्य च्हेदृशाह्वययुते काले तु कार्ये कृते
सख्यान खलु नामतोपि च समो मे वाञ्छितार्थो भवत् ॥१४॥

भावाय—राजसिंह ने जलाशय का मुहूत्त निकलवाया-सवत् १७१८ माघ कृष्णा ७ बुधवार। यह मुहूत्त इसलिए निकलवाया कि इसम प्रयुक्त सख्या [सप्त दश और अष्टादश] तथा नाम [माघ कृष्ण पक्ष बुधवार और सप्तमी] के समानार्थी फल राजसिंह को प्राप्त हो। जसे—

पूर्णेत्रेति च सप्तसागरदशाशाष्टादशद्वीपक-
श्रेण्या स्वीययश प्रकाशकृतये माऽघो मम स्यात्क्वचिद् ।
कृष्णा पक्षकरो बुधा स्तुतिकरा सत्सप्तमीदिग्ध्रुव-
ध्रौव्यार्थं तु जलाशयस्य कृतवा भूपो मुहूर्त ग्रह ॥१५॥

भावार्थ—इस काय के सपन्न होने पर साता सागर, दसो दिशाएँ और अठारहा द्वीप पयन्त उसका यश फले । पाप से वह दूर रहे। कृष्ण उसका साथ दे। विद्वान् उसकी स्तुति करें। सातवी दिशा [=उत्तर] के निवासी ध्रुव की निश्चलता उसे प्राप्त हो।

सेतु बद्धु बद्धपर्णैर्घृतचित्रखनित्रकै ।
जनै खननमारब्ध लुब्धैश्च धनलब्धये ॥१६॥

भावार्थ—धन-प्राप्ति की अभिलाषा से मजदूरो ने सेतु बाँधने के लिये नाना प्रकार के औज़ारो से खुदाई करना प्रारम्भ किया।

तदोद्भटै षष्टिसहस्रसमितै
समुद्रसर्गे सगरात्मजैर्यथा ।
अकारि भूमे खनन तथाम्बुधि
कत्तु द्वितीय रचित नृकोटिभि ।१७॥

भावार्थ—समुद्र के निर्माण में जिस प्रकार सगर के साठ हजार उद्भट पुत्रों ने भूमि खोदी उसी प्रकार इस दूसरे समुद्र के निर्माण के लिये करोडो मनुष्य पृथ्वी खोदने लगे।

असख्ये खनने तत्र जायमाने जनै कृते ।
पृथिव्या पृथवो जाता मृत्तिकौघेन पवता ॥१८॥

भावार्थ—मनुष्यो ने वहाँ बहुत खोदा। इस कारण मिट्टी के बने ढेरो से पृथ्वी पर बडे बडे पवत बन गये।

महत्कार्यं महाराणा मत्वा साधारणैर्जनै ।
न भवेत्तत्स्वय स्थित्वा कारय भाति युक्तता ॥१९॥

भावाय — काय महान् है। उसे साधारण लोग नहीं कर सकते।' ऐसा समझकर महाराणा वहीं रहा और स्वयं काम करवाने लगा। यह उचित था।

मत्वा राजो महत्कार्यं सेतुबंध नृवधहृत्।
स्वस्याग्रे कारयामास तथव कृतवान्प्रभु ॥२०॥

भावार्थ—सेतु-ब ध को महान् काय समझकर मनुष्यों को बधन से मुक्त करने वाल महाराणा ने अपने आगे इस काम को उसी प्रकार करवाया जसे मनुष्यों को मोक्ष देनेवाले भगवान् राम ने करवाया था।

कायस्य महतो ह्यस्य कृत्वा भागाननेकश।
राजन्यादिकयेभ्यो दत्तवास्ता धरापति ॥२१॥

भावाय —काय महान् था। इस कारण उसके अनेक भाग बनाकर पृथ्वीपति ने उन्हें योग्य सामन्तो को सौंप दिया।

सेतोर्दृढ्यकृते पृथ्व्या पृष्ठे स्थापयितु शिला।
जलनिःसारण कर्तु प्रयत्न कृतवान्नृप ॥२२॥

भावाय —राजसिंह ने सेतु की दृढ़ता के निमित्त पृथ्वी की पीठ पर शिलाएँ रखवाने के लिये वहाँ स जल निकलवाने का प्रयत्न किया।

शक्र पराक्रम कालमायुषा धनद धनै।
जित्वावुक्पणे राणा वरुण जेतुमुद्यत ॥२३॥

भावार्थ —इन्द्र को पराक्रम से यम को आयु स और कुबेर को धन से जीतकर जल निकालने म तत्पर महाराणा मानों अब वरुण पर विजय पाने के लिये तयार हुआ है।

तदा चक्रभृता तत्र घटीयन्त्रेण यत्नत।
वृषयुक्तेन कायस्य साहाय्यमुचित हि तत् ॥२४॥

भावार्थ—तब जल निकालने के लिये बल जोतकर चक्रवाले रेंहट का उपयोग किया जो उचित था।

क्रियमाणे घटीयन्त्रैजलनिसारणे जनै ।
तेषा तत्कार्यकरणे साधक स घटीगण ॥२५॥

भावार्थ—लोगो ने जब रेंहटो से जल निकालना प्रारम्भ किया, तब उनके उस काम मे रेंहट की कलसियाँ सफल हो गई।

स्वतन्त्रैश्च घटीयन्त्रैरस्वतन्त्रै स्फुरद्रूपै ।
घटीमात्रेण घटितैर्भूरिनिसारित जल ॥२६॥

भावार्थ—बल जुते हुए थे। रेंहट बिना रुकावट के चल रहे थे। उनके द्वारा घडी भर मे बहुत जल निकल गया।

जलयन्त्रैर्बहुविधैरुपर्युपरि कल्पितै ।
लोकैर्भूपृष्ठग नीर एवं दूरीकृत द्रुत ॥२७॥

भावार्थ—एक के ऊपर एक करके वहाँ रेंहट अनेक प्रकार से लगाये गये थे। लोगों ने उनसे पृथ्वी-तल का समस्त जल तत्काल बाहर निकाल दिया।

अस्मिन्भरतखडे तु यावत सति साप्रत ।
जलनिसारणोपायास्तावत कल्पिता इह ॥२८॥

भावार्थ—वर्त्तमान म भारतवर्ष मे जल निकालने के जितने उपाय हैं, उनका प्रयोग यहाँ किया गया।

गुणिभि सूत्रधारैश्च पामरैरपि ये पुन ।
जलनिसारणोपाया प्रोक्तास्ते निर्मिता इह ॥२९॥

भावार्थ—गुणवान् सूत्रधारो तथा पामर लोगो ने जल निकालने के अन्य जो उपाय बताये वे भी यहाँ काम मे लाये गये।

इतो निःसारितं नीरं सारणीप्रमुखैः परैः ।
ग्रामे ग्रामे जनैर्नीतं ग्रामा नगरतां गताः ।।३०।।

भावार्थ—वहाँ से उलीचे गये पानी से बड़ी-बड़ी नहरें निकालकर लोग गाँव-गाँव में ले गये । गाँव नगरों में बदल गये ।

यथा ज्योतिषसारण्या वासरं श्रेष्ठसाधनम् ।
कृतं तथाम्बुसारण्यावसरं श्रेष्ठसाधनम् ।।३१।।

भावार्थ—शुभ दिन निकालने के लिये जिस प्रकार ज्योतिष की सारणी का उपयोग किया जाता है उसी प्रकार वर्ष को उत्तम बनाने के लिये यहाँ जल सारणी का उपयोग किया गया ।

एवं नानाप्रकारेण जलं निःसार्य सर्वतः ।
सेतुबन्धकृते लोकैर्भूपृष्ठं प्रकटीकृतम् ।।३२।।

भावार्थ—इस प्रकार भाँति-भाँति से सब तरफ का जल निकालकर लोगों ने [illegible] बाँधने के लिये जमीन को साफ कर दिया ।

प्रत्यक्षनीरवर्षो जित इन्द्रो गिरिधरेण कृष्णेन ।
वरुणः परोक्षपूरितजलो जितो राण तत्त्वया चित्रम् ।।३३।।

भावार्थ—प्रत्यक्ष रूप में आकर इन्द्र ने पानी बरसाया जिसे पर्वत द्वारा कृष्ण ने जीता था । लेकिन आपने उस वरुण पर विजय पाई है जो छिपकर जल प्रवाहित करता रहा । हे राणा ! यह आश्चर्य है ।

पूर्णे सप्तदशे शतेब्दे उदिते दिव्यर्कविंशत्यभि-
व्याप्ताख्ये दिवसे त्रयोदशिकया शस्यात्ययार्के शुभे ।
वैशाखे सितपक्षके खलु विधोर्वारे विलैताद्दशे
काले भावि सुरायसूचकसमानाथव्रजाख्यायुते ।।३४।।

भावार्थ—नीव भरने का मुहूर्त निकलवाया गया—संवत् १७२१ वैशाख शुक्ला १३, सोमवार। कवि कहता है कि इस मुहूर्त में प्रयुक्त नाम [सप्तदश, एकविंशति, त्रयोदशी का दिन, वैशाख, शुक्ल पक्ष और सोमवार] राजसिंह के भावी पुण्यों की सूचना देने वाले हैं। वे पुण्य उपरोक्त नाम के समानार्थी हैं, जो इस प्रकार हैं—

जंबूद्वीपवदन्यसप्तदशसु द्वीपेषु कीर्त्याप्तये
निघोद्यन्निरयैकविंशतिमहादुःखस्थलादृष्टये।
घस्रेशद्युतिलब्धये कुलमहाशाखाविवृद्ध्यै सदा
लाभार्थं सितपक्षकस्य च विधुस्वाह्लादकत्वाप्तये ॥३५॥

भावार्थ—जंबूद्वीप की तरह दूसरे सत्रह द्वीपों में कीर्ति की प्राप्ति निंद्य एवं भयंकर इक्कीस नरकों के भीषण दुःख-पूर्ण स्थानों को अदृष्टि दिन-पति [=सूर्य] के तेज की उपलब्धि वंश की महाशाखा की विशेष वृद्धि का सदा लाभ और शुक्ल पक्ष के बढ़ते हुए चन्द्रमा के समान आह्लाद की प्राप्ति। इन पुण्यों को पाने के लिये

श्रीराणाराजसिंहोऽयं सेतोः सत्पदपूरणे।
कर्तुं मुहूर्त्तं कृतवान्नवग्रहबलान्वितः ॥३६॥कुलकं॥

भावार्थ—महाराणा राजसिंह ने नव ग्रहों का बल पाकर सेतु की नींव भरने का उक्त मुहूर्त्त निकलवाया।

गरीबदासस्य पुरोहितस्य
ज्येष्ठः कुमारो रणछोडरायः।
महाशिलां पंचसुरत्नपूर्णा-
मादौ दधे तत्र पदस्य पूर्त्यै ॥३७॥

भावार्थ—नींव भरने के लिये प्रारम्भ में पुरोहित गरीबदास के ज्येष्ठ पुत्र रणछोड राय ने पांच रत्नों सहित एक बड़ी शिला रखी।

दृढोपलप्रदानेन सुधापानेन यत्नत ।
सेतो पदस्याजरत्वममरत्व कृत जनै ॥३८॥

भावार्थ —लोगों ने मजबूत पत्थर लगाकर और चूना पिलाकर बड़ी मेहनत से सेतु की नीव को अजर-अमर बना दिया।

महासेतो प्रबधेऽस्मिन्महाकार्ये महागजै ।
सुधाचूर्ण समानीत परिपूर्ण न चाद्भुत ॥३९॥

भावार्थ —महासेतु का बांधना एक बड़ा काम था। उसमें बड़-बड़े हाथी चूने का चूर्ण लाए। यह आश्चर्य करने जैसी बात नही है।

सवनो मुखरूपस्य जलस्य मुखमुद्रण ।
धीरादरकृता युक्त राजसिंह त्वया कृत ॥४०॥

भावार्थ —हे राजसिंह ! आप धीर पुरुषों का आदर करने वाले हैं। बहुमुखी जल का मुह बन्दकर आपने ठीक ही किया।

छिद्रान्वेषी जलगण इह क्ष्माप सर्व ह्रीय-
-मुच्छिन्दन स्वीय दधदनिपद दृष्टमात्र त्वया तु।
यत्रं वात्रोचितमिति शिलाश्रेणिभि क्षारचूर्णाऽऽ-
पूर्णाभिर्द्राक्तदतुलमुखो मुद्रण स्पष्टमेव ॥४१॥

भावार्थ —हे पृथ्वी-पालक ! छिद्रान्वेषी जल जब पृथ्वी पर अपनी मर्यादा का उल्लधन करता दिखाई दिया तब आपने उचित उपाय ढूढकर तत्काल खारे चून म डूबी हुई शिलाओं से उसके विशाल मुख को बन्द कर दिया जो स्पष्ट ही है।

नून कामोसि राणेंद्र यत्र तत्रोदितच्छलात् ।
शवर मुद्रित तत्वम् युक्त सेतुप्रबधकृत् ॥४२॥

भावार्थ —हे महाराणा ! आप सचमुच कामदेव हैं। कामदेव ने जहां छल से शवर को कैद किया था वहा आपने सेतु बाँधकर उसे मूंद दिया।

कवधविक्रमजयी वानरव्रजपोषक ।
रामक्रमाभिरामोसि सेतु वघ्नासि युक्तना ॥४३॥

भावाथ—हे राजसिंह ! माप राम के चरित्र को निभाने वाले हैं। राम ने कवध राक्षस के पराक्रम पर विजय पाई और भापने जल को बांधकर उसके पराक्रम को जीता है। वे वानरों के पोषक थे और भाप हैं मनुष्यों के। उन्होंने भी सेतु बांधा था और माप भी सेतु बांध रहे है। यह ठीक है।

गोत्रेणैकेन चक्रे हरिरमितजल दूरत शक्रमुक्त
सप्ताह श्रीमता तद्वरुणसमुदित वारि दूरीकृत हि।
आसप्ताब्द सुगोत्रातुलितभरभृता स्यात्रिलो[क]प्रपूर्ति-
स्त्वत्कीर्त्ति कृष्णकीर्तेरपि भवति परा कृष्णभक्तस्य वीर ॥४४॥

भावाथ—इन्द्र ने दूर से ही अपार जल वरसाया, जिसे कृष्ण ने केवल एक पवत को धारण कर दूर किया। लेकिन पृथ्वी के अतुलित भार को धारण कर माप यहा वरण द्वारा प्रवाहित जल को सात वर्षों तक दूर करते रहे। इस कारण हे वीर ! कृष्णभक्त-आप की कीर्ति, कृष्ण की कीर्ति से भी बढ़कर है। वह तीनों लोकों में फले।

श्रीराजसिंह प्रथम शरीबधमकारयत्।
महासेतोस्तत पश्चात्सॅभरीबधन दृढ ॥४५॥

भावाथ—राजसिंह ने महासेतु का पहले 'शरीबध'[1] बँधवाया और इसके बाद सुदृढ़ सॅभरोबध'।[2]

मत्स्या पाडररक्तपीतरुचय सेतोस्तु भागे परे
पातालात्किल निर्गता शुभतर गर्भोदक नि सृत।
तेनोक्त त्विह सूत्रधारनिपुणैरभोत्यगाध भवे-
न्द्रूपालाय निवेदित नरपति श्रुत्वा स्मितास्योभवत् ॥४६॥

---

१ शरीवध=कच्चा बांध।
२ सॅभरोबध = पक्का बांध।

भावार्थ—इ द्र स्वरूप मनस्वी राजसिंह ने असुरों को जीतने के उद्देश्य से पृथ्वी पर सुवर्ण शैल के ऊपर अपने लिये सुन्दर और अप्रतिम एक दुर्गम राजप्रासाद बनाया।

पूर्णे शते सप्तदशे तु मार्गे
वर्षेत्र षड्विंशतिनाम्नि भूप
पाडौ दशम्यां क्षितिमन्दिरेंद्र।
प्रासादमध्ये कृतवान्प्रवेश ॥४॥

भावार्थ—संवत् १७२६ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को पृथ्वीपति राजसिंह ने उस राजप्रासाद में प्रवेश किया।

शते शप्तदशेतीते षड्विंशतिमितेब्दके।
ऊर्जकृष्णद्वितीयायां राजसिंहो महीपति ॥५॥

भावार्थ—संवत् १७२६ कार्तिक कृष्णा द्वितीया को राजसिंह ने

हेम्न पलशतं [ ] सृष्टं [ ] पंचकल्पद्रुमयुत।
हेम्न पलशत सृष्ट महाभूतघटाभिध ॥६॥

भावार्थ—सौ पल सोने के बने पांच कल्पद्रुम और उनके साथ सौ पल सोने का बना महाभूतघट तथा

हिरण्याश्वरथ रूप्यमुद्रादशशते कृत।
दत्वा महादानयुगमेतद्विप्रानतोषयत् ॥७॥

भावार्थ—एक हजार रुपयों के मूल्य का हिरण्याश्वरथ महादान देकर ब्राह्मणों को संतुष्ट किया।

विप्रेभ्यो राजसिंह प्रभुमुकुट घट श्रीमहाभूतपूर्वो
दत्तो देवद्रुमाक्त सकलसुरमयो मेररेव त्वयाय।
तद्दृष्ट्वा स्थानहीना कृतमतय इतो ब्राह्मणेषु प्रविष्टा-
स्ते जाना भूमिदेवा दधति गृहगणे मेरुभोग त्वदीये ॥८॥

भावार्थ—हे महाराणा राजसिंह ! आपने ब्राह्मणो को कल्पद्रुम सहित और समस्त देवो से युक्त जो महाभूतघट दान दिया है वह मेरु पर्वत ही है। इस कारण अपने को गृह-विहीन समझकर सभी देवता ब्राह्मणो म प्रविष्ट हो गये हैं और व उस रूप मे आपके मकाना मे रहकर मेरु का आनन्द ले रहे हैं।

एकादशसहस्राणि षट शतानि च सप्तति ।
लग्नानि लग्ना रूप्यस्य मुद्राणा दानयोरिह ॥६॥

भावार्थ—इन दो दानो म ग्यारह हजार छह सौ सत्तर रुपये लगे।

पूर्णे शते सप्तदशेथ वर्षे
चकार षड्विंशतिनाम्नि राधे।
सितत्रयोदश्यभिधेह्नि सेतो-
नृपो मुहूर्तं पुरि काकरोल्या ॥१०॥

भावार्थ—इसके बाद सवत् १७२६, वैशाख शुक्ला त्रयोदशी के दिन काकरोली मे राजसिंह ने सतु के निमाण का मुहूर्त किया।

ततोन खातो रचित पृथिव्या
जनैर्विचित्रै पृथुभि खनित्रै ।
महाशिलाभि ससुधाभराभि
सेतो पद पूरितमेव तुग ॥११॥

भावार्थ—मनुष्यों ने वहाँ नाना प्रकार के बडे-बड औजारो से नीव खोदी और चूने मे भीगी हुई बडी-बडी शिलाओ से उसे ऊपर तक भर दिया।

पूर्णे शते शप्तदशेय वर्षे
आषाढमासादिक एव जाता।
ज्येष्ठेत्र षड्विंशतिनाम्नि नव्या
जलस्थितिर्वृष्टिभवा तडागे ॥१२॥

भावार्थ —इसके बाद सवत् १७२६ में आषाढ से पूर्व ही ज्येष्ठ में वर्षा होने के कारण तडाग मे नया जल आगया।

वर्षेत्राषाढवहुलपक्षस्मरतिथौ रवौ।
वर्षाष्टकेन वा पचमासै षड्भिर्दिनै कृत ॥१३॥

भावार्थ —इसी वर्ष आषाढ कृष्णा पचमी रविवार को, आठ वर्ष, पाँच माह और छह दिन लगाकर

मुखसेतोस्तु भूपृष्ठ सुधापूर्णं शिलागणे।
पूरित भित्तिरूपोच्च सूत्रधारैध्रु व कृत ॥१४॥

भावार्थ—सूत्रधारों ने चूने में डूबी हुई शिलाओ से मुख्य सेतु की नीव को भरकर और भित्ति के रूप में ऊपर उठाकर उसे सुदृढ बना दिया।

ईदृक्कालकृतस्यास्य दृष्ट्या सिध्यष्टक नृणा।
पचेंद्रियाणा पापात षडूमिहरण भवेत् ॥१५॥

भावार्थ —सेतु के निर्माण मे इस प्रकार समय लगा है। अत इसके दर्शन से मनुष्यों को आठो सिद्धियाँ प्राप्त हो उनकी पचेन्द्रियो के पाप नष्ट हों और षडूर्मियो का हरण हो।

अस्मिन्महावत्सर एव नव्य
सस्थापित यत्तु जल तडागे।
दूरीकृत तत्तु समस्तमेव
जनैश्चतुष्कीकरणे प्रवीणै ॥१६॥

भावार्थ—इस वर्ष तडाग में जो नया जल आया, उसे चतुष्की खोदनेवाले चतुर मनुष्यो ने बाहर निकाल दिया।

आशाचतुष्कागतमानवैनवै—
र्नानाचतुष्क्य खनिता जलाशये।
दृष्ट्या चतुष्कीयुत एप सोद्भुतो
नृणा पुमर्थोच्च चतुष्कदो भवेत् ॥१७॥

भावार्थ—चारों दिशाओं से आये हुए नये-नये लोगों ने जलाशय में अनेक चतुष्कियाँ खोदी। दर्शन करने पर चतुष्कियों से युक्त यह विस्मयकारक तडाग मनुष्यों को चारों प्रकार के पुरुषार्थ प्रदान करे।

ततश्चतुष्कीगणानि सूनाना
मृदा समूहा मनुजैर्वृषाद्यैः ।
सहस्रसख्यैः सुगत प्रणीता
मध्यस्य सेतो परिपूरणाय ॥१८॥

भावार्थ—इसके बाद, सेतु के मध्य भाग को भरने के लिये लोगों ने हजारों बैल आदि के द्वारा चतुष्कियों से निकली हुई मिट्टी के ढेरों को वहां सहज ही पहुंचा दिया।

मृदा गणे कल्पितपर्वतौघा
सेतौ विलीना क्वच नैव दृश्या ।
यथा पुरा राघवसेतुबन्धे
याता विलीनत्वमहो गिरीन्द्रा ॥१९॥

भावार्थ—प्राचीन काल में राम के सेतुबन्ध में बड़े-बड़े पर्वत जिस प्रकार विलीन हो गये उसी प्रकार इस सेतु में भी मिट्टी के ढेरों के बने पर्वत विलीन हो गये यहाँ तक कि वे बिलकुल नहीं दिखाई देते हैं।

शते सप्तदशे पूर्णे सप्तविंशतिनामके ।
वर्षे स्वजन्मदिवसे हेमहस्तिरथं शुभ ॥२०॥

भावार्थ—संवत् १७२७ में अपने जन्म दिवस के अवसर पर

हेम्नो विंशत्यग्रसहस्रतोलकनिर्मित ।
महादानविधानेन राजसिंहनृपो ददौ ॥२१॥

भावार्थ—राजसिंह ने हेमहस्तिरथ महादान विधिपूर्वक दिया, जो एक हजार बीस तोले सोने का बना था।

पूर्णे शते सप्तदशे सुवर्षे
सत्सप्तविंशत्यभिधे मुहूर्त्तः ।
आषाढमासेऽसितसच्चतुर्थ्यां
नृपेण नौस्थापनकस्य सृष्टः ॥२२॥

भावार्थ—राजसिंह ने नौका स्थापन का मुहूर्त निकलवाया सम्वत् १७२७ आषाढ कृष्णा चतुर्थी ।

जनस्तृतीयादिवसे तु नौका—
योग्यं जलं नेति कृते विचारे ।
आगामिवर्षे तु बृहस्पतिः स्या—
त्सिंहस्थितस्तन्नमुहू[र्त्तो]ऽपि ॥२३॥

भावार्थ—उक्त मुहूर्त के पूर्व तृतीया के दिन ऐसा सोचने लगे कि वर्तमान में नौका तैराने योग्य जल नहीं है । आगामी वर्ष बृहस्पति के सिंहराशि पर रहने से मुहूर्त नहीं मिल सकेगा ।

नायोत्र वर्षेऽस्ति तडाग कार्ये
मुख्यस्तु राणावतरामसिंहः ।
तदोक्तवानस्ति हि चोकडीनां
मध्ये जलं क्षेप्यमिहाप्यदम ॥२४॥

भावार्थ—इस वर्ष नौका तैराने का दूसरा शुभ मुहूर्त भी नहीं आता है । तब तडाग के काम में आगे रहने वाला राणावत रामसिंह बोला कि चौकडियों[१] में जल भरा हुआ है । उनमें और जल भर कर

नौकामुहूर्त्तोऽस्तु महापुरोधा
गरीबदासाभिध उक्तवान्च
अग्रे प्रभोरेव जना विचारं
कुर्वन्ति राजन्निति वा महान्त ॥२५॥

---

१ चौकडी=चतुष्की ।

भावार्थ—नौका-मुहूर्त साधा जाय। इसके बाद बडे पुरोहित गरीबदास ने कहा कि हे राजन्! स्वामी के आगे बड बडे लोग इस प्रकार विचार कर रहे हैं।

आश्चर्यमेषा मम भाति चित्ते
स्यात्कार्यमासीत्सुखवान्नृपस्तत्।
श्रुत्वा द्विजा वारुणसूक्तमन्त्रान्
जप्तु स विद्वानदिशत्पुरो[धा] ॥२६॥

भावार्थ—इसका मुझे आश्चर्य है। लेकिन मेरा मन कहता है कि यह कार्य तो होगा। पुरोहित के वचन सुनकर राजसिंह को सुख हुआ। विद्वान् पुरोहित ने तब वारुणसूक्त के मन्त्रो का जप करने के लिये ब्राह्मणो को आदेश दिया।

शृंगारपूर्णा प्रविधाय नौका
मुहूर्तमागामिमुवासरे तु।
नौकाधिरोहस्य मुदा विधातु
कृतप्रतिज्ञ नृपराजसिंह ॥२७॥

भावार्थ—नौका सजाकर राजसिंह ने प्रसन्नता से आगामी शुभ दिन में नौकाधिरोहण का मुहूर्त साधने की प्रतिज्ञा की। उसे इस प्रकार तयार

समीक्ष्य शक्रोपि सचिंत एवा—
भवत्तदस्मिन्समये मया चेत्।
क्रियेत वृष्टिर्न तदा ममैव
दोष वदिष्यति जना समस्ता ॥२८॥

भावार्थ—देखकर इन्द्र को भी चिन्ता हुई कि यदि मैंने इस समय वृष्टि नहीं की तो समस्त मनुष्य मेरा ही दोष बतलावेंगे।

इन्द्रात्प्रभुत्व त्विति पद्यपाठ
त्रिलोकनार्यैति समाश एप ।
पूर्णास्य कार्येति मया प्रतिना
रक्ष्या द्विजानामपि सुप्रतिष्ठा ॥२६॥

भावार्थ—उसने सोचा—इन्द्रात्प्रभुत्वम् तथा 'यह राजा मेरा ही प्रभु है इस बात को ध्यान में रखकर मुझे उसकी प्रतिना पूरी करने में सहायक होना चाहिये। साथ ही ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा को भी बचाना चाहिये।

ततस्तृतीयादिवसे द्वितीये
यामे ववर्षु जलदा मुहूर्त ।
नौकाधिरोहं चकार भूपो
मद विनीन स्थितशक्रतुल्य ॥३०॥

भावार्थ—इसके बाद तृतीया के दूसरे पहर में वर्षा हुई पृथ्वीपति ने नौकाधिरोहण का मुहूर्त किया। उस समय उसकी शोभा आकाश गंगा में नौका पर चढ़े हुए इन्द्र के समान थी।

उक्त जनै कर्तुमय यदेव
समुद्यतस्तत्परमेश्वरोत्र ।
करोति चाग्र सफल सुकार्यं
भविष्यतीत्यस्य तथाभवत्तत् ॥३१॥

भावार्थ—तब लोगो ने कहा कि राजसिंह जिस काम को करने के लिये तैयार होता है भगवान् उसे आगे होकर पूर्ण करता है। जिस प्रकार इसके सत्काम पहले सफल हुए हैं उसी प्रकार भविष्य में भी होंगे।

पूर्णे शते सप्तदशे सुवर्षे—
प्टाविंशतिभ्राजितनामधेये ।
राकातिथौ नालनिमुद्रण द्राक्
ज्येष्ठे पुन सूनवरनृपोत्तया ॥३२॥

भावार्थ—संवत् १७२८ के ज्येष्ठ की पूर्णिमा के दिन नृपति की आज्ञा से सूत्रधारों ने नाले को तत्काल मूंद दिया।

शते सप्तदशे पूर्णे एकोनत्रिंशदाह्वये।
वर्षे विधुग्रहे माघे दानं कल्पलतात्मकं ॥३३॥

भावार्थ—संवत् १७२९ के माघ महीने में चन्द्रग्रहण के अवसर पर राजसिंह ने कल्पलता नामक दान

हेम्नः सार्द्धशतद्वयपलैः सृष्टं ददौ तथा।
हेम्नस्त्वशीत्यग्रशततोलकैः परिकल्पितैः ॥३४॥

भावार्थ—दिया, जो दो सौ पचास पल सोने का बना था। इसी प्रकार एक सौ अस्सी तोले सोने के बने

हलैस्तु पंचभिर्युक्तं पंचलांगलनामकं।
भावलीग्रामसंयुक्तं महादानं ददौ नृपः ॥३५॥

भावार्थ—पाँच हल और उनके साथ भावली नामका एक गाँव रखकर 'पंचलांगल' महादान दिया।

अष्टाविंशत्यग्रदशशततोलकसंमितिः।
हेम्नः समभवद्दिव्यदानयोरनयोरिह ॥३६॥

भावार्थ—इन दो महादानों में एक हजार अट्ठाईस तोले सोना लगा।

पूर्णे शते सप्तदशे सदेको—
नत्रिंशदाख्याब्दमुखे फाल्गुनेत्र।
कृष्णोत्तमैकादशिकादिने वा
शुभे भवानीगिरिपार्श्वदेशे ॥३७॥

भावार्थ—संवत् १७२९ फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन भवानीगिरि के पार्श्व देश में

सत्सगिकार्यस्य तु मुख्य सेतौ
नृपो मुहूर्त्तं कृतवान्कृतीन्द्र ।
श्लक्ष्णोद्वृत्तं पाडरवर्ण[युक्तं]
सुधाधिसिक्तं ह ढसधिवधे ॥३८॥

भावार्थ—मुख्य सेतु पर राजसिं० ने सगिकाय का मुहूर्त करवाया। पत्थर बड-बडे चिकने और सफेद रग के थे। उनकी जोडो में चूना भरकर उन्हें मजबूत बनाया जाने लगा।

महोपलैं देशलसूत्रधारैं—
विस्तीयमाणे किल सगिकार्ये ।
प्रतोदये सगिनि कार्यवर्ये
नृपस्य चित्त सुखसगि जात ॥३६॥

भावाय—इस प्रकार चतुर सूत्रधारों के काम करते रहने पर वह सगिकार्य पूरा हो गया। उसके पूण होने पर राजसिंह का मन भी सुख से पूण हो गया।

शते सप्तदशेतीते एकोनत्रिंशदाह्वये ।
ज्येष्ठस्य शुक्लसप्तम्या राजसिंहो महीपति ॥४०॥

भावाय—सवत् १७२६ ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी को पृथ्वीपति राजसिंह ने

एकलिंगालये इन्द्रसर आख्ये जनाशये ।
ससोपाने जीणसेतौ प्रतोलीना चतुष्टय ॥४१॥

भावाय—एकलिंगजी के मदिर के इन्द्रसर नामक जनाशय पर जिसके सोपान और सेतु जीण हो गये थे, चार प्रतोलियाँ एव

व्यधात्सुवप्र सत्काय सुशिलागणरजित ।
अष्टादशसहस्राणि रूप्यमुद्रावलेरिह ॥४२॥

भावाय—पत्थरों की सुदर और सुदृढ दीवार बनवाई। इस काय में अठारह हजार रुपये

लग्नानि राणवीरोक्त्या प्रशस्तिर्निमिता मया ।
श्रुत्वा ता स ददावाज्ञा शिलाया लिखनाय मे ॥४३॥

भावार्थ—व्यय हुए । महाराणा के आदेश से मैंने एक प्रशस्ति की रचना की जिसे सुनकर उसने उसे शिला पर खुदवाने की मुझे आज्ञा दी ।

इति श्रीराजप्रशस्तिनाममहाकाव्ये रणछोडभट्टरचिते
दशम[ ] सग ॥

एकादश सर्ग

[बारहवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नम ॥

सेतोर्मिति पचशतानि दैर्घ्ये
मुख्यस्य वै पचदशोत्तराणि ।
तले गजाना च शतानि पच
सैकाशीति प्र मतानि मूर्ध्नि ॥१॥

भावार्थ —मुख्य सेतु की लबाई नीव में पाच सौ पन्द्रह और सिरे पर पाँच सौ इक्यासी गज है ।

विस्तरे पचपचाशमिता निम्नभितौ गजा ।
दशोपर्युदये मति द्वाविशतिमिता क्षितौ ॥२॥

भावार्थ —उसकी चौडाई नीव में पचपन और सिरे पर दस गज है । ऊँचाई में वह बाईस गज

निम्नाया पचयुविंशद्दूद्दर्वं तत्र क्रम वदे ।
भूम्यूद्दर्वमाष्टगजक पीठेमेरोध्दयुगज ॥३॥

भावार्थ —नीव में तथा पैतीस गज सिरे पर है । इसमें जो क्रम है वह इस प्रकार है—पृथ्वी के ऊपर आठ गज का पीठ और डेढ गज की

मेखलात्रयमान त्वासार्द्धंद्वात्रणमदगजा ।
त्रिलकत्रयमग्रेय त्रयोदशगजावधि ॥४॥

भावार्थ —तीन मेखलाएँ। इनके ऊपर साढ़े बारह गज के तीन तिलक। इसके बाद तेरह गज के

चत्वार मगिकायंस्य स्थरा एकस्थर प्रति।
सोपानवक त्वेर पट्त्रिशत्प्रमिति स्फुटा ॥५॥

भावार्थ —चार स्थर, जहाँसगि नाय हुआ है। प्रत्येक स्थर में नौ सोपान हैं। इस प्रकार कुल सोपान छत्तीस हैं।

सोपानानामित्युदये पचत्रिशद्गजैर्मिति।
सप्तपचाशदित्येव गजा सर्वोदयास्थितौ ॥६॥

भावार्थ —ऊचाई का यह योग पतीस गज हुआ और इस प्रकार मुख्य सेतु की सपूण ऊचाई सत्तावन गज हुई।

अथ वुरिजकोष्ठाना कोष्ठे प्रासाददिक्स्थिते।
दर्घ्येगजास्तु पचाशन्निर्गमे पचविशति ॥७॥

भावार्थ—वहाँ तीन बुर्जों वाले कोष्ठ हैं। प्रासाद की ओर बने हुए कोष्ठ की लबाई पचास और निगम पच्चीस गज है।

सप्तपचसप्ततिर्वृत्ते त्रिशदेवोदये गजा।
गभकोष्ठ लबताया पचसप्तनिका गजा ॥८॥

भावार्थ —उसका घेरा पचहत्तर और ऊँचाई तीस गज की है। मध्य का कोष्ठ लबाई में पचहत्तर

सार्द्धसप्तत्रिंशा निगमे वत्तरूपके।
शत सार्द्ध द्वादशक गजाना च तथोदये ॥९॥

भावार्थ —और निगम में साढे सैंतीस गज है। उसका घेरा एक सौ साढ़े बारह तथा ऊँचाई

पचत्रिंशद्‌गजा कोष्ठ तृतीय पूर्वकोष्ठवत् ।
पचचत्वारिंशदग्रशनमान गजा मृद ॥१०॥

भावार्थ —पैंतीस गज है। तीसरा कोष्ठ प्रथम कोष्ठ के समान है। मिट्टी के भराव का प्रमाण एक सो पैंतालीस गज का है।

भृतो सेतोस्तु पाश्चात्यभागे प्रोक्ताग्नि लवता ।
गजसप्तशतीमाना विस्तारे निम्नभूतले ॥११॥

भावार्थ—सेतु के पिछले भाग की लबाई सात सौ गज बताई गई है। नाव में उसकी चौड़ाई

गजा अष्टादशवाद्ध्व पचैवमुदये तथा ।
अष्टाविंशतिमस्यास्तु सर्वा सेतोरिय स्थिति ॥१२॥

भावार्थ—अठारह और ऊपर पाँच गज है तथा ऊचाई अट्ठाईस गज है। सेतु की सपूर्ण स्थिति इस प्रकार है।

षट्‌त्रिंशदुर्भिमितिशोभमाना
सोपानमाला महती हि सेतो ।
विभाति कोष्ठत्रितय तदेत-
द्‌भूपालवनकारि नून ॥१३॥

भावार्थ—महा सेतु की सोपान-माला, जिसमें छत्तीस सोपान हैं सुशोभित है। इसी प्रकार यहाँ ये तीन कोष्ठ शोभा पा रहे हैं जो भूपालों को सुरक्षा एव आश्रय देन वाले हैं।

धर्मांबुधो तत्र महास्मृतीना—
मुपस्मृतीना विदधत्सुसग ।
वेदत्रय वात्र करोति वास
कलिप्लुता म्लेच्छभुव विमुच्य ॥१४॥

भावार्थ—'धर्मसिन्धु' में महास्मृतियों और उपस्मृतियों के साथ तीन वेद विद्यमान हैं। धर्म के इस सिन्धु राजसमुद्र पर भी तीन वेद [चबूतरे] सुशोभित हैं जो मानों म्लेच्छों से कलुषित हुई पृथ्वी को छोड़कर यहाँ आ गये हैं।

राजमंदिरदिश्यस्ति स्थानं तु चतुरस्रकं।
सेतौ तत्राथवर्णाख्यो वेदस्तिष्ठति मन्त्रवान् ॥१५॥

भावार्थ—राजमंदिर की दिशा में सेतु पर जो चौकोर स्थान है, वहाँ मन्त्र-युक्त अथर्वण नामक चतुर्थ वेद [चबूतरा] विद्यमान है।

जलहट्टमयं तत्र शोभतेऽरहट्टकं।
यद्राजमंदिराख्येऽस्मिन् दुर्गे वाप्यां जलाकं ॥१६॥

भावार्थ—यहाँ प्रचुर जल बहानेवाला एक रेंहट है जिससे 'राजमंदिर' दुर्ग की वापी में जल पहुंचाया जाता है।

आस्ते नवचतुष्कीयुङ्मंडपं त्वत्र सुंदरं।
जलदर्शिगवाक्षात्कमतिचित्रकरं नृणां ॥१७॥

भावार्थ—यहाँ नौ चौकियों वाला एक सुन्दर मंडप है। उसमें एक गवाक्ष है, जिससे राजसमुद्र का जल देखा जाता है। वह मनुष्यों को विस्मय में डालता है।

महासेतौ सगिकायवर्ये विजयते परं।
युक्तं नवचतुष्कीभी राजमंडपयुग्मकं ॥१८॥

भावार्थ—महासेतु पर जहाँ सुन्दर सगिकाय हुआ है, नौ चौकियों वाले दो राजमंडप हैं। वे अति उत्कृष्ट हैं।

नवखंडस्थलोकानां दर्शनाच्चित्रकारकं।
षट्चतुष्कीविलसितमेकं वा भाति मंडपं ॥१९॥

भावार्थ—उन्हें देखकर नवों खंडों के लोग आश्चर्य करते हैं। यहाँ एक मंडप छह चौकियों वाला भी है।

पचत्रिशद्गजा कोष्ठ तृतीय पूर्वकोष्ठवत् ।
पचचत्वारिंशदग्रशनमान गजा मृद ॥१०॥

भावार्थ —पैंतीस गज है। तीसरा कोष्ठ प्रथम कोष्ठ के समान है। मिट्टी के भराव का प्रमाण एक सौ पैंतालीस गज का है।

भृतो सेतोस्तु पाश्चात्यभागे प्रोक्ताग्नि लबता।
गजसप्तशतीमाना विस्तारे निम्नभूतले ॥११॥

भावार्थ —सेतु के पिछले भाग की लबाई सात सौ गज बताई गई है। नीव में उसकी चौडाई

गजा अष्टादशवोद्ध्व पचैवमुदये तथा ।
अष्टाविंशतिसस्यास्तु सर्वा सेतोरिय स्थिति ॥१२॥

भावार्थ —अठारह और उपर पाँच गज है तथा ऊचाई अट्ठाईस गज है। सेतु की सपूर्ण स्थिति इस प्रकार है।

षट्त्रिंशदुर्यग्मितिशोभमाना
सोपानमाला महतो हि सेतो ।
विभाति कोष्ठत्रितय तदेत-
द्भूपालवनकारि नून ॥१३॥

भावार्थ —महा सेतु की सोपान-माला, जिसमें छत्तीस सोपान हैं सुशोभित है। इसी प्रकार यहाँ ये तीन कोष्ठ शोभा पा रहे हैं जो भूपालो को सुरक्षा एव आश्रय देने वाले हैं।

धर्मांबुधौ तत्र महास्मृतीना—
मुपस्मृतीना विदधत्सुसग।
वेदत्रय वात्र करोति वास
कलिप्लुता म्लेच्छभुव विमुच्य ॥१४॥

भावार्थ—'धर्मसिन्धु' में महास्मृतियों और उपस्मृतियों के साथ तीन वेद विद्यमान हैं। धर्म के इस सिन्धु राजसमुद्र पर भी तीन वेद [चबूतरे] सुशोभित हैं, जो मानों म्लेच्छों से कलुषित हुई पृथ्वी को छोडकर यहाँ आ गये हैं।

राजमन्दिरदिश्यस्ति स्थानं तु चतुरस्रकं।
सेतौ तत्राथवर्णाख्यो वेदस्तिष्ठति मन्त्रवान् ॥१५॥

भावार्थ—राजमन्दिर की दिशा में सेतु पर जो चौकोर स्थान है, वहाँ मन्त्र-युक्त अथवर्ण नामक चतुर्थ वेद [चबूतरा] विद्यमान है।

जलहट्टमयं तत्र शोभतेऽत्रारहट्टकं।
तद्राजमन्दिराख्येऽस्मिन्दुर्गे वाप्यां जलायकं ॥१६॥

भावार्थ—यहाँ प्रचुर जल बहानेवाला एक रँहट है, जिससे 'राजमन्दिर' दुर्ग की वापी में जल पहुचाया जाता है।

आस्ते नवचतुष्कीयुङ्मण्डपं त्वत्र सुन्दरं।
जलदर्शिगवाक्षात्तमतिचित्रकरं नृणां ॥१७॥

भावार्थ—यहाँ नौ चौकियों वाला एक सुन्दर मण्डप है। उसमें एक गवाक्ष है, जिससे राजसमुद्र का जल देखा जाता है। वह मनुष्यों को विस्मय में डालता है।

महासेतौ सङ्गिकायवर्ये विजयते परं।
युक्तं नवचतुष्कीभी राजमण्डपयुग्मकं ॥१८॥

भावार्थ—महासेतु पर, जहाँ सुन्दर सङ्गिकाय हुआ है नौ चौकियों वाले दो राजमण्डप हैं। वे अति उत्कृष्ट हैं।

नवखण्डस्थलोकानां दर्शनाच्चित्रकारकं।
षट्चतुष्कीविलसितमेकं वा भाति मण्डपं ॥१९॥

भावार्थ—उन्हें देखकर नवो खण्डों के लोग आश्चर्य करते हैं। यहाँ एक मण्डप छह चौकियों वाला भी है।

पश्चाद्भागे महासेतोर्मंडपत्रितय तथा।
सभामडपमेव हि महासेतोरिय स्थिति ॥२०॥

भावार्थ—महासेतु के पिछले भाग म तीन मण्डप और एक सभामडप है। महासतु का यह स्वरूप है।

निवसेतुप्रमाण तु वक्ष्म मि क्षितिपाल ते।
दैर्घ्ये गजाना द्वात्रिंशदग्र शतचतुष्टय ॥२१॥

भावार्थ—हे पृथ्वीपति ! अब मैं आपको निवसतु का प्रमाण बताता हू। लबाई में वह चार सौ बत्तीस गज है।

विस्तारे पचदशव निम्नभूमौ गजास्तथा।
पचोर्द्ध्वमुदये चत्र दशाथो भद्रसेतुके ॥२२॥

भावार्थ—नीव में उसकी चौड़ाई पन्द्रह गज और सिर पर पाँच गज है। ऊँचाई में वह दश गज है। इसके बा भद्रसेतु की

चतुश्चत्वारिंशदग्र गजाना दैर्घ्यत शत।
विस्तारे द्वादश गजास्तले पचैव मस्तके ॥२३॥

भावार्थ—लबाई एक सौ चौवालीस गज है। नीव में उसकी चौड़ाई बारह तथा सिरे पर पाँच गज है।

त्रयोदशोदये भद्र सुभद्र चतुरस्रक।
कोष्ठक विंशतिगजा मृद्भृताविति सस्थिति ॥२४॥

भावार्थ—भद्रसेतु ऊँचाई में तेरह गज है वहाँ चौकोर सुदर कोठा है जिसमें बीस गज मिट्टी का भराव है। भद्रसेतु की यह स्थिति है।

काकरोली ग्रामसेतौ दैर्घ्ये निम्नधरातले।
पचाशद्युक्पचशती गजाना मूर्ध्नि सप्त वै ॥२५॥

भावार्थ—कांकरोली के सेतु की लंबाई नींव में पाँच सो पचास और सिरे पर सात

शतानि षट्पंचाशच्च पचत्रिंशच्च विस्तरे ।
निम्नभूमौ सप्त गजा मस्तके तूदये तथा ॥२६॥

भावार्थ -सौ छप्पन गज है । उसकी चोडाई नींव में पैंतीस और सिरे पर सात गज है । उसकी ऊँचाई

निम्नभूमौ सप्तदश गजा उपरि वा भुव ।
गजा अष्टत्रिंशदेव कोष्ठकत्रितय त्विह ॥२७॥

भावार्थ—नींव मे सत्रह और पृथ्वी के ऊपर अड़तीस गज है । यहाँ तीन कोष्ठ है ।

सभामडपदिक्सस्थकोष्ठेऽष्टाविंशतिर्गजा ।
विस्तारे निगमे माने चतुर्दश तथोदये ॥२८॥

भावार्थ—सभामडप की ओर बना हुआ कोष्ठ चौड़ाई में अट्ठाईस तथा निर्गम में चौदह गज है । उसकी ऊँचाई

सार्द्धं षट्त्रिंशदेवाथ सुभद्रे मध्यकोष्ठके ।
षट्त्रिंशद्विस्तरे पञ्चदश निगमने गजा ॥२९॥

भावार्थ—साड़े छत्तीस गज है । इसके बाद मध्य के कोष्ठ की चौड़ाई छत्तीस और निगम पन्द्रह गज है ।

उदयेऽष्टत्रिंशदेव तृतीये पूर्वदिक्स्थिते ।
कोष्ठेऽष्टाविंशतिर्माने विस्तारे निगमे गजा ॥३०॥

भावार्थ—उसकी ऊँचाई अड़तीस गज है । पूर्व की ओर बने कोष्ठ की चौड़ाई अट्ठाईस और निगम

द्वादशैवोदये सप्तत्रिंशदेव मृदा मतौ।
पचचत्वारिंशदग्र गजाना शतक तत ॥३१॥

भावार्थ—बारह गज है। उसकी ऊंचाई सैंतीस अत्र है। मिट्टी का भराव एक सौ पैंतालीस गज है।

पाश्चात्यभागे सेतोस्तु गजाना तु सहस्रक।
दर्घ्ये विस्तारत पचदश निम्नक्षितौ गजा ॥३२॥

भावार्थ—सेतु के पीछे के भाग की लबाई एक हजार गज है उसकी चौड़ाई नींव में पन्द्रह और

दश मूद्ध न्युदये स्वद्य द्वाविंशतिमिता गजा।
अत्रोदयस्तु भवति अष्टत्रिंशदगजावधि ॥३३॥

भावार्थ—सिरे पर दस गज है। ऊंचाई में वह भाज बाईस है। वहे उसकी ऊंचाई अड़तीस गज होती है।

अयोध्य रेणुकाक्षेत्रव्रजेभ्यो म्लेच्छभीतित।
भात्यागत्याध्यास्य सेंपस्त्रिरामौ कोष्ठकत्रये ॥३४॥

भावार्थ—म्लेच्छों के भय के कारण अयोध्या, रेणुका और व्रज से आकर तीनों राम [राम, परशुराम और बलराम] अध्यारम स्थाति इन तीनों कोष्ठों में निवास करते हैं।

भूतौ जीर्णशिवनिलयमागत स्थापित हि तत्।
मार्गोस्य स्थापितस्तस्य दर्शन जायते सदा ॥३५॥

भावार्थ—भराव में एक प्राचीन शिव मन्दिर आ गया। उसकी स्थापना की गई और उसके लिये मार्ग बनाया गया। उसके दर्शन हमेशा होते हैं।

रामसेतौ यथा भाति [श्री] रामेश्वरमंदिर।
तत्तुल्य काकरोलीस्यसेतौ भाति शिवालय ॥३६॥

भावार्थ—राम के सेतु पर जिस प्रकार रामेश्वर का मन्दिर सुशोभित है, उसी प्रकार, कांकरोली के सेतु पर यह शिवालय।

कांकरोलीस्थसेत्वग्रभागे वा मडपस्त्रयः।
चतु स्तभा विशोभते सभामडप एकक ॥३७॥

भावार्थ—कांकरोली के सेतु के अगले भाग पर तीन मडप हैं, जिनमें चार-चार स्तम्भ हैं। वहां एक सभामडप भी है।

कांकरोलीस्फुरत्सेतोरग्रे तूपरि भूभृत ।
शिलाकार्यं कृत तत्र दैर्घ्ये गजशतत्रय ॥३८॥

भावार्थ—कांकरोली के सुदर सेतु के आगे जो पवत है, उसपर पत्थर जडे गये हैं। वहां उसकी लबाई तीन सौ गज है।

विस्तारोदययो पच गजा पचाघनाशक ।
गोघट्टपार्श्वे दैर्घ्येऽत्र चतु पचाशदुत्तमा ॥३९॥

भावार्थ—उसकी चौडाई और ऊंचाई पांच गज है। वह पांच प्रकार के पापों का नाश करनेवाला है। गोघाट के पार्श्व में उसकी लबाई चौवन गज

गजा दशैव विस्तारे उदये तु त्रयो गजा।
गोघट्टस्य गजा दैर्घ्ये चतु पचाशदेव तु [॥ ४० ॥]

भावार्थ—और चौडाई दस गज है। ऊंचाई में वह तीन गज है। गोघाट की लबाई चौवन गज है।

चतु पचाशदेवात्र विस्तारे घट्टभूतले।
उदये तु गजा पच भात्येकमिह मडप ॥४१॥

भावार्थ—उसकी चौडाई भी चौवन गज है। नींव में उसकी ऊंचाई पांच गज है। वहां एक मडप सुशोभित है।

मा[सो]टियाग्रामपार्श्वे सेतोर्दैर्घ्यो गजावल ।
द्व सहस्रे ष्टऽयष्टिश्च विस्तारेऽष्टादश स्फुट ॥४२॥

भावार्थ—मासोटिया गाँव क पास जो सेतु है उसकी लवाई दो हजार अडसठ गज है। उसकी चौडाई

तने मूद्धि न गजा सप्त चतुर्विंशति सद्गजा ।
उदये कोष्ठकद्वयमत्राष्टास्त्रमथकक ॥४३॥

भावार्थ—नीव मे अठारह और सिरे पर सात गज है। ऊचाई में वह चौबीस गज है। यहाँ दो कोष्ठ हैं। उनमे से पहला कोष्ठ अष्टकोण है।

गजा अष्टाविंशतिस्तु तत्र दर्घ्येय निगमे ।
चतुर्दशोदये सति चतुर्विंशतिसद्गजा ॥४४॥

भावार्थ—वह लवाई में अट्ठाईस निगम में चौदह और ऊँचाई में चौबीस गज है।

सप्तागस्यापि राज्यस्य धर्मस्यात्रास्ति सुस्थिति ।
राणराज्ये ज्ञापकाष्टरेखाक्त किमु कोष्ठक ॥४५॥

भावार्थ—महाराणा के राज्य में राज्य के सातों अगों की तथा धर्म की अच्छी स्थिति है। मानो इस बात का सूचक आठ रेखाओं से युक्त यह कोष्ठ है।

द्वितीयमद्ध चद्राख्य दर्घ्ये विंशतिसद्गजा ।
विस्तारे दश मत्यत्र द्वादशैवोदय गजा ॥४६॥

भावार्थ—दूसर कोष्ठ का नाम अद्ध चद्र है। उसकी लबाई बीस और चौडाई दस गज है। ऊँचाई मे वह बारह गज है।

अर्द्धचद्रधरश्रीमद्रुद्रक्रीडास्थल हि तद्
पचचत्वारिंशदग्रशतमाना मृदो भृतौ [॥४७॥]

भावार्थ—यह कोष्ठ अद्ध चद्र को धारण करनेवाला शिव की क्रीडा का स्थान है। मिट्टी के भराव का प्रमाण एक सौ पैंतालीस

गजा पाश्चात्यभागे तु सेतोर्दैर्घ्ये त्रयोदश ।
शतान्येव गजाना तु निम्नभूमौ तथोपरि ॥४८॥

भावार्थ —गज है । पिछले भाग मे सेतु की लबाई नीव में तेरह सौ गज है । इसी प्रकार सिरे पर

गजा दशव विस्तारे उदये पच वा गजा ।
आसोटियास्थसेतवग्रभागे स मडपत्रय [॥४६॥]

भावार्थ —उसकी चौडाई दस और ऊँचाई पाँच गज है । आसोटिया के सेतु के अग्र भाग पर तीन मडप हैं ।

वांसोलग्रामपाश्वस्थसेतौ दैर्घ्ये गजावले ।
चतुर्विशतिसयुक्तसुद्वादशशतानि हि ॥५०॥

भावार्थ —बासोल गाँव क पास वन सेतु की लबाई बारह सौ चौबीस गज है ।

विस्तारेऽष्टादशगजास्तले पचैव मस्तके ।
त्रयादशोन्य कोष्ठत्रयमाद्य त्र कोणगे ॥५१॥

भावार्थ —उसकी चौडाई नीव मे अठारह और उपर पाँच गज ह । ऊँचाई में वह तरह गज है । यहाँ तीन कोष्ठ है । कोण में स्थित पहले कोष्ठ का

गजा विंवशतिरत्रात्र दघ्यविस्तारयो समा ।
द्वादशत्रोदये त्वेतच्चतुरस्र सुभद्रक ॥५२॥

भावार्थ —लबाई और चौडाई बीस-बीस गज हैं । उँचाई में वह बारह गज ह । यह चोकोर और सुदर है ।

सुभद्रद साऽरहट्ट सारहट्ट तदौचिती ।
मध्यकोष्ठे द्वादशत्र दघ्यनिगमयोगजा ॥५३॥

भावार्थ —यहाँ सामवर एक रहट है । वह निरतर जल देता रहता है । मध्य के कोष्ठ की लबाई और निगम बारह गज है ।

उदये मत्तश्च वा अर्द्धचंद्राकृति त्विद।
यद्दर्शनादद चंद्रप्राप्तिर्नृत्त द्विपा गले ॥५४॥

भावार्थ—ऊंचाई सत्रह गज है। वह अर्द्ध चन्द्राकार है। इसके दर्शन से मनुष्यों के मन में आह्लाद का भाव उत्पन्न होता है।

अष्टास्रकोष्ठ कमलबुरिजाह्वयमत्र तु।
दैर्घ्यविस्तारयोस्त्रिंशद्गजा नव तत्रोदये ॥५५॥

भावार्थ—इसमें तीसरा कोष्ठ अष्टकोण है। उसका नाम कमलबुरिज है। लंबाई और चौड़ाई में वह तीस गज है। उसकी ऊंचाई नौ गज है।

अत्रोज्ज्वलोपललसन्मंडप सेतुमंडन।
इष्टाष्टपुत्रिकासृष्टक्रीडादृष्टिमनोहर ॥५६॥

भावार्थ—यहां एक सुन्दर मंडप है जो सफेद पत्थर का बना है। वह सेतु का अलंकार है। उसमें क्रीडा करती हुई जो सुन्दर आठ पुत्तलिकाएँ हैं वे दृष्टि और मन को हरनेवाली हैं।

मत्वा[?]रा[ज] समुद्र हि रत्नाकरमिहाम्बुनि।
स्थित्वाष्टपटटरानीस्ता पश्यन् किं रमते हरि ॥५७॥

भावार्थ—राजसमुद्र को रत्नाकर समझकर मानों वे पुत्तलिका रूपी आठ पटरानियाँ यहां जल में निवास कर रही हैं।

अत्र सेतोरग्रभागे राजते मंडपत्रय।
इति राजसमुद्रस्य वीरेंद्रोक्ता मया स्थिति ॥५८॥

भावार्थ—इस सेतु के अगले भाग में तीन मंडप सुशोभित हैं। हे वीरशिरोमणि राजसिंह! इस प्रकार मैंने राजसमुद्र की स्थिति का वर्णन किया है।

इति श्रीराजप्रशस्तौ ... वि...

द्वादशः सर्ग

[तेरहवीं शिला]

।। श्रीगणेशाय नम ।।

ओटा त्वेकात्र लम्बत्वे सार्द्धद्विशतसमिता ।
गज दश च विस्तारे सार्द्धैकसुगजोदया ।।१।।

भावार्थ—यहा पहली ओटा[1] की लबाई दो सौ पचास गज है। चौडाई दस गज है। ऊँचाई मे वह डेढ गज है।

ओटा द्वितीया विस्तारे दैर्घ्ये पूर्वसमोदये।
सार्द्ध द्विगजमानास्ति तृतीयौटा तु दैर्घ्यत ।।२।।

भावार्थ—दूसरी ओटा की लबाई और चौडई पहली ओटा के समान है। ऊँचाई म वह ढाई गज है। तीसरी ओटा की लबाई

गजत्रिशतमानास्ति विस्तरेत्र गजा दश।
उदये सगजद्व द्वा मडपत्रयमत्र हि ।।३।।

भावाथ—तीन सौ गज है। चौडाई दस गज है। ऊँचाई मे वह दो गज है। यहा तीन मडप हैं।

ओटात्रयमिद भाति यावद्गजसुविस्तर।
तावद्ग्रामगण नीरे पूर्णं वितनुते ध्रुव ।।४।।

---

१ ओटा=जलाशय का वह निर्धारित स्थान जिधर से जलाशय के निश्चित सीमा से अधिक पानी को बाहर निकाला जाता है।-परिवाह धावर, दीवार

भावार्थ साना गांव वहां तक अपना सम्पूर्ण चौड़ाई से बहती रहता है जहां से गांवों में पानी ले जाया जाता है।

माचणाग्रामसीम्न्यस्ति तटाकेंतलघुगिरि ।
शृंगम्य मडपा दृष्ट्या पश्चिमपदमप्पत्र ॥५॥

भावार्थ – मोरचणा गांव की सीमा मे पश्चिम में तड़ाग के अन्दर जो पहाड़ी है उसकी चोटी पर नव मडप है। दर्शन करने पर वह वरुण द्वारा मिलने वाले मनोरथ को पूर्ण करता है।

पट्स्तभा मडपास्त्यत्र गोष्ठो पल्यकसेवका ।
युवति मटपास्तत्रत्यक विशतिमडपा ॥६॥

भावार्थ —यहां छह स्तम्भो का एक मडप है। उसमे पयल्कसेवी सुरापी गोठ करते हैं। इस प्रकार ये इक्कीस मडप हुए।

ग्रामास्तडागत्रायाता सिवाली च भिगावदा ।
भाणो लुहाणा वासोल गुढलीत्यखिला इम ॥७॥

भावार्थ —सिवाली भिगावदा भाना लुहान बांसोल और गुन्ली ये गांव इस तड़ाग में सपूर्ण रूप से डूब गए हैं।

माचना च पसोंदश्च खडो छापरखेडिका ।
तासोल एपा ग्रामाणा सीमा मडावरस्य च ॥८॥

भावार्थ —मोरचणा पमू द खेडी छापरखेडी और तासोल इन गांवों की तथा मडावर की सीमा

तडागेत्रागता नद्यो गोमती तालनामयुक् ।
कैलवास्यनदी सिंधो गगाद्या विवशुयया ॥६॥

भावार्थ —इस सरोवर में डूबी है। जिस प्रकार गगा आदि नदियां समुद्र में गिरी हैं, उसी प्रकार राजसमुद्र में गोमती, ताल तथा केलवा की नदी।

काकरोलीलुद्राणाख्यमिवालीना जलाशया ।
निवानवापीकूपाश्च त्रिंशत्सरव्या इहागता ॥१०॥

भावार्थ—कांकरोली लुद्राण और सिवाली के जलाशय, निवान वापी एवं कूप, जिनकी संख्या तीस है, इस सरोवर में डूब गये हैं।

सर्वसेतुमितिर्दैर्घ्ये चतुःषष्टि शतानि च ।
त्रयोदशाग्राणि तथा गजानामपरं वदे ॥११॥

भावार्थ—संपूर्ण सेतु की लंबाई छह हजार चार सौ तेरह गज है। दूसरा प्रमाण इस प्रकार है—

श्रीराजसिंहनृपतेरग्रे गजधरै कृता ।
गालायोगेन दैर्घ्येऽष्टसहस्राणि गजावले ॥१२॥

भावार्थ—नृपति राजसिंह के आगे गजधरों ने इस सेतु की लंबाई को गाला-योग से आठ हजार गज सिद्ध किया है।

विश्वकर्मोक्तवानेव तडागानां तु लंबता ।
कृता या षट्सहस्रोद्यद्गजमानावधिः परा ॥१३॥

भावार्थ—विश्वकर्मा ने तो बताया है कि तडागों की सर्वाधिक लंबाई छह हजार गज होनी चाहिये।

तावत्संख्यामितं कोऽपि तडागं कृतवान्न वा ।
त्वया सप्तसहस्रोद्यद्गजलंबो जलाशयः ॥१४॥

भावार्थ—हे राजसिंह ! उतने लम्बे तड़ाग का निर्माण किसी ने करवाया अथवा नहीं पर आपने तो यह सात हजार गज लंबा जलाशय बनवाया है।

सेतुं कृत्वा विरचितो धर्मसेतुर्धरापते ।
श्रीरामसेतुप्रतिमं कीर्त्तिसेतुं प्रभाति ते ॥१५॥

भावार्थ—हे पृथ्वीपति ! इस सेतु का निर्माण कर आपने धर्म का सेतु बना दिया है। रामचन्द्र के सेतु के समान यह आपकी कीर्ति का सेतु है।

कोष्ठानि द्वादशात्रं तद्दृष्ट्या नृणां फलं भवेत् ।
पाठस्य द्वादशस्कंधयुक्तभागवतस्य सत् ॥१६॥

भावार्थ—यहाँ बारह कोष्ठ हैं। उनके दर्शन से लोगों को द्वादश स्कंधों वाली भागवत के पाठ का उत्तम फल प्राप्त हो।

एकविंशतिसंख्यानि मंडपानि तदीक्षणात् ।
एकविंशतिदुःखानामभावो भविनां भवेत् ॥१७॥

भावार्थ—यहाँ इक्कीस मंडप हैं। उनके दर्शन से प्राणी इक्कीस प्रकार के दुःखों से मुक्त हों।

चत्वारिंशदथाष्टयुक् समभवन्सेतौ महामंडपा-
स्तेष्वादौ बहुमूल्यवस्त्ररचिता सद्दारुसृष्टास्ततः ।
पाषाणैः ससुधाभरैर्विरचिताः केचित्तु तेषु स्थितः
स्वाज्ञां कार्यकृते दिशन्विजयते श्रीराजसिंहो नृपः ॥१८॥

भावार्थ—सेतु पर अड़तालीस बड़े-बड़े मंडप बने थे। उनमें से कुछ का निर्माण तो सर्वप्रथम बहुमूल्य वस्त्र से हुआ। कुछ उत्तम काठ के बने। इसके बाद कई मंडपों का निर्माण चूने-पत्थर से हुआ जिनमें रहकर नृपति राजसिंह काम-काज के संबंध में आज्ञा देता रहा।

वस्त्रकाष्ठाश्मसृष्टाष्टचत्वारिंशन्मितेषु हि ।
मंडपेष्ववशिष्टौ द्वौ शिलाकल्पितमंडपौ ॥१९॥

भावार्थ—वस्त्र काष्ठ एवं पाषाण के बने उन अड़तालीस मंडपों में से दो मंडप शेष रहे जो पत्थर के बने हैं।

तद्दर्शनकराणां स्याद्धनधान्यसुखं ध्रुवं ।
इति राजसमुद्रस्य प्रोक्ता सर्वा स्थितिर्मया ॥२०॥

भावार्थ—इन मंडपों का जो लोग दर्शन करेंगे, उन्हें धन-धान्य का चिर सुख प्राप्त होगा। यह मैंने राजसमुद्र की सपूर्ण स्थिति बताई है।

श्रीराणोदयसिंहेंद्र स्थानेस्मिन्कृतवान्पुरा।
सेतुं बद्धुं महायत्नं निष्फलं तदभूदिह ॥२१॥

भावार्थ—इस स्थान पर पहले महाराणा उदयसिंह ने सेतु बांधने का महान् प्रयत्न किया था। पर वह सफल नहीं हुआ।

ततो जलाशयं चक्रे श्रीमानुदयसागरं।
तत्राकरोत्सेतुबंधं सबंधं धर्मपद्धते ॥२२॥

भावार्थ—तत्पश्चात् उसने उदयसागर का निर्माण करवाया। वहाँ उसने सेतु बंधवाया जो धर्म पथ को जोड़नेवाला है।

अस्मिन्स्थले राजसिंहो राणेंद्रो राजराजवत्।
धनव्ययं वितन्वानः सेतुं चक्रे तदद्भुतं ॥२३॥

भावार्थ—इस जगह महाराणा राजसिंह ने कुबेर की तरह धन का व्यय कर सेतु का निर्माण करवाया जो आश्चर्यजनक है।

सेतोस्तु कर्त्ता रघुवंशकेतू
रामश्च राणोदयसिंहदेवः।
श्रीराजसिंहो नृपतिस्तथैव-
मन्यो न भूतो भविता न नास्ति ॥२४॥

भावार्थ—रघु-वंश केतु रामचन्द्र महाराणा उदयसिंह और नृपति राजसिंह सेतु के निर्माता हुए हैं। इसी प्रकार का कोई दूसरा व्यक्ति न तो हुआ न है और न होगा।

पूर्णे शत सप्तदशे गुणर्वे
, त्रिंशं मते भाद्र इहागता द्राक्।
वेतालमूतालजवाय ताल-
नाम्नी नदी तालगभीरनीरा ॥२५॥

भावार्थ—इसके बाद संवत् १७३० के भाद्रपद महीने में, अगाध जल से पूरित होकर ताल नामक नदी वायु के समान प्रचण्ड वेग से यहाँ अचानक आई और

सम्प्लावित नीरभरे पुर द्राक्
तया गृहाण्यत्र विनाशितानि।
चकार बंध नृपतिस्तदास्या
न्यायेन युक्त भुवि नीचगेय ॥२६॥

भावार्थ—तत्काल उसने यहाँ के मकानों को जल मग्न कर नष्ट कर दिया। पृथ्वीपर नदी नीचगामिनी कहलाती है। इस कारण राजसिंह ने इसे जो बाँधा है, यह न्याय-सम्मत है।

तथात्र वर्षे त्विष आगता द्राक्
निशीथकालेभिनवे तडागे।
श्रीगोमतीध यनदी जल वा
बभूव हस्ताष्टकमात्रमुच्च ॥२७॥

भावार्थ—इसी वर्ष आश्विन में आधी रात में अचानक गोमती नदी आई जिससे इस नवीन तडाग में केवल आठ हाथ पानी चढ़ा।

तद्रक्षित राणनृपेण गगा-
स्पर्धाविरीय भुवि वर्द्धमाना।
श्रीगगया सार्द्धमहो तुलार्थं
मत्वाग्रहाब्धौ न्यपतत्तडागे ॥२८॥

भावार्थ—महराणा ने उस जल को राजसमुद्र में रखा। पृथ्वी पर बहती हुई यह गोमती नदी गंगा से स्पर्द्धा करनेवाली है। उछलकर वह गंगा की समता पाने के लिये तड़ाग रूपी सागर में गिरी।

शते सप्तदशेतीते त्रिंशदाख्याब्दमाघके ।
पूर्णिमायां हिरण्यस्य पलपंचशतैं कृता ॥२६॥

भावार्थ—संवत् १७३० में माघ महीने की पूर्णिमा को, पांच सौ पल सोने का दा।

ददौ सुवर्णपृथिवीमहादानं विधानतः ।
श्रीराणाराजसिंहाख्य पृथ्वीनाथो महामना ॥३०॥

भावार्थ—'सुवर्णपृथ्वी म्हादान' महामना पृथ्वीपति राजसिंह ने विधिपूर्वक दिया।

अष्टाविंशतिसंख्यानि रूप्यमुद्रावलेरिह ।
सहस्राणि विलग्नानि महादानस्य भूपते ॥३१॥

भावार्थ—राजसिंह ने जो यह महादान किया उसमें अट्ठाईस हजार रुपये लगे।

दत्ताया कनकक्षितौ तु भवता विप्रेभ्य एषां गृहे
रुद्रं भिक्षुमवेक्ष्य भिक्षुकगणो दिग्दंतिनामष्टकं ।
हिंस्रो जंतुचयश्च विष्णुगरुडं नागव्रजो वेधसं
भूतौघो मघवंतमेवमहितो दूरं प्रयाति द्रुतं ॥३२॥

भावार्थ—हे राजसिंह ! जिन ब्राह्मणों को आपने सुवर्णपृथ्वी महादान दिया उनके घरों में अब [सुवर्णपृथ्वी दान में प्राप्त मूर्तियों के रूप में] भिक्षुक वेशधारी शिव आठ दिग्गज, विष्णु का गरुड ब्रह्मा और इन्द्र रहने लगे हैं जिन्हें देखकर क्रमशः भिखारी, घातक जन्तु सर्प भूत तथा शत्रु वहाँ से तत्काल दूर भाग जाते हैं।

दत्ताया कनकक्षितौ तु भवता विप्रेभ्य एषा गृहे
श्रीराणामणिराजसिंह सकल दुःख प्रनष्ट ध्रुव।
वह्नेः शीतभव तमोभवमिना मालिन्यज चाप्यते—
श्चद्रादग्रीष्मभव रजोजमनिलाच्चेंद्राच्च दुर्भिक्षज ॥३३॥

भावार्थ—[सुवर्णपृथ्वी महादान मे अग्नि, सूर्य, वरुण आदि देवताओं की मूर्तियां भी होती हैं। कवि उन्हे ध्यान मे रखकर कहता है।] हे महाराणा! ब्राह्मणों को सुवर्णपृथ्वी दान देकर आपने अग्नि सूर्य वरुण, चन्द्र वायु और इन्द्र के द्वारा उन ब्राह्मणों के घरों में क्रमश शीत अंधकार मालिन्य ग्रीष्म धूल और दुर्भिक्ष से उत्पन्न होने वाले सभी दुःखों को सदा के लिये नष्ट कर दिया है।

दत्ताया हेमपृथ्व्या प्रभुवर भवताद्द्विजेभ्यस्तु सर्व
कार्यं कुर्वन्त्यगर्वा निखिलसुरगृहे तदगृहे राजसिंह।
गोविंदो दुग्धदोग्धा पशुपतिरपि वा रक्षकः सत्पशूना
जीवो बालप्रपाठी रिपुगणविजये षण्मुख सम्मुखीभूत ॥३४॥

भावार्थ—हे स्वामिश्रेष्ठ राजसिंह! आपने जिन ब्राह्मणों को सुवर्णपृथ्वी महादान दिया उनके घरों में अब देवता लोग [सुवर्णपृथ्वी दान में प्राप्त देव मूर्तियाँ] गर्व रहित होकर सारा काम करते हैं ताकि उन ब्राह्मणों को सम्पूर्ण सुख मिले। जैसे—गोविन्द दूध दुहता है। शिव पशुओं की रखवाली करता है। बृहस्पति बालकों को पढाता है। इसी प्रकार शत्रुओं पर विजय पाने के लिये षडानन आगे आ पहुंचता है।

पूर्णेशन सप्तदशेब्द एवं—
त्रिंशन्मिते श्रावणशुक्लपक्षे।
सुपंचमीदिव्यदिने तडागे
जहाजसना विदधु सुनौका ॥३५॥

भावार्थ—संवत् १७३१ श्रावण शुक्ला पचमी के दिन सरोवर में बड़ी-बड़ी नौकाएं

लाहोरसद्गुजरसूरतिस्या
सत्सूत्रधारा वरुणस्य मध्ये ।
सभाद्वितीये जलधौ तु सेतु
द्रष्टुं सुहार्देन समागतास्य ॥३६॥

भावार्थ—लाहोर गुजरात और सूरत के सूत्रधारों ने तैराई । तब ऐसा दिखाई दिया मानों इस निरुपम समुद्र पर बने सेतु को देखने के लिये, राजसिंह की मित्रता के कारण वरुण की सभा आई हो ।

शते सप्तदशेतीत एकत्रिंशन्मितेब्दके ।
स्वजन्मदिवसे हेमपलपंचशतैः कृत ॥३७॥

भावार्थ—संवत् १७३१ में अपने जन्म-दिवस पर पाँच सौ पल सोने का बना

विश्वचक्र महादान विधिनादाच्च शक्रवत् ।
भूचक्रे राजसिंहोस्ति विश्वचक्रेस्य तद्यश ॥३८॥

भावार्थ—'विश्वचक्र' महादान, इन्द्र के समान राजसिंह ने, विधिपूर्वक दिया । राजसिंह भू-चक्र में विद्यमान है पर उसका यश विश्व-चक्र में व्याप्त है ।

दत्ते हाटकविश्वचक्र उचित विप्रेभ्य एषां गृहे
उच्चैर्याति लदर्भका निशि रविं धृत्वा विधुं वा दिने ।
तद्रात्रौ दिनमह्नि रात्रिरधुना कर्माणि कुर्युः कुतो
विप्रा धर्मकृता त्वया कथमयं स्थ्याप्योन धर्मः प्रभो ॥३९॥

भावार्थ—हे स्वामिन् ! ब्राह्मणों को सोने का 'विश्वचक्र प्रदान कर आपने ठीक किया । लेकिन अब उन ब्राह्मणों के घर उनके बालक रात में सूर्य को और दिन में चन्द्र को [विश्वचक्र' दान में प्राप्त सूर्य-चन्द्र की मूर्तियों को]

पकड़कर दौड़ता है, तब रात दिन में और दिन रात में बदल जाता है। ऐसी स्थिति में ब्राह्मण अपने कर्म करें तो कैसे ? हे राजन् ! आप धर्मात्मा हैं। इस विषम अवस्था में आप धर्म की स्थापना कैसे करेंगे ?

सौवर्णे विश्वचक्रे क्षितिधर भवता दत्त एषा द्विजेभ्यो
गेहेष्वेकत्र वास विदधति विबुधास्तत्स्थिता वाहनानि।
देवाना तत्स्थितानि स्फुटमिभवदनो धेनवो राहुरिंदु
दूर्यो वा शेष आखु सुरगज इति वा शम्भुनंदी विचित्र ॥४०॥

भावार्थ —हे पृथ्वीपति ! जब आपने ब्राह्मणों को सोने का विश्वचक्र प्रदान किया, तब उनके घरों में देवता और उनके वाहन—गजानन गौएँ राहु, चन्द्र सूर्य शेष मूषक ऐरावत शम्भु और नंदि [विश्वचक्र दान में प्राप्त मूर्तियां] —आपस का वैरभाव छोड़कर एक जगह रहने लगे हैं।

दत्ते हाटकविश्वचक्र उचित विप्रेभ्य एषा गृहे
दारिद्र्य खलु सवथव विगत श्रीराणवीर त्वया।
यल्लक्ष्मी किल कल्पवृक्षधनदो चिंतामणि- कामगौ
मेरु स्पर्शमणि खनिश्च निधयो रत्नाकरोय तत ॥४१॥

भावार्थ —हे महाराणा ! आपने ब्राह्मणों को सोने का विश्वचक्र महादान देकर उनके घर के दारिद्र्य को समूल नष्ट कर दिया है। यह ठीक ही है। क्योंकि यह विश्वचक्र महादान लक्ष्मी कल्पवृक्ष कुबेर चिंतामणि कामधेनु मेरु पारसमणि रत्नों की खान, नवनिधि और रत्नाकर स्वरूप है।

॥ इति राजप्रशस्तिकाव्ये द्वादश सर्ग ॥

त्रयोदश. सर्गः

[चौदहवीं शिला]

॥ श्री गणेशाय नम ॥

एव प्रतिष्ठाविधियोग्यरूपे
कृते तडागे क्रियमाणकार्ये ।
उत्साहपूर्णो नृपरा[ज]सिंहो
निमत्रण प्रेषितवान्नृपेभ्य ॥१॥

भावार्थ—इस प्रकार काय के चलते रहने पर जब तडाग का प्रतिष्ठा करने योग्य रूप तयार हो गया तब उत्साह-पूर्ण होकर नृपति राजसिंह ने राजाओ को,

पूर्णादर दुर्ग[ग]णेश्वरेभ्य
स्वगोत्रभूपेभ्य रतापरेभ्य ।
अथो यथायोग्यमहो महाश्वान्
रथांस्तथा सारथिवयंयुक्तान् ॥२॥

भावाथ—दुर्गो के अधिपतियो को स्वगोत्रीय एव अन्य भूपालों को निमत्रण भेजा। इसके बाद, यथायोग्य बडे-बडे अश्व सारथियुक्त श्रेष्ठ रथ,

शिवोपधाना शिविकावलीस्ता
सप्रेषयामास सुहस्तिनीश्च ।
विश्वासमोग्या मनुजा‍न्द्विजादी-
न्विशेषवेत्तानयनाय तेपा ॥३॥ कुलक ॥

भावार्थ—विपुल मात्रा मे कस्तूरी और कपूर जमा कर दिया गया। अगर, कसर तथा अन्य सुगंध द्रव्यो के ढेर लगा दिये गये।

सस्थापित स्थापितपुण्यकीर्त्ते-
स्पयु पर्येव घनप्रपूर्त्तं ।
धान्यादिहट्टा शिबिराणि शाला
कृता पुनैस्तर्विविधा विशाल ॥८॥

भावार्थ—जिसने अपनी पुण्य कीर्त्ति को स्थापित किया है, उस राजसिंह के लिये लोगो ने धन पूर्ति के अनेक सुदृढ प्रबंध कर दिये। उन्होंने वहाँ धान्यादि की दूकानें, शिबिर तथा विभिन्न प्रकार की बडी-बडी शालाएँ बनवाई।

अमुष्य वस्तुप्रसरस्य लोकै
पूर्वं कदाप्यानयन न दृष्ट ।
पृथक्तया तेन वितर्क एष
प्रकल्पित कर्कशतार्किकौघै ॥९॥

भावार्थ—इतनी वस्तुओं का आना वहाँ पहले लोगो ने कभी नहीं देखा था। इस संबंध मे तीव्रबुद्धि तार्किको ने अपना अलग एक तर्क बनाया जो इस प्रकार है—

रघो सकाशात्किल कौत्सनाम्ना
प्रदातुमद्धा गुरुदक्षिणा ता ।
द्रव्य सुभव्य बहु याचित त-
न्निभालिन सद्मनि भूभृता न ॥१०॥

भावार्थ—'कौत्स ने गुरुदक्षिणा देने के लिये रघु से प्रचुर धन की याचना की। लेकिन जब रघु को अपने घर में उतना धन नहीं दिखाई दिया तब

लब्धु विजेतु धनद प्रतस्थे
तत स शीघ्र धनदस्तदेव ।
रात्रौ धन भूरि रघोर्गृहोघे
सस्थापयामास महाभयाद्य ॥११॥ युग्म ॥

भावार्थ—उसने धन प्राप्ति के उद्देश्य स कुबेर को जीतने के लिये प्रस्थान किया। कुबेर ने तब भयभीत होकर तत्काल उसी रात म उसके महलों मे प्रचुर धन जमा कर दिया।

तथा रघोरत्तमवशजस्य
श्रीराजसिहस्य वसु प्रदातु ।
कृतप्रतिज्ञस्य गृहे कुबेर
सस्थापयामास -धन तु यक्त ॥१२॥

भावार्थ—राजसिह उसी रघु क श्रेष्ठ वश में उत्प न हुआ है। उसने भी धन दा की प्रतिज्ञा कर रखी है। इस कारण उसके घर म जो यह धन दिखाई द रहा है उसे कुबेर न ही जमा किया है।"

गोधूमगोनाश्चणकोच्चशला
महाङ्कुलाना पृथुपवताश्च ।
क्षमाभतो मुद्गगणस्य तु गा
गोधूमपिष्टस्य विशिष्ट शैला ॥१३॥

भावार्थ—महाराणा के लोगो ने प्रसन्नता के साथ वहा गेहू चने चावल मूग और गेहू के आटे के बडे-बडे पहाड,

घृतस्य तलस्य तु वापिकास्तु
महाद्रयो वा गुडमडतस्य ।
अखडखडस्य महामहीध्रा
धराधरा प्रोज्ज्वलशकराणाम् ॥१४॥

भावार्थ—घी-तेल की वापिकाएँ, गुड, अमित खांड, सफेद शक्कर,

घृतौघपक्वान्नमहागिरीन्द्रा
शिलोच्चया मौक्तिकमोदकाना।
दुग्धोल्लसन्मोदकभूनगश्च
फलावलेर्वीटकतुंगसघा ॥१५॥

भावार्थ—घी के बने पक्वानो दूध के बने और मोतीचूर के लड्डुओं तथा फलों के बडे बडे पर्वत बना दिये। उन्होने पान के बीडो के ऊँचे-ऊँचे ढेर

कृता मुदा कायकरैर्नरर्द्राक्
जयति चैते नृप राजसिंह।
पाषाणशैला बहवोऽद्रयस्ते
देशे श्रुत दृष्टमिहाद्य चित्र ॥१६॥

भावार्थ—तुरन्त लगा दिये। हे राजसिंह! आपके देश मे पत्थरो के पहाडों का होना सुना गया था, लेकिन आज यहा अन्न-पक्वानो के ये कई पर्वत दिखाई दे रहे हैं। यह आश्चर्यजनक है। ये पर्वत वृद्धि को प्राप्त हो।

रसैरमीभि पटशैवलैश्च
रत्नैस्तुरग करिभिश्च गौभि।
युक्तश्च दानाय घृतप्रवाहै
राजेंस्तवाय नगर समुद्र ॥१७॥

भावार्थ—हे राजन्! दान करने के लिये एकत्रित की गई इन सामग्रियो से आपका यह नगर समुद्र बन गया है। क्योकि यहा विभिन्न प्रकार के रस हैं। पट रूपी शैवाल हैं। रत्न हैं। घोडे और हाथी हैं। गायें हैं और घृत बह रहा है।

अथवा जनै स्वामजित स्वगत्या
प्रचण्डवेतण्डगणा मुशुण्डा।
रथास्तथा धन्यनृप सनाथा
सस्थापिता दानकृते नृपस्य ॥१८॥

भावार्थ.—राजसिंह के दान करने के लिये लोगों ने 'बड़ी सुन्दर सूंडोंवाले प्रचंड हाथी उत्तम वृषभों से जुते हुए रथ और अपनी गति से पवन को जीतनेवाले घोड़े एकत्रित किये।

हेलावुकेनापि गजा महान्तो
महामदा विंशतिसंख्ययाप्ता ।
आनीय राज्ञे विनिवेदितास्तान्
गृहीतवान् सप्तदश क्षितीशः ॥१९॥

भावार्थ—व्यापारी ने बड़-बड़े प्रमत्त बीस हाथी लाकर राजसिंह को नजर किये। राजसिंह ने उनमें से सत्रह हाथी लिये।

तथापरेणापि गजद्वयं स-
दानीन्मीशेन गृहीतमेतत् ।
जलाशयोत्सर्गविधौ मया ते
देया विचार्येति गजाः सुयुक्तम् ॥२०॥

भावार्थ—इसी प्रकार वहाँ कोई दूसरा व्यापारी दो सुन्दर हाथी लाया। यह सोचकर कि जलाशय के प्रतिष्ठा कार्य में मुझे हाथियों का दान करना है, राजसिंह ने उनको भी ले लिया।

निमन्त्रितास्ते नरनाथसंघाः
समागताः सर्वभृद्बन्धुयुक्ताः ।
अश्वैस्तथैभैः करिभिर्गजर्वा
रथैः पुरे दुर्गम एव मार्गः ॥२१॥

भावार्थ—निमन्त्रित राजा वहाँ सपरिवार आये। उनके अश्वों हाथियों तथा रथों के कारण नगर के मार्ग अवरुद्ध से हो गये।

तथैव सर्वे मनुजा द्विजातयः
प्रचंडविद्याः खलु पंडितोत्तमाः ।
कवीश्वराणां निवहास्तु चारणाः
सुवर्दिनोऽमदगुणाः समाययुः ॥२२॥

भावार्थ—वहाँ धुरधर विद्वान् एव अच्छे पडित सभी ब्राह्मण, बडे-बडे अनेक चारण कवि और गुणवान बदीजन आये।

पुर तदा मर्त्यमय च गोमय
स्वनोमय वापि हयावलीमय।
करेणुपूर्णं करिसद्घटामय
दृष्ट महाश्चर्यमय जनव्रजै ॥२३॥

भावार्थ—तब समूचा नगर मनुष्यो, बैलों कोलाहल घोडो हथिनियों तथा अनेक सुदर हाथियों से भर गया। जन समुदाय ने उसे बडे विस्मय के साथ देखा।

अन्नस्य पक्वान्नगणस्य भूय
समस्तभोज्यस्य समागतेभ्य।
अनन्तसख्येभ्य इहादरेण
कृत प्रदान प्रभुणा समान ॥२४॥

भावार्थ—राजसिंह ने वहाँ आये हुए असख्य लोगो को अन्न पक्वान्न तथा अन्य समस्त भोज्य पदार्थ समान रूप से आदरपूर्वक प्रदान किये।

स्वीयैं परैर्वापि निमन्त्रणार्थ-
मश्वादि हस्त्यादि विभूषणादि।
वस्त्राद्यमानीतमयो गृहीत्वा
योग्य परावर्त्य ददौ तदन्यत् ॥२५॥

भावार्थ—निमत्रण पाकर आये हुए अपने पराये लोगों ने जो हाथी घोडे, वस्त्र आदि भेंट किये, उनमे से उचित वस्तुएँ रखकर महाराणा ने अन्य वस्तुएँ वापस लौटा दीं।

एव बहुष्वेव दिनेषु लोकै-
र्विद्यमाने हि निमन्त्रणस्य।
वस्तुव्रज योग्यमहो गृहीत्वा
अन्यत्परावृत्य ददौ वदान्य ॥२६॥

भावार्थ—इस प्रकार बहुत मित्रों तक निमन्त्रित जन-समुदाय वस्तुएँ भेंट करता रहा। आश्चर्य है कि उचित वस्तुएँ ग्रहण कर उदार महाराणा ने शेष सब वस्तुएँ लौटा दीं।

शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे द्वात्रिंशदाह्वये।
माघशुक्लद्वितीयायां राजसिंहस्य भूपतेः ॥२७॥

भावार्थ—संवत् १७३२ माघ शुक्ला द्वितीया के दिन पृथ्वीपति राजसिंह की

परमारकुलोत्पन्ना श्रीरामरसदेवधू।
राजसिंहनृपाज्ञातो वाप्या उत्सर्गमातनोत् ॥२८॥

भावार्थ—पत्नी श्री रामरसदे जो परमार कुल में उत्पन्न हुई थी ने महाराणा की आज्ञा से,

दहवारीघट्टमध्ये लग्ना रत्नमुद्रिका।
चतुर्विंशतिसंख्यायुक्सहस्रप्रमिता इह ॥२९॥

भावार्थ—दवारी' घाट में बनी वापिका की प्रतिष्ठा करवाई। इस वापी के निर्माण में चौबीस हजार रुपये लगे।

ततस्तु रैतौ धरणीधरोत्तमो
जलाशयोत्सर्गकृते तुलाकृते।
हेम्नस्तथा हाटकसप्तसागर-
स्यापाय वै त्रीणि सुमण्डपान्यथ ॥३०॥

भावार्थ—इसके बाद महाराणा ने जलाशय की प्रतिष्ठा, सुवर्ण तुला-दान तथा सुवर्ण सप्तसागर-दान करने के उद्देश्य से सुन्दर तीन सुन्दर मण्डप

वस्तु समापयदन राणा
श्रीराजसिंहो कुम्भुनधारान्।
कृतानि कुण्डानि नवैव तत्र
वदी चतुर्हस्तमिता कृता वा ॥३१॥

भावार्थ—बनवाने का विश्व सूत्रधारों को आदेश दिया। वहाँ नौ गुड उपा चार हाथ के प्रमाण की एक वेदी बनवाई गई।

सुमडप षोडशहस्तमान
ईदक्तुसस्यामितकार्यसिद्ध्यै।
यदाम्यह तन्नवखडयुक्त-
क्षितौ प्रसिद्ध्यै नृपते सुनाम्न ॥३२॥

भावार्थ—उन मडपों में से एक मडप सोलह हाथ के प्रमाण का बना। यह सख्या अमित कार्यों की सिद्धि के लिये है। यथा—नौ खडों से युक्त पृथ्वी पर नृपति के सुदर नाम की प्रसिद्धि,

यस्यास्तु दृष्ट्यैव चतु पुमर्थ-
प्राप्तिर्नु योग्ये समये नराणा।
यशोस्तु वै षोडशमत्कलेंदु-
प्रभ प्रभोर्वेति कृत प्रकार ॥३३॥

भावार्थ—उस मडप के दर्शनमात्र से लोगो को योग्य समय पर चारों प्रकार के पुरुषार्थों की प्राप्ति तथा सोलह कलाओ से पूर्ण चन्द्रमा के समान स्वामी के यश का विस्तार। इसलिये मडप का यह प्रकार बनाया गया।

स्तभा कृता षोडशममितास्ते
दानानि किं षोडश वा महाति।
कृतानि कर्त्तुं च कृता प्रतिना-
लेखा हि दिग्भित्तिषु भूमिभर्त्रा ॥३४॥

भावार्थ—उस मडप के सोलह स्तभ बनवाये गये। वे मानो किये गये अथवा किये जानेवाले षोडश महादानों के प्रतिना लेख हैं जिन्हें महाराणा ने दिशा रूप भित्तियों पर लगवाया है।

द्वाराणि चत्वारि कृतानि तेषा
मदशना मुक्तिचतुष्टय स्यात् ।
एतादृशो मडपराज एव
कृते मयूपापि च सूत्रधार ॥३५॥

भावाथ —इसके चार द्वार बनाय गये । इनके दशन स चार प्रकार की मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं । सूत्रधारों ने यहा ऐसा एक सुन्दर मडप बनाया । वहाँ उन्होंने एक सुन्दर पुर का निर्माण भी किया ।

तुलाविधानस्य च सप्तसागर-
दानस्य वा मडपयुग्ममुत्तमम् ।
तुलाप्रमोद्भासितमेवमद्भुत
श्रीराजसिंहेन कृत मनोहर ॥३६॥

भावाथ —राजसिंह ने तुलादान एव सप्तसागरदान करने के लिय जो वहाँ दो श्रेष्ठ, मनोहर एव अद्भुत मडप बनवाय व तुला के समान दिखाई देते थे ।

एव त्रय मडितमडपाना
त्वया कृत हेतुरय महीन्द्र ।
तापत्रय दर्शनतोऽस्य नृणा
हृत त्रिनेत्रप्रियता च लब्धु ॥३७॥

भावार्थ—हे पृथ्वीपति ! इस प्रकार आपने सुन्दर तीन मडपों का जो निर्माण करवाया, उसका कारण यह है कि उनके दशन से मनुष्य तीनों तापों से मुक्त हो और त्रिनेत्र [शकर] की प्रियता प्राप्त करें ।

गते शते सप्तदशे सुवर्षे
द्वात्रिंशदाख्ये तपसीति राजा ।
पाडौ दशम्या च शनौ गृहीतो
जलाशयोत्सर्गविधेनु हर्ता ॥३८॥

भावार्थ – राजसिंह ने जलाशय की प्रतिष्ठा करने का मुहूर्त निकलवाया— संवत् १७३२, माघ शुक्ला दशमी, शनिवार।

आदौ तु माघे सितपंचमी तिथौ
महोमहेंद्रेण पुरोधसा सह।
जलाशयोत्सर्गकृतेधिवासनं
तदृत्विजां सद्वरणं कृतं मुदा ॥३९॥

भावार्थ—प्रारंभ में प्रसन्न होकर महाराणा ने पुरोहित के साथ माघ शुक्ला पंचमी को जलाशय की प्रतिष्ठा करने के लिये अधिवासन किया और इसके बाद ऋत्विजों का वरण।

होतारौ जापकौ द्वारपालावेका श्रुतिं प्रति।
षट् चतुर्विंशति संख्या ऋत्विजामिति कीर्त्तिता ॥४०॥

भावार्थ—एक श्रुति के प्रति दो होता, दो जापक और दो द्वारपाल होने हैं जिनकी संख्या छह होती है। इस आधार पर चार श्रुतियों के पीछे चौबीस ऋत्विज बताये गये हैं।

एको ब्रह्मा तथाचार्य षड्विंशतिस्तोऽखिला।
तेमी मत्स्यपुराणोक्तास्तत्र प्रोक्तफलप्रदा[ ] ॥४१॥

भावार्थ—इसके अतिरिक्त एक ब्रह्मा और एक आचार्य। इस तरह ये कुल ऋत्विज छत्तीस हुए। इनका कथन मत्स्यपुराण में हुआ है। वहाँ इन्हें फलदायी बताया है।

चतुर्विंशतितत्त्वानां पुंसः स्यात्ज्ञानमात्मनः।
तद्द्यथाद्वरणं वीरः षड्विंशतिसदृत्विजां ॥[४२॥]

भावार्थ—ऋत्विजों के इस प्रकार के वरण से मनुष्य को चौबीस तत्त्वों का, पुरुष का और आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है। अतएव राजसिंह ने छब्बीस ऋत्विजों का वरण किया।

इति त्रयोदश सर्ग ॥

चतुर्दशः सर्ग

[पन्द्रहवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नम ॥

श्रीपट्टराज्ञा परमारवश्य-
श्री इद्रभानाभिधरावपुत्र्या ।
आज्ञा सदाकुवरिनामभाजा
कृता मुदा रूप्यतुलाकृते द्राक् ॥१॥

भावार्थ — परमारकुलोत्पन्न राव इन्द्रभान की पुत्री पटरानी सदाकुंवर ने चांदी की तुला करने के लिये अचानक आज्ञा दी।

अकारि रात्राविह मडप जनै
रखडकुडरभिमडित जवात् ।
नृणा महाश्चर्यमहोभवत्ततो-
विधासन तत्र कृत विधानत ॥२॥

भावार्थ — तब लोगो ने रातोरात एक मडप बना दिया। वहाँ उन्होने कुड भी तयार कर दिये। यह देखकर लोगो को बडा आश्चर्य हुआ। इसके बाद वहाँ विधिपूर्वक अधिवासन किया गया।

गरीबदासास्यपुरोहितेन वै
पुत्रप्रयुक्तेन तु हेमरूप्ययो ।
कृत्तु तुलामडपयुग्मक कृत
पुरोधसाकारि ततोधिवासन ॥३॥

भावार्थ — पुरोहित गरीबदास एव उसके पुत्र ने सोने व चांदी की तुलाएँ करने के लिए दो मडप बनवाये। पुरोहित ने वहा अधिवासन किया।

राणामणिश्री अमरेशसूनो-
भीमस्य राज्ञस्तु वधू पवित्रा।
तोडास्थितेभूपतिरायसिंह-
माता तुला रूप्यमयी विधातु ॥४॥

भावार्थ —महाराणा अमरसिंह के पुत्र राजा भीमसिंह की पत्नी, तोडा के राजा रायसिंह की माता, ने वहाँ चादी का तुलादान करने की

आज्ञापयामास तदैव सृष्ट
रात्रेंद्रलोकैर्निशि मडप सत्।
समस्तवस्तुस्फुरित्त घृत वा-
धिवारन तत्र तयोक्तरीत्या ॥५॥

भावार्थ —आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही महाराणा के लोगो ने रातोरात एक सुन्दर मडप का निर्माण किया, जो समस्त वस्तुओ से सम्पन्न था। वहा विधिवत अधिवासन किया गया।

चोहानवशोत्तमवेदलापुर-
स्थितेबलूरावबरस्य सत्सुत।
स रामचद्र किल तस्य चात्मज
स केसरीसिंह इति द्वितीयक ॥६॥

भावार्थ —बेदला के राव चौहान बलू का पुत्र रामचन्द्र था। रामचन्द्र के द्वितीय पुत्र का नाम केसरीसिंह था।

रावो द्वितीय कृत एप राणा
श्रीराजसिंहेन सलूंबरिस्य।
मत्त् तुला रूप्यमयी विचार
भ्रात्रावरोद्ध सबलादिसिंह ॥७॥

भावार्थ —राजसिंह ने उसे सलूबर का राव बनाया था। उसने भी चाँदी की तुला करने के लिये अपने भाई से सलाह मांगी। उसका भाई सबल सिंह

उवाच राजेय महामहामति
　　राजो भवानेव कृतोस्ति भूभुजा ।
तुला करोत्वेव तदा तुलाकृते
　　स केसरीसिंह उद्यतोभवत् ॥८॥

भावार्थ—राव बड़ा बुद्धिशाली था। उसने कहा कि महाराणा ने आप को राव बनाया है। इसलिए आप को तुलादान करना ही चाहिए। यह सुनकर केसरीसिंह तुला करने के लिए तयार हुआ।

स केसरीसिंहमहामना मुदा
　　निधाय वस्तुप्रकर सविस्तर ।
सकुण्डमण्डपवन्दिमण्डप
　　कृत्वाकरोद्रागधिवासन ततः ॥९॥

भावार्थ—तदनन्तर प्रसन्नतापूर्वक महामना केसरीसिंह ने अमित वस्तुओं का सविस्तार संकलन कर और कुण्ड मण्डल एवं वन्दिका सहित मंडप बनवाकर तत्काल वहाँ अधिवासन किया।

सुमण्डप चारणबारहटो वा
　　सत्केसरीसिंह इतीह सेतो ।
तटेतनोद्रूप्यतुला विधातु
　　तयान्तिके खादरवाटिकाया ॥१०॥

भावार्थ— रजत-तुलादान करने के लिये बारहट केसरीसिंह चारण ने भी वहाँ सेतु के तट पर खादरवाटिका के समीप एक सुन्दर मंडप बनवाया।

माघेन शुक्लसप्तम्या राजसिंहनृपप्रिया ।
राठोडरूपसिंहस्य पुत्री जोधपुरी व्यधात् ॥११॥

माघ शुक्ला सप्तमी के दिन राठौड रूपसिंह की पुत्री
ने

त्रिंशत्सहस्रैर्गजतमुद्रासृष्टा प्रतिष्ठिता ।
वापिका राजनगरे राजसिंहनृपाज्ञया ॥१२॥

भावार्थ—महाराणा की आज्ञा से राजनगर में वापिका की प्रतिष्ठा की। इस वापी के निर्माण में तीस हजार रुपये व्यय हुए।

ततो नवम्यां नवदुंदुभीनां
नानाविधानां नवकाहलानां ।
विचित्रवादित्रवरव्रजानां
सुरंजिताः सर्वजना निनादैः ॥१३॥

भावार्थ—इसके बाद नवमी के दिन नई नई दुंदुभियाँ, नाना प्रकार के नये-नये ढोल तथा तरह-तरह के अनेक वाद्य बजे, जिन्हें सुनकर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए।

ततो महामंडपमध्य ऊर्द्ध्वं
स्तंभेषु वेद्या विदधे वितानं ।
नृपो महासत्त्वमयं सुयुक्तं
रजोनिवृत्त्यै तदिहार्थयुग्मं ॥१४॥

भावार्थ—तदनन्तर महासत्त्वशाली नृपति राजसिंह ने रजोनिवृत्ति के लिये महामंडप के मध्य में वेदी के स्तंभों पर एक ऊँचा वितान लगवाया। यहाँ 'महासत्त्वशाली' और 'रजोनिवृत्ति' शब्दों का अर्थ युग्म उचित है।

पट्टांवराणां रचिताः पताकाः
विचित्ररूपाः शुभमंडपस्य ।
सर्वासु दिक्षूर्द्ध्वमहो नृपेण
जगज्जयस्येति कृतस्य नूनं ॥१५॥

भावार्थ—राजसिंह ने सुन्दर मंडप के ऊपर सभी दिशाओं में रेशमी वस्त्रों की रंग बिरंगी पताकाएँ लगवाईं जो संसार-विजय की पताकाओं के समान दिखाई दे रही थीं।

सुगंधिभिर्माल्यगणैः प्रसूनैः
सत्पल्लवैर्वंदनमालिकाभिः ।
माघेप्यघद्रावणमंडपेषु
वसंत एव प्रविभाति चित्रं ॥१६॥

भावार्थ—सुगंधित मालाओं, पुष्पों सुन्दर पल्लवों तथा वन्दनमालिकाओं के कारण माघ महीने में भी, पाप-नाशक उन मंडपों में वसन्त ऋतु की ही शोभा थी। यह आश्चर्य है।

प्रकल्पितं तत्र च रंगवल्लिभिः
सत्पद्मगर्भं भृतसप्तमंडलं।
सषोडशारं शुभवृत्तमद्भुतं
चक्रं चतुर्वक्त्रविराजितं पुनः ॥१७॥

भावार्थ—वहाँ रंग-वल्लियों से सुन्दर पद्म गर्भ वाला एवं सात मंडलों तथा सोलह पंखुडियों से युक्त एवं मनोहर और अद्भुत वृत्ताकार चक्र बनाया गया। फिर उसमें ब्रह्मा की स्थापना की गई।

समंततो वा चतुरस्रमद्भुतं
सद्वारणं मंडलमत्र कारणं।
श्रीपद्मनाभस्य सुखाय सप्त
द्वीपप्रभोः षोडशसत्प्रमाणकैः ॥१८॥

भावार्थ—वहाँ एक अद्भुत एवं चौकोर वारण मंडल बनाया गया जो चारों ओर से बराबर था। षोडशोपचार से सप्तद्वीप के स्वामी विष्णु को प्रसन्न करने के लिये इसकी रचना की गई।

श्रेयस्य भूपेन सुवृत्तलब्धये
पद्मश्रिये वा चतुरास्य तुष्टये।
वीरेण सृष्टा चतुरस्रवेदिका
सद्रंगवल्लीनिभरत्नपूत ये ॥१९॥

भावार्थ—परम तत्व को जानने के लिये, धर्म की शोभा के लिये, चतुर्मुख की प्रसन्नता के लिये तथा रत्न-वल्लियों के समान उत्तम रत्नों की पूर्ति के लिये भूपति राजसिंह ने वहां एक चौकोर वेदी बनवाई।

राजाधिराज स्वपुरोहितेन
मुक्त समेतो गुरुणा यथेंद्र ।
यथा वशिष्ठेन च रामचंद्रो
विराजते मंडपमध्यदेशे ॥२०॥

भावार्थ—बृहस्पति के साथ इन्द्र अथवा वशिष्ठ के साथ रामचन्द्र के समान अपने पुरोहित के साथ राजसिंह मंडप में विराजमान हुआ।

सहोदराद्यैस्तनयैश्च पौत्रै-
र्नानाक्षितीशैरपि दुर्गनाथ ।
निमंत्रणायातनरेशसंघै
र्विशोभितो देवगणैर्यथेंद्र ॥२१॥

भावार्थ—सहोदर आदि, पुत्र-पौत्रों अनेक राजाओं, दुर्ग-स्वामियों तथा निमंत्रण पाकर आये हुए नरेशों के साथ राजसिंह उसी प्रकार सुशोभित हुआ जैसे देव-समुदाय के साथ इन्द्र शोभा पाता है।

महीमहेंद्रो नृपराजसिंहो
धर्मैकमूर्तिर्धरणीधवेड्य ।
कृतैकभुक्त प्रथमे दिनेथ
कृतोपवासो नियमो नवम्यां ॥२२॥

भावार्थ—एकमात्र धर्म-मूर्ति तथा राजाओं द्वारा वन्दित महाराणा राजसिंह ने प्रथम दिन एकभुक्त रहकर आज नवमी के दिन नियमपूर्वक उपवास किया।

द॰म्य शुद्धि प्रविधाय प्राय
श्चित्त न ऽ॰॰यानिविशु[द्ध]चित्त ।
श्रुतिस्मृतिप्रेरितकर्मयु द
श्रद्धामया ब्राह्मणमादान ॥२३॥

भावार्थ—श्रुति स्मृति—विदित कर्मों म श्रद्धा रखनेवाल तथा ब्राह्मणों का सम्मान देनवाल राजसिंह न इस प्रकार देह की शुद्धि की और प्रायश्चित्त करके चित्त को अत्यन्त शुद्ध किया ।

श्रीराजसिंह कृतवान्प्रायश्चित्त यदा तदा ।
प्रायश्चित्त शुद्धमप्यातिशुद्धमभव[त्]पुन ॥२४॥

भावार्थ—राजसिंह न जब प्रायश्चित्त किया तब उसका चित्त जो प्राय शुद्ध है और अधिक शुद्ध हो गया ।

तत नृप स्वस्तिसुवाचन च
पुरोधसा विप्रवर समेत ।
स्वस्तिप्रद यँ कृतवान्धरित्र्या
पूजा च पृथ्वीश्वरभावदात्री ॥२५॥

भावार्थ—इसक बाद पुरोहित एव श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ नृपति ने कल्याणप्रद स्वस्तिवाचन किया और पृथ्वी पर स्वामित्व प्रदान करने वाली पृथ्वी पूजा की।

गणेशपूजा पृथिवीश्वरत्वस्फुर-
द्गणाधिपत्याप्तिमहासुखप्रदा ।
श्रीगोत्रदेव्या अपि गोत्रवृद्धिदा
गोविंदपूजा बहुगोधनप्रदा ॥२६॥

भावार्थ—तदनन्तर उसने राजा को गणपतित्व की प्राप्ति कराने वाली एव महान सुख देनेवाली गणेश पूजा गोत्र प्रवद्धक गोत्रदेवी पूजा और प्रचुर गो धन प्रदान करनेवाली गोविन्द-पूजा

कृत्वा कृतार्थं विलसत्पुमर्थी
स्वं मन्यमानं क्षितिपेषु धन्यं
रामो वशिष्ठस्य यथाश्वमेधे
चकार पूजां वरणं तथैव ।।२७।।

भावार्थ—श्री और अपने को कृतार्थ, चारों प्रकार के पुरुषार्थों से सम्पन्न एवं भूपालों में धन्य समझा । जिस प्रकार राम ने अश्वमेध में वशिष्ठ का पूजन एवं वरण किया उसी प्रकार उसने

गरीबदासाख्यपुरोहितस्य
कृत्वा तु पूर्वं वरणं परेषां ।
निजाश्रितानामखिलद्विजानां
सदृत्विजां वा वरणं शुचीनां ।।२८।।

भावार्थ—सर्वप्रथम गरीबदास पुरोहित का, तत्पश्चात् अपने आश्रित एवं अन्य सब पवित्र ब्राह्मणों का उसने ऋत्विज के रूप में वरण

मुदाकरोदत्र तु पीठदानं
स्वराज्यपीठाचलभावकारि ।
प्राग्जन्मपापाधिकधावनार्थं
श्रीविप्रपत्के पदधावनं वा ।।२९।। कलापक ।।

भावार्थ—किया । फिर प्रसन्नतापूर्वक उसने ब्राह्मणों को आसन दिये जिससे उसका राज्य सिंहासन स्थायित्व प्राप्त कर सके । पूर्व जन्म के पापों का प्रक्षालन करने के लिये उसने उन ब्राह्मणों के चरण धोये ।

प्ररोचनाच्चज्जगतो हि धर्मे
सुरोचनाभिस्तिलकं द्विजानां ।
श्रियोऽक्षतत्वाय सदक्षतैर्वा
प्रसूनपूजामपि सूनुदात्री ।।३०।।

मुक्तामणिभ्राजितकुण्डले च
श्रीमण्डलाप्त्यै मणिमुद्रिकाश्च ।
स्वकीयमुद्राचलनाय जम्बू-
द्वीपेखिले स्वोत्कटकाङ्गदार्ढ्यं ॥३४॥

भावार्थ—श्री मंडल की प्राप्ति के लिये राजसिंह ने उनको मुक्तामणि के दो कुंडल संपूर्ण जम्बूद्वीप में अपना सिक्का चलाने के लिये मणि-जटित अंगूठियाँ, अपनी सेना के अंगों को सुदृढ़

प्राप्तुं सरत्नान्कटकाङ्गदाश्च
यज्ञोपवीतानि सुवर्णवन्ति ।
जलाशयोत्सर्गसुयज्ञसिद्ध्यै
ददौ नरेंद्रो नतराजसिंहः ॥३५॥ युग्म ॥

भावार्थ—बनाने के लिये रत्न-जटित कड़े और भुजबन्द तथा सरोवर के प्रतिष्ठा यज्ञ की सिद्धि के लिये सोने के यज्ञोपवीत प्रदान किये।

नानाविधान्याभरणानि नूनं
स्वस्य क्षितीशाभरणत्वसिद्ध्यै ।
जलाशयोत्सर्गविधिप्रसिद्ध्यै
जलाच्छपात्राणि सुवर्णवन्ति ॥३६॥

भावार्थ—राजाओं में शिरोमणि बनने के लिये नाना प्रकार के आभूषण, जलाशय की प्रतिष्ठा की सफलता के लिये सुवर्ण सुंदर जल पात्र और

श्रीभोजदानाधिकदानजात-
पुण्याप्तये भोजनपात्रपंक्तिं ।
निवेद्य पूज्यं तमपूजयत्स-
पुत्रप्रयुक्तं स्वपुरोहितं सः ॥३७॥ युग्म ॥

भावार्थ —मात्र के दान से भी अधिक दानाश्रित पुण्य की प्राप्ति के लिये समस्त भोजन पात्र भेंट कर राजसिंह ने अपने पुरोहित एवं उसके पुत्र की पूजा की।

ततोपरम्यः स्म सुवर्णभूषण-
मणि सुवर्णान्वितये तदालये।
ददन्महीन्द्रो मणिमुद्रिकागणा-
न्यितस्य मलीना न तदीयमंदिरे ॥३८॥

भावार्थ —इसके बाद उसने अन्य ब्राह्मणों को सोने के कई आभूषण और मणि-जटित अंगूठियाँ प्रदान कीं ताकि उनके घर सुवर्ण और मणियों से सम्पन्न हो सकें।

सुन्दरूप्योत्तमपात्रपंक्ति
रूप्यातिपूर्त्यै च तदालयेषु।
वास समूहानतिनूतनांश्च
मनस्सु तेषां सुखवाससृष्ट्यै ॥३६॥

भावार्थ —उसने उन ब्राह्मणों को चांदी के अनेक उत्तम और सुन्दर पात्र तथा अमित अतिनूतन वस्त्र प्रदान किये जिनसे उनके घर चाँदी से और उनका मन सुख से पूर्ण हो सके।

एवं स सर्वार्चनमत्र कृत्वा
नानानपरचितपादपद्म ।
सुभाग्यभाजं कृतकार्यवर्यं
स्वं मन्यमानोत्र विभाति वीरः ॥४०॥कुलकं ॥

भावार्थ —अनेकानेक राजा जिसके चरण कमलों की पूजा करते हैं उस राजसिंह ने इस तरह समस्त ब्राह्मणों का पूजन किया और अपने को कृतकृत्य एवं भाग्यशाली समझा।

इति श्रीचतुर्दश सर्ग १४॥

पंचदश सर्ग

[सोलहवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नम ॥

तत स वादित्रविचित्रनाद
कुरगवेगोच्चतुरासग ।
उत्तुगमातगघटासमेत
नानाजनस्तोमसमाकुल च ॥१॥

भावार्थ—इसके बाद राजसिंह ने अनेक प्रकार के वाद्य बजवाये, कुरग के समान दौडनेवाले बडे-बडे तुरगो और ऊँचे-ऊँचे हाथियों के समुदाय को साथ में लिया असख्य जन-समुदाय को एकत्रित किया

चलपताकावलिशोभिताभ्र
सस्थाप्य विप्रास्फुरदृत्विजश्च ।
अलकृतानल्पगजावलीना
स्कधप्रदेशेपु सुबधुरेपु ॥२॥

भावार्थ—आकाश को चचल पताकाओं से सुशोभित किया और सुसज्जित अनेक हाथियों पर तेजस्वी ऋत्विज ब्राह्मणों को बिठाया।

तॉल्लोकपालानिवभूरिभूपा-
न्पश्यन्नवश्य वशगाक्षितीश ।
अग्रेसरॉस्ताप्रविधाय सर्वा
न्विचित्रवादित्रधरानरांश्च॥३॥

भावार्थ—पृथ्वीपति राजसिंह कोषों व अतिशय प्रचुर आभूषणों से अलंकृत लोकपालों के समान दिखाई दे रहे थे । महाराणा ने उन्हें और नाना प्रकार के वाजवालों को तथा अन्य समस्त लोगों को भाग बनाया ।

प्रखण्डसौभाग्यमनोनिभव्या
नारीविविधाभरणाश्च भव्या ।
जलाहृतिप्रोद्धृतधन्यकुम्भा
कृत्वा पुरस्ताज्जितदिव्यरम्भा ॥४॥

भावार्थ—अखंड सौभाग्यवती नारियों को भी उसने भाग किया । उन्होंने जल लाने के लिये सुन्दर कुम्भ उठा रखे थे । वे अनेक तरह के आभूषणों से अलंकृत थीं । सौन्दर्य में उन्होंने रम्भा को जीत लिया था ।

धीरं पुरस्कृत्य पुरोहितं जल-
यात्रा विचित्रा कृतवान्नरेश ।
युधिष्ठिरस्यापि च राजसूयके
शोभा न चैतादृशरीतिरीरिता ॥५॥ कुलक ॥

भावार्थ—महाराणा ने विद्वान पुरोहित को भी आगे बनाया और आश्चर्यजनक जल-यात्रा की । युधिष्ठिर के राजसूय में भी ऐसी शोभा नहीं थी ।

प्रोक्तं जनैर्लोकवृतोयमुद्यतो
जलायमर्थोप्यपरोस्ति तं वदे ।
दानाय तच्छत्रगलत्सुहाटक—
मेह प्रसन्नाद्द्रवणीकरिष्यति ॥६॥

भावार्थ—तब लोगों ने कहा कि जन-समुदाय को साथ लेकर यह राजसिंह जल के लिये तैयार हुआ है । इस कथन में दूसरा भी अर्थ है । वह यह कि अपने छत्र में टपकने वाली स्वर्ण-राशि को यह दान के लिये प्रसन्नतापूर्वक जल बना देगा ।

तयात्र कृत्वा वरुणस्य पूजां
विधानपूर्वं सकलांगयुक्तां ।
आनाय्य नीरं कलशेषु कृत्वा
नारी पुरः सत्कलशा कलोक्ती ॥७॥

भावार्थ—तदनंतर वरुण की विधिवत् सर्वांग पूजा करके, कलशों में जल भरवाकर, तथा उन सुंदर कलशों को उठाकर मधुर गीत गाती हुई नारियों को आगे कर

महामहोत्साहमयं स्फुरज्जयो
लसद्दयः स्पष्टनयः सविस्मयः ।
द्विजावलीमण्डितमंडपे शुभेऽ
भवत्प्रविष्टोऽतिविशिष्टतुष्टिमान् ॥८॥

भावार्थ—विजयी दयावान स्पष्टनीतिवाला एवं परम संतोषी राजसिंह बड़े उत्साह और विस्मय के साथ सुंदर मंडप में प्रविष्ट हुआ। मंडप ब्राह्मण-मंडली से सुशोभित था।

संस्थाप्य वेद्यां कलशान् जलाढयान्
वस्त्रावृत्तान्दिक्षु चतुर्मितासु ।
मध्ये जगद्ध्येयमुखो मखेऽस्मि-
न्विराजते भूपतिराजसिंहः ॥९॥

भावार्थ—वेदी पर चारों दिशाओं में जल-पूर्ण एवं वस्त्राच्छादित कलशों की स्थापना कर भगवान का स्मरण करता हुआ पृथ्वीपति राजसिंह उस यज्ञ में सुशोभित हुआ।

चतुर्षु कोणेषु सुमंडपस्या-
करान्नृपः स्थापितदेवपूजां ।
सवास्तुपूजां शुभवस्त्रपूर्णां
वेदीं स वेदीस्थितदेवतानां ॥१०॥

भावार्थ—विद्वान् राजसिंह ने मंडप के चारों कोणों में स्थापित देवताओं का पूजन किया। फिर उसने शुभ वस्तुओं से परिपूर्ण वास्तु पूजा कर वेदी-स्थित देवताओं की पूजा की।

नवग्रहांस्तानधिदेवताश्च
　　संस्थापयत्प्रत्यधिदेवताश्च।
नगवग्रहं साग्रहमेष शत्रु
　　श्रियं प्रियोऽक्षणा प्रकरिष्यतीश ॥११॥

भावार्थ—उसने नव ग्रहों अधिदेवताओं और प्रत्यधिदेवताओं की स्थापना की। मानो आंखों का सुन्दर लगनेवाला यह पृथ्वीपति शत्रु की लक्ष्मी का आग्रहपूर्वक नवीन ग्रहण करेगा।

सम्स्थापयन्सत्कलशं च रौद्रं
　　रुद्रं प्रसन्नं क्षितिपोकरोद्द्राक् ।
रौद्रं भयं शत्रुकृतं न देशे
　　सादस्य भद्रं भवतात्सुदेशे ॥१२॥

भावार्थ—रुद्र कलश की स्थापना करके राजसिंह ने रुद्र को शीघ्र प्रसन्न किया। ताकि देश में शत्रु-कृत रौद्र भय उत्पन्न न हो तथा अपना देश सुखी रहे।

ततो महामंडपमध्यदेशे
　　विप्रैः समेतो विलसत्पुरोधाः ।
धराधवो जागरणं वितन्व—
　　न्वेदोक्तकार्यं कृतवान्समस्तं ॥१३॥

भावार्थ—इसके बाद विशाल मंडप में रहकर पृथ्वीपति से पुरोहित ब्राह्मणों के साथ जागरण किया और वेद कथित समस्त कार्य किये।

ततो निशान्ते प्रविधाय नित्यं
स्नानादि राणामणिराजसिंह ।
जात प्रवृष्ट शुभमडपे वै
सहोदादीश्च तदा कुमारान् ॥१४॥

भावार्थ—रात बीतने पर नित्य के स्नानादि कार्यों से निवृत्त होकर महाराणा ने सुदर मडप में प्रवेश किया । उस अवसर पर उसने सहोदर आदि को, कुमारो को

पत्नी समस्ताश्च पितृव्यजाया
स्नुषाश्च वशोद्भवसवपुत्री ।
पुरोधसा धन्यवधूनृपाणा
वधू ममाहूय मुदोपवेश्य ॥१५॥

भावार्थ—समस्त रानियों को चाचियों को पुत्र-वधुओ को, अपने वश मे उत्पन्न हुई सब पुत्रियों को, पुरोहितो की पुण्यवती वधुओ को तथा राजाओं की रानियों को प्रसन्नतापूर्वक बुलाया और

सुकर्मणोस्याद्भुलदर्शनार्थी
श्रीपट्टराज्ञीसहितो हिताढ्य ।
कृत्वा मुदा श्रीवरुणस्य पूजा
समस्तदेवातुलपूजन च ॥१६॥

भावार्थ—आश्चर्यजनक उस सुन्दर कार्य को देखने के लिये उन्हें वहां बिठाया । तब पटरानी के साथ कल्याणकारी राजसिंह ने प्रसन्नतापूर्वक वरुण की पूजा की । फिर उसने समस्त देवताओ का पूजन किया ।

रत्नाकर वर्णमिह द्वितीय
तडागमेन नवरत्नराजि ।
निक्षिप्तवान्मध्य इहास्य शस्य
,मत्स्य पुन कच्छपमच्छमेव ॥१७॥

गो पूजन वत्सयुजो विधान-
पूर्वं नृपाल कृतवान्धृतींद्र ।
हिङ्कण्वतो गा प्रसमीक्ष्य भूप
पुरोहित प्रत्यवदत्किमेतत् ।।२१।।

भावार्थ—पुण्यवान् महाराणा ने बछडे सहित गाय का विधिवत् पूजन किया। तब रभाती हुई गाय को देखकर राजसिंह ने पुरोहित से पूछा कि इसका क्या रहस्य है ?

शुभ भवेत्प्रत्यवदत्पुरोहितो
वेदोक्तमेतत् शकुन यत प्रभो ।
गोतारणारभणमातनोत्पुन
सर्त्विक्सहायो धरणीपुरदर ।।२२।।

भावार्थ— पुरोहित ने उत्तर दिया कि हे स्वामिन ! मगल होगा। क्योकि यह वेदोक्त शकुन है। इसके बाद ऋत्विजो की सहायता से महाराणा ने गो तारण आरभ किया।

तडागमध्ये कृतवान्सुखेन
गोतारणारभमहो महींद्र ।
गोशब्दमात्रस्य तु सदर्था-
स्तन्नामतुल्यायककर्मलब्ध्यै ।।२३।।

भावार्थ — गो' शब्द के जितने अच्छे अर्थ हैं, उनके समानायक कर्मों की प्राप्ति के लिये पृथ्वीपति ने सरोवर मे गो-तारण का सुखपूर्वक आरभ किया।

ब्रुवे तदर्था भुवि नाकसौख्य-
लाभाय युद्धे शरसत्यतार्थं ।
गवा च लाभाय सुवागवाप्त्यै
करस्यवज्रेण रिपुक्षमाम ।।२४।।

सदावदत्त्वञ्च पुरोहितोत्र
वदत्ववश्य स्वरिसिंहनामा ।
तदोक्तमेव वदतात्पुरोगा
आज्ञा कृता भूमिभुजात्र भूय ॥२८॥

भावार्थ—पुरोहित ने उत्तर दिया कि इस सबंध मे अरिसिंह को ही बोलना चाहिये। इस पर महाराणा ने कहा कि पुरोहित ही बोलें। जब उसने उसे पुन आज्ञा दी कि

नामास्य वाच्य त्विति तत्पुरोधसा
नामोक्तमेक त्विति राजसागर ।
नामापर राजसमुद्र इत्यनो
नृपस्तडागस्य तु जन्मनाम वै ॥२९॥

भावार्थ—वह इस सरोवर का नाम बतावें, तब पुरोहित ने एक नाम बताया—'राजसागर' और दूसरा राजसमुद्र । इसके बाद राजसिंह ने जलाशय का जन्मनाम

इत्युक्तवानेव हि राजसागर-
स्तदुत्तर राजसमुद्र इत्यपि ।
नामास्य चक्रे दिनपचकोत्तर
दिव्ये मुहूर्ते त्विति भूमिनायक ॥३०॥

भावार्थ—बताया—राजसागर और दूसरा—'राजसमुद्र' । तदनन्तर पाँच दिन बाद शुभ मुहूर्त मे उसने सरोवर का नामकरण किया।

महोत्सव द्रष्टुमिम पुरदर
समागतो ह्यत्र विनिश्चित बुधै ।
यतस्तदग्रेसरवारिदव्रज
प्रववर्ष तिस्मांबुकणा शनै शनै ॥३१॥

भावार्थ —[उस समय वर्षा होती देखकर] विद्वान इस निर्णय पर पहुँचे कि इस महोत्सव को देखने के लिए इन्द्र यहाँ आया है। क्योंकि उसके आगे आगे चमकवाला घन समुदाय जल कणों को धीरे धीरे बरसाता रहा था।

ततो महामण्डपमध्य उत्तमा
होमक्रियाणामभवत् परम्परा ।
श्रीवेदपाठेषु जपेषु तत्परा
क्रियासु सर्वासु समग्रमृत्विजः ॥३२॥

भावार्थ —इसके बाद महामण्डप में श्रेष्ठ ऋत्विज होम वेद पाठ जप आदि सब कर्मों में जुट गए।

नवेषु कुण्डेषु नवत्रयाग्नयः
श्रीगार्हपत्याहवनीयसन्निभाः ।
प्रजज्वलुस्तत्र वितानमण्डलं
धूमेन धूम्रं सकलं तदाऽभवत् ॥३३॥

भावार्थ—तब नौ नूतन कुण्डों में गार्हपत्य और आहवनीय [अग्नि] के समान अग्नि प्रज्वलित हुई। धुँए से वहाँ का समूचा वितान मण्डल धूम्रवर्ण हो गया।

धूमावलिभिर्गगने तदाभव
न्महावितानान्यपराणि भूपते ।
रजस्सुरक्षाकृतये जगत्कृता
कृतानि किं धूसरवर्णवाससा ॥३४॥

भावार्थ —उस समय धूम समूह से आकाश में बड़े बड़े अन्य वितान बन गये। वे ऐसे लगते थे मानो सृष्टिकर्ता ने पृथ्वीपति राजसिंह की धूल से सुरक्षा करने के लिये धूसरवर्ण के वस्त्र से उनका निर्माण किया है।

महावितानेष्वथ धूममालया
कृतं नु मालिन्यमिदं तदाभवत् ।
अनेकमालिन्यहरं हि मण्डप-
स्थितस्य लोकप्रसरस्य पश्यत ॥३५॥

भावार्थ—बड-बड वितान धूम्र माला से मलिन हो गये। पर वह उनकी मलिनता मडप में बठ दशको के अनेक प्रकार के पापों को धोनेवाली सिद्ध हुई

अनन्तधूमालिमनतसस्थित-
ज्योतीपि वह्ने शुभगधवाहकान्।
सुग ध्वाहान्नृप कल्पयस्यहो
सकल्पनीराणि सदाब्दपूर्त्तये ॥३६॥

भावार्थ—[धूम ज्योति जल और पवन से मेघ बनता है। इस आधार पर कवि कहता है]—हे महाराणा! आपके इस यज्ञ की अग्नि से अनत धूम और आकाश म रहनेवाली ज्योति निकल रही है। सुगंधित पवन भी फैल रहा है। इसके अतिरिक्त सकल्प का जल आप छोड ही रहे हैं। मानो यह सब इसलिये हो रहा है कि आकाश सदा मेघो से भरा रहे।

तत कृतार्थं समरे समर्थ
क्ष्मापश्चतु सरुयपुमथकाक्षी।
मनो दधे राजसमुद्र भद्र-
प्रदक्षिणार्थी सकलार्थसिद्ध्यै ॥३७॥

भावार्थ—इस प्रकार कृतकृत्य होकर समर में समर्थ तथा चारों प्रकार के पुरुषार्थों के आकांक्षी राजसिंह ने सकल अर्थों की सिद्धि के लिये राजसमुद्र की कल्याणकारी प्रदक्षिणा करने का मन में विचार किया।

यस्यां क्षितौ पूर्वमहोऽभवच्छिला
निम्नोन्नतत्व पटुकण्टका जनै।
साम्य च समार्जनमत्र निर्मित
भाग्य भुवस्तन्नृपते समागमे ॥३८॥

भावार्थ —जिस धरती पर पत्थर ऊंचाई निचाई और तीस-तीस कांटे थे उस सागों ने समतल बनाकर स्वच्छ कर दिया। मानो महाराणा के शुभागमन से वहां की पृथ्वी का भाग्योदय हुआ।

अरण्यवल्ल्यावलिरज्जवोऽभवन्
यस्या क्षितौ वीरनृपाशया पुरा।
श्रीशादिचानरत जनजवात्
धृतोद्धृता द्राक् शणमूत्ररज्जव ॥३६॥

भावार्थ —धरती पर पहले जहाँ जंगली बेलों की रस्सियां फैली हुई थीं वहाँ महाराणा की आज्ञा से कोस मार्ग की जानकारी के लिए, सन और मूत की रस्सियां रखी व उठाई जाने लगीं।

इति श्रीरणछोड़भट्टविरचिते राजप्र[श]स्ते
पंचदश सर्ग[ः] संपूर्ण
लिखितो राजसमुद्रे ॥

षोडश सर्गः

[सत्रहवीं शिला]

॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

पूर्णे तु षोडशशते शुभकारिवर्षे
द्वाविंशतिप्रमितिके किल माधवे वा ।
पक्षे सिते उदयसिंहनृपस्तृतीया
मध्ये-करोदुदयसागरसुप्रतिष्ठा ॥१॥

भावार्थ—मंगल देनेवाले संवत १६२२ में वैशाख शुक्ला तृतीया को महाराणा उदयसिंह ने उदयसागर की प्रतिष्ठा की थी।

उदयसागरनामजलाशयो-
त्तमपरिक्रमण रमणीयुत ।
उदयसिंहनृप शिविकास्थित
समतनोदिति सूत्रनिवेशने ॥२॥

भावार्थ—तब उसकी परिक्रमा उसने पालकी में बैठकर की थी। साथ में उसकी रानियाँ भी थीं। इसलिये जब राजसमुद्र के सूत्र-निवेशन का समय आया तब

जसवतसिंहरावल इति जल्पितवान्प्रभो पार्श्वे।
एवं कार्य भवता अथवाऽश्वारोहणं कृत्वा ॥३॥

भावार्थ—जसवंतसिंह रावल ने राजसिंह के निकट आकर कहा कि आप भी वैसा ही करें। अथवा अश्वारूढ़ होकर आपको

कार्या प्रदक्षिणार्थं द्विजाय सौश्वरततो देय ।
श्रुत्वेति पक्षयुगल तूष्णीं स्थितवा महाशयो भूप ॥४॥

भावार्थ—प्रदक्षिणा करनी चाहिये । तत्पश्चात् वह अश्व इस प्रदक्षिणा के निमित्त आप ब्राह्मण को प्रदान कर दें । ये दोनों पक्ष सुनकर गंभीर नृपति चुप ही रहा

ततो नृप सामगवेदपाठिभि-
युक्त पुर स्थापित ऋत्विगादिक ।
नानाप्रतीहारकरस्थयष्टिका-
रवौघदूरस्थितसवमानुष ॥५॥

भावार्थ—फिर राजसिंह ने [प्रदक्षिणा करने की तैयार की] । सामवेदपाठी उसके साथ थे । ऋत्विज आदि लोगों को उसने आगे किया । छड़िया लेकर अनेक प्रतीहार पुकार-पुकार कर लोगों को दूर करने लगे ।

विचित्रवादित्रमहारवश्रवा
पुर स्थितोन्नतदतपक्तिक ।
विराजिवाजिव्रजराजिताग्रग
शिवाशुकश्रीशिविकापुर सर ॥६॥

भावार्थ—नाना प्रकार के वाद्य जोरों से सुनाई दे रहे थे । आगे-आगे बडे बडे हाथियों की कतारें, सुन्दर अश्वों की पक्तियां तथा सुन्दर वस्त्रों से अलकृत पालकियाँ सुशोभित थीं ।

पुरःस्थपूर्णोन्नतकुम्भसत्फलो
महामहोत्साहमयो महोत्सव ।
समस्तजायावसनाचलस्वका-
शुकाचलग्रंथिविधानसुन्दर ॥७॥

भावार्थ—आगे आगे मगरमय जल पूर्ण कुम्भ उठाये गये । राजसिंह में अतिशय उत्साह था । यह उसका एक बड़ा उत्सव था उसकी समस्त रानियों के वसनाचलों तथा स्वय के दुपट्टे के छोर के पारस्परिक गठबन्धन से वह सुन्दर लग रहा था ।

वेदोदित राजसमुद्रराज-
रमुसूत्रसवेष्टनकर्मकत्तु ।
स्वपाणिसस्थापितनव्यभव्य-
सत्कुकुमोद्यनवततुपक्ति ॥८॥

भावार्थ—राजसमुद्र का वेदोक्त सूत्र संवेष्टन-कर्म करने के लिये महाराणा ने हाथों में नूतन और सुन्दर कुकुम-रजित नव तन्तु ले रखे थे।

सुखपरिक्रमणाय महीभुजो
धरणिमूर्द्धिन सुचेलकतूलिका ।
अथ धृता स्वजनेन पदास्पृश-
न्स सुकुमारपदोऽत्यजदद्भुत ॥६॥

भावार्थ—महाराणा सुखपूर्वक परिक्रमा कर सकें, इस दृष्टि से स्वजनों ने सुन्दर वस्त्र के पावडे धरती पर मार्ग मे बिछाये। परन्तु आश्चर्य है कि सुकुमार चरणवाले उस राजसिंह ने उन्हें पाँव से छुआ तक नहीं और वहाँ से हटवा दिया।

वसनोपानद्युगल पदयोधृ त्वापि भूभुजा त्यक्त ।
सुकुमारपदेनापि च धर्माद्भुतपद्धति प्रकल्पयता ॥१०॥

भावार्थ—सुकुमार चरण होकर भी धर्म की अद्भुत पद्धति का निर्माण करने वाले राजसिंह ने पावों में पहनी हुई कपडे की जूतियाँ तक उतार दीं।

अपादचारी मृदुलाघ्रिपद्मो
विपादुक सप्रति पादचारी ।
भवन्भृश भाति महाप्रभावो
राजाधिराज प्रभुराजसिंह ॥११॥

भावार्थ जिसके चरण-कमल कोमल हैं तथा जो न कभी पैदल चला है वह अत्यन्त प्रभावशाली राजाधिराज राजसिंह आज पादुकाएँ उतार कर पैदल चलता हुआ अतिशय शोभा पा रहा है।

प्रदक्षिणा दक्षिणतो वितन्व-
न्स दक्षिणो दक्षिणमार्गगामी ।
प्राचीदिशादक्षिणदिक्प्रतीची-
सौम्यागता न् वहुदक्षिणाभि ॥१२॥

भावार्थ —दाईं ओर से प्रदक्षिणा करते हुए उत्तर एवं सरल मार्ग पर चलनेवाले राजसिंह ने पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशा से आये हुए लोगों को प्रचुर दक्षिणाएँ

द्विजादिकान्यधनश्च धान्य
रतोपयत्सवजनांस्तथव ।
सदश्वमेधोत्तमराजसूया
धिक फल प्राप्तुमिह प्रवृत्त ॥१३॥युग्म ॥

भावार्थ —द्विजादिकों को विपुल धन तथा अन्य समस्त मनुष्यों को धान्य देकर सन्तुष्ट किया । इस प्रकार वह अश्वमेध एव राजसूय के फल से भी अधिक सुन्दर एव उत्तम फल की प्राप्ति के लिये प्रदक्षिणा कार्य में प्रवृत्त हुआ ।

तडाग वेष्टयमाना अखण्डनवतन्तुभि ।
नवखण्डधरामध्ये कीर्त्ति स्थापितवांश्चिर ॥१४॥

भावार्थ —अखण्ड नव तन्तुओं से तडाग का वेष्टन करते हुए महाराणा ने नौ खण्ड वाली पृथ्वी पर अपनी कीर्ति को अचल बना दिया ।

शुक्लाम्बर चन्द्रमिव क्षितीश
राज्ञस्तु तारा इव तारहारा ।
सेवन्त एवैतदुचित हि गौर
सद्धीरमुक्ताभरणातिरम्या ॥१५॥

भावार्थ —ताराओं के समान रानियाँ जिन्होंने हीरे एवं मुक्ता जटित अत्यन्त मनोहर आभूषण पहन रखे हैं श्वेत अम्बर वाले चन्द्रमा के समान महाराणा राजसिंह की सेवा में हैं जो उचित है ।

इममुत्सवमद्भुत महेन्द्रो
रुचिरं द्रष्टुमुपागतो मुदात्र।
जलदास्तु पुरःसरास्तदीया
इति वर्षन्ति जलानि हर्षपूर्णाः ॥१६॥

भावार्थ—इस अद्भुत एवं सुंदर उत्सव को देखने के लिये इन्द्र यहां सहर्ष आया है। यही कारण है कि उसके आगे-आगे चलनेवाले मेघ हर्ष पूर्ण होकर जल बरसा रहे हैं।

प्रथमं हृदि शैत्यशोभिताना
प्रमदाना प्रमदातिभूषिताना।
अथ वर्षणनीरपूरिताना
सकलाङ्गेष्वभवत्सुशीतलत्वं ॥१७॥

भावार्थ—हर्ष से उत्फुल्ल प्रमदाओं का हृदय ही पहले शीतल था। परन्तु अब जब कि वे वर्षा के जल में भीग गई, उनके सभी अंगों में शीतलता उतर आई है।

जलधारावलिषु स्थिता स्त्रिय
श्रुतकम्पास्तु तटाक्सत्तटस्था।
द्रुतजाम्बूनदकान्तिकान्तय
क्षणदा उत्सवदर्शनागता किं ॥१८॥

भावार्थ—जलाशय के सुंदर तट पर जल-धाराओं में खड़ी स्त्रियाँ काँप रही थीं। वे ऐसी प्रतीत हुईं मानो तरल सुवर्ण की कान्ति वाली रातें वहाँ उत्सव देखने के लिये आई हैं।

वनिता अनिमेषलोचना-
स्ताश्चकिता उत्सवदर्शनागता किं।
जलधारावलिमागमन्मनो मे
-सुरकन्या इति वक्ति धन्यधन्या ॥१६॥

भावार्थ —मेरा मन तो यह कहता है कि वे निनिमेष लोचन एवं चकित स्त्रियां मानो सुन्दर देवकन्याएं हैं जो उत्सव देखने के लिये जलधाराओं के मार्ग से चलकर यहां आई हैं।

तनुलग्नाद्र पटातिदृष्टदेह
घटनाना घटसन्निभस्तनीना।
घनधारावलिपूरिनागकाना
मिव कौतूहलद जलागनाना ॥२०॥

भावार्थ —मेघ की जल धाराओं में कुंभ सदृश पयोधरा वाली स्त्रियों के अंग भीग गये और इस कारण गीले और महीन वस्त्रों के चिपक जाने से उनका शारीरिक गठन साफ साफ दिखाई देने लगा। वे वरुणलोक की अंगनाओं के समान कौतूहल दे रही थीं।

पदचक्रमणेषु सोद्यमं तं
अरिसिंहं स सहोदरं समीक्ष्य।
सुकुमारतरं सुखिन्नचित्त
शिविकारोहणमादिशन्महीन्द्रः ॥२१॥

भावार्थ – पैदल यात्रा करते हुए अतिसुकुमार सहोदर अरिसिंह को खिन्न चित्त देखकर महाराणा ने उसे पालकी में बैठने का आदेश दिया।

पदचक्रमणेषु सोद्यमां
निजराज्ञीं परमारवंशजां।
महतीं समवेक्ष्य सुश्रमां
शिविकारोहणमादिशत्प्रभुः ॥२२॥

भावार्थ —पैदल यात्रा करती हुई परमारकुलोत्पन्न अपनी रानी को अत्यधिक श्रान्त देखकर राजसिंह ने उसे पालकी में बैठने की आज्ञा दी।

अथ राजसमुद्रमण्डलेस्मि-
न्नरित सूत्रमुवेष्टन वितन्वन् ।
निजभूवलये सुधमसूत्र
सतत रक्षति राजसिहराण ॥२३॥

भावार्थ—राजसमुद्र के मण्डल के चारो ओर सूत्र-वेष्टन करता हुआ महाराणा राजसिंह अपने भूमडल पर धमसूत्र की सदा रक्षा करता है।

अथ परिक्रमणेषु समागता
विविधपुष्पविराजित मालिका ।
सपदि राजसमुद्रवरेऽपिना
वरुणदेवमुदे करुणाभृता ॥२४॥

भावार्थ—दयालु राजसिंह ने परिक्रमा करते समय आई हुई नाना प्रकार के पुष्पो की मालाए वरुणदेव की प्रसन्नता के लिये सुन्दर राजसमुद्र में तत्काल अर्पित कर दीं।

वसनग्रथिविधानशोभिताभि-
युवतीभि परिवेष्टितो नरेंद्र ।
भुवि नानाविधन्व्यमुन्दरीभि
परितो वेष्टित इद्र एव नून ॥२५॥

भावार्थ—गठबधन से सुशोभित रानियो को साथ लेकर महाराणा तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो पृथ्वी पर देवांगनाओ से घिरा हुआ इन्द्र ही हो।

वसनग्रथिविधानभूषिताभि-
वनिताभिर्नृपमावृत समीक्ष्य ।
जनता वक्ति हि रासमडले श्री-
हरिरेव कृतवान्ध्रुव विहार ॥२६॥

भावार्थ—गठबंधन से सुशोभित रानियों से घिरे हुए राजसिंह को देखकर लोगों ने कहा कि रासमंडल में श्री हरि ने ठीक इसी प्रकार विहार किया था।

चतुर्दशोद्भासितलोकवासि-
प्राणिस्फुरत्तृप्तिविवृद्धनाय ।
चतुर्दशक्रोशमितस्तडागो
जलेन पूर्णोऽभवदेव तूर्ण ॥२७॥

भावार्थ—चौदह लोकों में रहनेवाले प्राणियों की तृप्ति भलीभांति हो, इसके लिये चौदह कोस लंबा-चौड़ा राजसमुद्र जल से शीघ्र ही परिपूर्ण हो गया।

प्रदक्षिणायां शिविराणि पंच
श्रीराजसिंह कृतवानिहेति ।
हेतुस्तु पंचेन्द्रियजाविकार-
हृत्तु प्रवृत्तोऽयमहो सुवृत्त ॥२८॥

भावार्थ—सदाचारी राजसिंह ने प्रदक्षिणा में पांच शिविर लगाये। मानो इसका कारण यह है कि पञ्चेन्द्रिय जनित विकारों को हरने के लिये वह प्रवृत्त हुआ था।

ईषत्फलाधारकरो धरेन्द्रो
महाफलप्राप्तियुतो हि जात ।
धृत्वा समस्तान् नियमान्यमांश्च
तेनास्य पुण्यं यमयातनाहृत् ॥२९॥

भावार्थ—थोड़े से फल का आधार लेकर राजसिंह ने महान फल प्राप्त कर लिये। समस्त यम नियमों का उसने जो पालन किया उससे उस का पुण्य यम-यातनाओं का हरण करने वाला हो गया।

कमलकुंरिजस्य पार्श्वे
तटाक्तोये त्रयोदश्यां ।
एको गजो निमग्नो
झटिति प्रकटोऽभवद्गभीरेऽपि ॥३०॥

भावार्थ—त्रयोदशी के दिन धमलत्रुरिज के पास राजसमुद्र में एक हाथी डूब गया। परन्तु गहरा जल होते हुए भी वह तत्काल निकल आया।

यत्तद्वरुणेणायमुपायनाथ धरेंद्रपुण्यस्य ।
राज्ञोस्य प्रेषित इति विशेषविद्भिस्तदा प्रोक्त ॥३१॥

भावार्थ—तब जानकर लोगो ने कहा कि वरुणदेव ने पुण्यशाली नृपति राजसिंह के भेंट स्वरूप यह हाथी भेजा है।

श्रामान्नदानैघृतपक्वदानै
पक्वान्नदानवसनप्रदानै ।
द्रव्यप्रदानन्नृप आगतास्ता-
नतोपयत्तोपयुतो मनुष्यान् ॥३२॥

भावार्थ—सन्तोषी नृपति ने वहाँ आये हुए लोगो को आमान्न दान घृत-पक्व-दान, पक्वान्न-दान वस्त्र दान और द्रव्य दान देकर सन्तुष्ट किया।

एव फलाधारधरो धरेंद्र
षट्के दिनानामभवत्ततोय ।
षडृतु नीरोगतनु षडूर्मि-
विवर्जितो वाच्यमत किमन्यत् ॥३३॥

भावार्थ—इस प्रकार राजसिंह ने छह दिन फलों का आधार लिया। इस कारण वह षडूर्मि रहित और छह ऋतुओ में नीरोग शरीर वाला हो गया। इससे अधिक क्या कहा जाय ?

ततो नरेंद्रेण चतुर्दशीदिने
सुशर्मणो भमतुलारयकर्मण ।
प्रकल्पित सुदरसप्तसागर-
दानस्य वादावधिवासन मुदा ॥३४॥

भावार्थ—तदनन्तर महाराणा ने सुवर्ण तुलादान एवं सप्तसागर दान करने के पूर्व चतुर्दशी के दिन प्रसन्नतापूर्वक अधिवासन किया।

विचित्र वितान चपला पताका
सुपल्लवा वदनमालिकाश्च।
सत्सवतो भद्रकरास्तु वल्ल्यो
विनिर्मिता मंडपयुग्ममध्ये॥३५॥

भावार्थ—दोनों मंडपों में विचित्र वितान, चंचल पताकाएँ सुंदर पत्तों की बन्दनवारें तथा मंडप के चारों ओर मनोरम वल्लरियां लगाई गईं।

कृत्वार्चनं मंडपयुग्ममध्ये
भुवो हरेर्विघ्नपतेश्च वास्तो।
पुरोहितादेर्वरणं नरेन्द्र
ऋत्विग्गणस्याप्यकरोत्क्रमेण॥३६॥

भावार्थ—दोनों मंडपों में पृथ्वी विष्णु गणेश और वास्तु का पूजन कर महाराणा ने पुरोहित आदि एवं ऋत्विजों का क्रम से वरण किया।

ततश्चतुर्दिक्षु च मंडपद्वये
कोणेषु पीठेषु समस्तदेवता।
अभ्यर्च्य वास्तुप्रभृतीन्ग्रहादिका-
न्वेद्यां च देवान्प्रतिभाति भूप॥३७॥

भावार्थ—इसके बाद राजसिंह ने दोनों मंडपों में, चारों दिशाओं में, पीठों पर तथा वेदी पर वास्तु ग्रह आदि समस्त देवताओं का पूजन किया।

ततोभवन्मंडपयुग्ममध्ये
होमे परा ऋत्विज उत्तमास्ते।
श्रीवेदपाठेषु जपेषु सर्वे-
क्रियासु सक्ता नृपते सुखाय॥३८॥

भावार्थ—फिर नृपति के मंगल के लिये श्रेष्ठ ऋत्विज होम, वेदपाठ, जप आदि सभी कर्मों में जुट गये।

तत शिवाढ्य-शिविकातरस्थित
शिवप्रसादात् शिविर प्रति प्रभु ।
अकल्पयद्वाजिगति गतवलम
स चामरच्छत्रधरादिकैवृ त ।।३९।।

भावार्थ—इसके बाद प्रसन्न राजसिंह शिव की कृपा से सुखपूर्वक पालकी में बैठा और उसने घोडो को शिविर की ओर बढाया। उसके साथ चँवर-छत्र उठानेवाले लोग थे।

श्रीराणावीर शिविर प्रविश्य स
स्वल्प फलाधारविधि प्रकल्प्य च ।
जलाशयोत्सगविधेरुपस्कर
वस्तु समाज्ञापयदेष मानुपान् ।।४०।।

भावार्थ—शिविर में पहुँचकर महाराणा ने थोडा सा फलाहार किया और प्रतिष्ठा-कार्य की सामग्री तयार करने के लिये लोगो को आदेश दिया।

[इति षोडश सर्ग सम्पूर्ण]

सप्तदश. सर्ग

[अठारहवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नम ॥

सप्तदशसर्गो लिख्यते ।

आनदपूर्ण किल पूर्णिमाया
पूर्णेंदुवक्त्रो नृपराजसिह ।
रानीसमेत सपुरोहितो वा-
भवत्प्रविष्ट शुभमडपेस्मिन् ॥१॥

भावार्थ —पूर्ण-चन्द्र-वदन नृपति राजसिंह प्रसन्न होकर पूर्णिमा के दिन सुदर मडप म रानियो समेत पहुँचा। साथ म पुरोहित भी था।

आत्रा विशोभी अरिसिहनाम्ना
पुत्रेण युक्तो जयसिहनाम्ना ।
सद्भीमसिहेन सुतेन सक्त
पुत्रेण राजी गजसिहनाम्ना ॥२॥

भावार्थ — इसके अतिरिक्त राजसिंह के साथ उसका भाई अरिसिंह तथा जयसिंह, भीमसिंह, गजसिंह,

सुतेन वा सूरजसिहनाम्ना
तथेंद्रसिहाभिधसूनुना च ।
सुतेन युक्तश्च महाबहादुर-
सिहेन राजन्यगणैरुपेत ॥३॥

भावार्थ—सूरजसिंह, इन्द्रसिंह और बहादुरसिंह नामक पुत्र थे। सग में क्षत्रिय लोग थे।

प्रमरसिंहशुभाभिधपौत्रवा-
नजबसिंहमुखोत्तमपौत्रयुक्।
प्रियमनोहरसिंहसमन्वित
प्रविलसद्दलसिंहविशोभित ॥४॥

भावार्थ—उसने प्रमरसिंह, प्रजबसिंह आदि पौत्रो को साथ मे लिया। मनोहरसिंह दलसिंह,

सुतेन युक्तोपि नरायणादि-
दासेन योग्यै कुलठक्कुरैश्च।
महापुरोधोरणछोडराया-
दिकैश्च भीखूवरमन्त्रिमुख्यै ॥५॥

भावार्थ—पुत्र नरायणदास योग्य ठाकुर लोग, बड़ा पुरोहित रणछोडराय, श्रेष्ठ मन्त्री भीखू आदि उसके साथ थे।

विराजितो मडपमध्यदेशे
पूर्णाहुति पूर्णमना प्रकल्प्य।
जलाशयोत्सगविधि च तूर्णं
स पूर्णमेव कृतवान्नरेंद्र ॥६॥

भावार्थ—महाराणा मडप म विराजमान हुआ। सन्तुष्ट होकर उसने पूर्णाहुति दी और इस प्रकार जलाशय की प्रतिष्ठा विधि को शीघ्र ही सपन्न किया।

समस्तजीवावलितृप्तये च
जलाशयोत्सगमय विधाय।
मत्वा जगज्जीवनमेतदस्य
सुजीवन राणमणिर्विभाति ॥७॥

भावार्थ — इस जलाशय का निर्मल जल जगत का जीवन है यह मानकर महाराणा ने समस्त जीवों की तृप्ति के लिये उसकी प्रतिष्ठा की।

यथा दिलीपो हयमेधकर्त्ता
सत्सेतुभर्त्ता भुवि रामभद्रः।
युधिष्ठिरो वा कृतराजसूय-
स्तथैव राणामणिरेष भाति ॥८॥

भावार्थ — [राजसमुद्र का निर्माता] यह महाराणा पृथ्वी पर उसी प्रकार सुशोभित है जैसे अश्वमेध का कर्त्ता दिलीप सुन्दर सेतु का निर्माता रामचन्द्र और राजसूय करनेवाला युधिष्ठिर।

ततः सुवर्णाद्भुतसप्तसागर-
दानोल्लसन्मंडपमध्य उत्तमे।
श्रीराजसिंहः परिवारसंयुतः
प्रविष्ट एवातिविशिष्टदिष्टयुक् ॥९॥

भावार्थ — तदनन्तर सोने का अद्भुत सप्तसागर दान करने के लिये उल्लसित होकर सौभाग्यशाली राजसिंह सुन्दर मंडप में सपरिवार पहुँचा।

शास्त्रेरितः काञ्चनसप्तसागर-
दानस्य पूर्णाहुतिपूर्वकाणि वै।
कर्माणि कृत्वा किल निर्मलोत्तम-
स्वान्तः सुधर्माधिपधन्यवैभवः ॥१०॥

भावार्थ — और के 'सप्तसागरदान' के पूर्णाहुति आदि सब कर्म विधिपूर्वक करके निर्मल एवं उत्तम अन्तःकरण वाला राजसिंह इन्द्र के समान प्रशंसनीय वैभव से संपन्न हो गया।

सप्तैव कुण्डानि च काञ्चनेन
विनिर्मितान्यद्भुतरूपकाणि।
संस्थापितान्यग्रत एव तानि
सोपस्कराणि प्रमतो वदामि ॥११॥

भावार्थ—सोने के सात कुंड बनाये गये, जो सागर स्वरूप थे। सामग्रियों से पूर्ण कर उनकी स्थापना की गई। आगे मैं उन्हें क्रम से बताता हूँ—

ब्रह्मप्रयुक्त लवणेन पूर्णं
कुंडं तथैकं सपयः सकृष्णं।
परं घृताढ्यं समहेशमन्यत्
तथापरं सूर्ययुतं गुडाढ्यम् ॥१२॥

भावार्थ—पहला लवण पूर्ण ब्रह्म कुंड, दूसरा दूध से भरा कृष्ण कुंड, तीसरा घृत पूरित महेश कुंड, चौथा गुड से भरा सूर्य-कुंड,

दध्नातिधन्यं समहेद्रमन्यत्
परं रमायुक् घृतशर्करं च।
गौरीयुतं वा परमंबुयुक्तं
सप्तेति कुंडानि मयेरितानि ॥१३॥

भावार्थ—पांचवां दधि-पूरित इन्द्र-कुंड, छठा घृत और शकरा से पूर्ण रमा कुंड और सातवां जल से भरा गौरी कुंड। ये सात कुंड हैं।

एतानि सर्वाणि सवस्तुकानि
दत्त्वैव राज्ञीमहितो गृहीत्वा।
धन्याशिषो धीरपुरोहितोक्ता
स ऋत्विगुक्ता जयति क्षितीशः ॥१४॥

भावार्थ—वस्तु-पूरित इन कुंडों को प्रदान कर सपत्नीक राजसिंह ने विद्वान् पुरोहितों तथा ऋत्विजों के उत्तम आशीर्वाद ग्रहण किये।

महादानं स दत्त्वाग्र्य राजसिंहो महीपतिः।
सप्तसागरपर्यंतं भाति कीर्त्ति प्रकाशयन् ॥१५॥

भावार्थ—'सप्तसागर' महादान देकर पृथ्वीपति राजसिंह सात सागर पर्यंत अपनी कीर्ति को प्रकाशित करता हुआ शोभायमान है।

जलाशयत्यागविधौ समस्तस
ज्जलावलित्यागविधिमयेत्यल ।
कार्यो हि मत्वा शुभसप्तसागर
दान कृत दानिवरेण युक्तता ।।१६।।

भावार्थ—राजसमुद्र के उत्सग के अवसर पर मुझे सपूण जल राशि का उत्सग करना चाहिये यह विचार कर दानियो मे श्रेष्ठ राजसिंह ने सप्तसागर-दान किया जो उचित है।

ग्रथेषु दृष्ट किल सप्तसागर-
दान तदाधिक्यकृतो स्फुरत्पण ।
स्वकल्पिताध्यर्पितसप्तसागर-
दानेन वाप्टाब्धिदोभवन्नृप ।।१७।।

भावार्थ—ग्रथो मे सप्तसागर दान का ही उल्लेख है। पर उससे अधिक दान करने की प्रतिज्ञा करनेवाला यह राजसिंह स्वनिर्मित समुद्र के सप्तसागर का दान देकर अष्टसागर का दाता बन गया।

गाभीर्याद्राजसिंहोय जित्वा व सप्तसागरान्।
तान्महादानविधिना द्विजेभ्य प्रददौ मुदा ।।१८।।

भावार्थ—राजसिंह ने अपने गाभीय से सातो सागरों को जीत लिया तदा महादान की विधि से उन्हें ब्राह्मणो को सहर्ष दे दिया।

ज्योतिर्विन्मतमेकतो जलधय षट भागकेंतभुव
क्षाराब्धिप्रमम वा मते जलधय सप्तैकतो वावने ।
मध्य राजसमुद्र एष तदिद स्पष्टीकृत तत्र त-
द्दानोत्सर्गविधानयोमम मत तत्सत्यमेव ध्रुव ।।१६।।

भावार्थ—ज्योतिर्विद् के मत में पृथ्वी के एक ओर छह समुद्र और बीच में एक क्षारसमुद्र है। परन्तु मेरे मत में पृथ्वी के एक ओर सात समुद्र हैं और मध्य में यह राजसमुद्र। यह मेरा मत राजसमुद्र की प्रतिष्ठा एवं सप्तसागर-दान के विधान से स्पष्ट हो गया है, जो ध्रुव सत्य है।

रत्नाकरेर्णव विधिस्तुवाडवा-
नलस्य पोप तनुते यथा प्रभु ।
तथाकरोत्काचनसप्तसागर-
दानेन वै वाडववह्निपोषण ।।२०।।

भावार्थ—जिस प्रकार रत्नाकर द्वारा ब्रह्मा वाडवानल का पोषण करता है, उसी प्रकार सोने के सप्तसागर दान से राजसिंह ने भी वाडवानल [ब्राह्मणों की जठराग्नि] का पोषण किया।

ततस्तुलामडपसप्रविष्ट
श्रीराजसिंह परिवारयुक्त ।
तुलाप्रयुक्त सकल विधान
प्रकल्प्य पूर्णाहुतिमत्र कृत्वा ।।२१।।

भावार्थ—इसके बाद राजसिंह ने तुला मडप मे सपरिवार प्रवेश किया। तुला से सबधित समस्त विधान कर उसने पूर्णाहुति दी तथा

तुलाग्रदडस्थहरौ सुशाल-
ग्राम करे दृष्टिमय निधाय।
स्पृष्टायुध शुक्लपट सितस्रक्
शृतस्फुरत्पौत्रविचित्रवाक्य ।।२२

भावार्थ—सुदर तुला दण्ड पर स्थित विष्णु का ध्यान कर हाथ मे शालग्राम की मूर्ति ली और आयुध को स्पर्श किया। तब उसने श्वेत वस्त्र और श्वेत माला धारण कर रखी थी। वह उस समय चचल पौत्र के विचित्र वचन सुन रहा था।

सुवर्णपूरिप्रसरत्सुगन्ध

तराजुना हेमतुलामनल्पो।

तुला समारुह्य नृपावतंसो

दिव्या तुलायां प्रति दासकोटि ॥२३॥

भावार्थ — तभी वक्षाशाओं की सुगन्धयुक्त राजसिंह विशाल स्वर्ण-तुला पर प्रसन्नतापूर्वक आरूढ़ हुआ। तब उस दानवीर ने दासियों से कहा कि

सुवर्णमुद्राभिरिपूरिता शुभा

समानयध्वं जवन थैलिकाः।

दासीभिरानीता बहुशस्तुलापुटे

धृता तदा नृपतिमानतां गता ॥२४॥

भावार्थ — सुवर्ण मुद्राओं से भरी थैलियाँ दौड़-दौड़ कर लाओ। दासियों ने तुला के पलड़े पर वे थैलियाँ कई बार रखीं। फिर वे सब थैलियाँ मने गई।

अत्रान्तरे वाग्विशदप्रधो

न्यूना सुवर्णं यदि चाभवत्तदा।

सहस्त्रयो सागर एक उत्तम

आनीयतामाशु सुवर्णनिर्मितः ॥२५॥

भावार्थ — इसी बीच पृथ्वीपति राजसिंह ने फिर कहा कि यदि सोना थोड़ा हो तो सात सागरों में से सात का एक सागर शीघ्र ले आओ।

गरीबदासाख्यपुरोहितेन

तदात्तमेव नृपति प्रतीति।

अपेक्षितत्वाज्ञ हि सागरस्य

भूवना नृपेन्द्रो समता तुलायाः ॥२६॥

भावार्थ — तब पुरोहित गरीबदास राजसिंह से बोला कि हे राजन! आप नृप-चन्द्र हैं। तुला की समता के लिए आप द्वारा सागर का चाहा जाना उचित है।

एतादृश काव्यमहो सुनव्य
पुरोधसोक्तं किल भव्यभव्यं।
श्रुत्वा नृपालोभवदेव तुष्ट
स्मेराननो दानिगणे विशिष्टः ॥२७॥

भावार्थ—पुरोहित के उक्त नूतन व सुन्दर काव्य को सुनकर दान-दाताओं में श्रेष्ठ राजसिंह प्रसन्न हुआ। उसका मुख मन्द-हास्य से पूर्ण हो गया।

त्रियुग्नवसहस्रकप्रमिततोलकप्रोल्लस-
त्सुवर्णपरिपूरिता किल तुला सुवर्णोद्भवां।
विधाय पुरुहूतवत्क्षितितले महादानस-
द्विधानकृतिपूर्वकं जयति राजसिंहो नृपः ॥२८॥

भावार्थ—महादान के विधान के अनुसार सुवर्ण-तुलादान कर नृपति राजसिंह पृथ्वी पर इन्द्र के समान सुशोभित हुआ। तुला में बारह हजार तोले सोना चढ़ा।

समस्तदेवावलिशोभितेयं
दिक्पालमालाकलितातिदृश्या।
अलं सुवर्णाच्छसुवर्णपूर्णा
इमौ तुला मेरुनिभा विभाति ॥२९॥

भावार्थ—समस्त देवताओं से सुशोभित, दिक्पालों से अलंकृत प्रचुर दृश्यों से सुन्दर तथा पर्याप्त सुवर्ण से परिपूर्ण यह सुवर्ण-तुला मेरु-पर्वत के समान सुशोभित है।

सुवर्णमतुलं प्राप्य यस्तत्त्यागी स उच्चतां।
धत्ते तन्नमनं सृष्टं सुवर्णतुलयोचितं ॥३०॥

भावार्थ—अमित सोने को पाकर जो व्यक्ति उसका दान करता है वह ऊँचा उठता है। इसलिये महाराणा की तुलना में सुवर्ण-तुला का झुक जाना उचित ही था।

उच्चैः स्थितं तं नृप वीक्ष्य जाता सर्वाङ्गसुन्दरी।
सुवर्णपूर्णा विनता कुलस्त्रीव तुलाचितः ॥३१॥

भावार्थ—नृपति को उच्च स्थान पर देखकर सुवर्ण पूर्ण एवं सर्वाङ्गसुन्दरी कुलीन स्त्री के समान तुला का भुक जाना उचित था।

अमरसिंहकुमाराभिधमद्भुत
भुजगपौत्रवरं मधुरीतिभं।
कनक्रमाततुलास्थितमादरा-
त्समतनोन्नृपतिः प्रियनामयः ॥३२॥

भावार्थ—भाग्यशाली एवं मधुरभाषी ज्येष्ठ पौत्र अमरसिंह को राजसिंह ने भादर एवं स्नेह से सोने की सुन्दर तुला पर बैठा लिया।

एव तुलादानविधि प्रकल्प्या-
भवत्कृतार्थो नृपराजसिंहः।
पूर्णा तुला सत्रुपते सद्वचनो
विचित्रमस्तीति बुधोचितमध्ये ॥३३॥

भावार्थ—इस तरह तुला दान की विधि सम्पन्न कर नृपति राजसिंह कृतार्थ हो गया। तब विद्वानों ने राजसिंह से कहा कि तुला पूर्ण हो गई। विद्वानों के इस कथन में विचित्रता है।

न ममेति त्यागवाक्याद्दाने मान तथेरितात्।
कर्मदानोद्भवसुख राजसिंह त्वयार्जितं ॥३४॥

भावार्थ—दान और यज्ञ के सबंध में त्यागपूर्ण यह बात कहकर कि यह मेरा नहीं है हे राजसिंह! आपने कर्म जन्य एवं दान जनित सुख प्राप्त कर लिया।

जलाशयोत्सर्गसुमन्त्रमागर
दानस्फुरत्स्वर्णतुलाभिधानकं।
कर्मत्रय निर्मितवान्नरेशः
पापत्रय हन्तुमिहेति कारणात् ॥३५॥

भावार्थ—तीन प्रकार के पापों का नाश करने के लिये महाराणा ने यहाँ तीन तरह के कर्म किये— जलाशय की प्रतिष्ठा, 'सप्तसागर' और सुवर्ण तुला का दान।

त्रयीमहात्र्यंममथत्रत्व-
इते तु लोकत्रयतुष्टिसृष्ट्यै ।
गुणत्रयोद्भूतविकारशान्त्य
त्रिमूर्तिमद्ब्रह्मसमर्पणाय ।।युग्म।। २६।।

भावार्थ—तीन महापातक समय बनें, तीनों लोकों में सन्तोष उत्पन्न हो तीनों गुणों से उत्पन्न विकारों का शमन हो तथा यह संसार त्रिमूर्तिमय ब्रह्म के सम्मुख अपना समर्पण कर दे इसलिये भी उक्त तीन कर्म किये गये।

त्रिभिमखवरैभिरथाम्य जातं
शताश्वमेधीयफलं हि मन्ये ।
तदिन्द्रताङ्कुरणीन्द्रता तद्
श्रीराजसिंहस्य विभाति भव्या ।।३७।।

भावार्थ—मैं मानता हूँ कि इन तीन यज्ञों से महाराणा को सौ अश्वमेध यज्ञों के फल की प्राप्ति हुई है। इस प्रकार इन्द्रत्व प्राप्त करनेवाले राजसिंह का पृथ्वी पर प्रभुत्व अतिशय सुशोभित है।

ग्रामौघदानं गजराजिदानं
हयालिदानं धरणीप्रदानं ।
गोवृन्ददानं नृपतिः प्रकल्प्य
नानाविधं दानमयातितुष्टः ।।३८।।

भावार्थ—तत्पश्चात ग्राम दान, गज दान अश्व दान पृथ्वी दान एवं कई प्रकार के अन्य दान देकर राजसिंह सन्तुष्ट हुआ।

तुलाद्दत्त मेरुरहो गृहीत-
स्त्वया यदा दत्त तदैव जात ।
स मार श्रीधर एव द्रुहो
हिरण्यगर्भश्च पविस्वरूप ॥३९॥

भावार्थ—हे राजन् ! तुला दान करने के लिये आपने ज्यों ही तुला का मेरु ग्रहण किया त्यों ही मार शकर, श्रीधर ब्रह्म हिरण्यगर्भ और पवि स्वरूप हो गये। यह आश्चर्य है।

द्विजपति गुरुभास्वन्मादन स्वर्णपूर्णो
विविधविबुधगेहा मण्डपाडम्बराभा ।
दिगधिपहतशोभा सिद्धगन्धर्वगीतोऽ-
भवदनुलतुला ते मेरुरेव द्वितीय ॥४०॥

भावार्थ—हे राजसिंह ! आप की यह अतुलनीय तुला दूसरा मेरु पर्वत ही है। देखिये, द्विजपति एवं गुरु से सुशोभित होकर यह आनन्द दे रही है स्वर्ण से परिपूर्ण है यहाँ अनेक विबुध विराजमान हैं मण्डप के आडम्बर शोभा पा रहे हैं दिशाओं के अधिपतियों से यह अलङ्कृत है तथा सिद्ध और गन्धर्व इसकी स्तुति कर रहे हैं ।

आसीद्भास्करतस्तु माधवगुरोऽस्माद्रामचन्द्रस्तत
स्सर्वेश्वरक कठाडिकुलजा लक्ष्म्यादिनाथस्तत ।
तैलगोस्य तु रामचन्द्र इति वा कृष्णोस्य वा माधव
पुत्रोभूर्मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमा ॥४१॥

भावार्थ—भास्कर का पुत्र माधव था। माधव के पुत्र हुआ रामचन्द्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर। सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ जो कठोडी कुल में उत्पन्न हुआ। उसके हुआ तैलग रामचन्द्र। उस रामचन्द्र के ब्रह्मा शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए— कृष्ण माधव और मधुसूदन

यस्यासी मधुसूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजाऽ-
भूमाता रणछोड एप कृतवा राजप्रशस्त्याह्वय।
काव्य राण गुणौघवर्णनमय वीराकयुक्त महद्
पूर्णं सप्तदशोत्र सर्ग उदगाद्वागर्थसगस्फुट ॥४२॥

भावार्थ—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है, उस रणछोड ने राजप्रशस्ति नामक काव्य की रचना की। इस काव्य मे महाराणा के गुणों का वर्णन है तथा योद्धाओं का सुन्दर जीवन-चरित अंकित है। यहाँ उसका सत्रहवाँ सर्ग सपूर्ण हुआ, जिसके शब्द और अर्थ दोनों सुन्दर हैं।

[इति सप्तदश सर्ग सम्पूर्ण।]

अष्टादश. सर्ग

[उन्नीसवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नम ॥

घासो निम्बाहुणो तथा सिरयल सालोल भालोदको
मजभेरोपि घनेरिया धनमयो भाडादिका सादडी ।
प्रवेगी शुभ ऊसरोल उदितश्रीमानमानो पुन
र्भावो द्वादशसंख्यया परिमिताग्रामानिमानेकदा ॥१॥

भावार्थ—घासा रूणा सिरयल सालोल भालोद मजभेरा धनेरिया, भाड-सादडी, भावरी ऊसरोल ममाना और भावा नाम के बारह गाँव जिनको किसी समय

श्रीमद्राजसमुद्रसुन्दरतरोत्सर्गग्रहागीकृतान्
श्रीराणामणिराजसिंहनृपतिस्तस्य पुरोधोविधि ।
विप्राणाय गरीबदासविलसन्नाम्ने मुदा दत्तवा
सर्वाध्यक्षवराय सर्वविषये चित्तानुसंधायिने ॥२॥

भावार्थ—स्वीकार किया गया था राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के अवसर पर महाराणा राजसिंह ने सबों की देख रेख करनेवाले एवं सब विषयों के परामर्शदाता पुरोहित गरीबदास को सहर्ष प्रदान किये।

गरीबदासाख्यपुरोहिताय
ग्रामानिमान्द्वादशसमितांस्तु ।
दत्त्वा ददौ ब्राह्मणमंडलाय
ग्रामान्वरान् भूरिहलप्रमाणान् ॥३॥

भावार्थ—पुरोहित गरीबदास को उपर्युक्त बारह गाव प्रदान कर राजसिंह ने ग्रन्य ब्राह्मणों को ग्रनेक गाँव तथा कई हलवाह भूमि प्रदान की।

ब्रह्मार्पण कर्म समस्तमेतद्
ब्रह्मण्यदेव परिकल्प्य नून।
गृह्णन् द्विजेभ्य श्रुतिनिर्मिताशी
शतं जयत्येष महीमहेन्द्र ॥४॥

भावार्थ—समस्त कर्म को ब्रह्मार्पण करके धर्म-निष्ठ नृपति ने ब्राह्मणो से वेदोक्त ग्राशीर्वाद प्राप्त किया—"यह पृथ्वीपति सौ वर्ष पर्यन्त शासन करे।"

वर्षति मेघा बहवो मुहु शनै-
र्दिनेश्र[ते]नानुमित यदग्रत।
दृष्ट्वोत्सव ते हरिरेष सार्थक
कर्त्तुं सहस्र स्वदृशा समागत ॥५॥

भावार्थ—हे राजन्! बहुत से मेघ यहा दिन मे बार बार मन्द-मन्द बरस रहे हैं। ग्रत ग्रनुमान है कि ग्राप के इस उत्सव को प्रत्यक्ष रूप में देखकर ग्रपने सहस्र नेत्रों को सफल करने के लिये इन्द्र स्वयं ग्रा पहुँचा है।

यत्पौर्णमास्या कृतवान्नरेंद्र
कर्मत्रय तेन तु पूर्णिमाया।
यथैव चद्र परिपूर्णकांति-
स्तथा प्रपूर्णातिरुचिर्नृप स्यात् ॥ ६॥

भावार्थ—महाराणा ने उपर्युक्त तीन काम पूर्णिमा के दिन सपन्न किये। ग्रत उसकी रुचि उसी प्रकार परिपूर्ण हो जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा की कान्ति पूर्ण होती है।

मनोरथ पूर्णतमोस्य भूया-
त्फल तथा स्यात्परिपूर्णमेव।
पूर्णं पर ब्रह्म तथातितुष्ट
प्रमोदसम्पूर्णतमो नृपोस्तु ॥७॥

भावार्थ —चांदी के समान उज्ज्वल यश प्रकाश को फैलाते हुए, उदार चारण केसरीसिंह बारहठ ने चांदी का तुलादान किया।

अस्मिन् दिने राजसमुद्रनामत्र
प्राप्तस्तडागो गिरिमंदिरं महत्।
प्राप्तं नरेंद्रेण च राजमंदिरं
राजादिशब्दं नगरं पुरं तथा ॥१६॥

भावार्थ —इस दिन महाराणा ने तडाग का नाम राजसमुद्र रखा। इसी प्रकार उसने नगर को तथा पर्वत पर बने विशाल प्रासाद को राजनगर और राजमंदिर नाम दिया।

अथात्र घस्रे तु सहस्रनेत्र-
समानशक्तिर्विराजमानः।
श्रीराजसिंहो बलिकर्णभोज-
श्रीविक्रमार्कोपदानवीरः ॥१७॥

भावार्थ —उसी दिन इन्द्र के समान वभवशाली एवं बली कर्ण, भोज तथा विक्रमादित्य के समान दानवीर राजसिंह ने

पूर्वैरिता या पवराधरास्ता
पक्वान्नशैलानपि शर्कराद्रीन्।
गुडाद्रिखंडादिकपर्वतांश्च
ददौ द्विजेभ्य इहागतेभ्यः ॥१८॥

भावार्थ —पूर्वोक्त पांचों पक्वान्नों शक्करा गुड़ खांड आदि के पहाड़ वहाँ आये हुए ब्राह्मणों को प्रदान किये।

ततो गिरीणामभवत्वलक्ष्यता
चित्रं हि तेषामभवज्जनुः पुनः।
आनीय धान्यादि मुरायरंजनं
कृतं कृतार्थैरिह सेवया प्रभोः ॥१९॥

भावार्थ—तब वे पर्वत अदृश्य हो गये। लेकिन आश्चर्य है कि स्वामी की सेवा से कृतार्थ हुए पुण्यात्मा लोगों ने धान्य आदि लाकर वहाँ पहाडों को फिर से जन्म दे दिया।

नतादृश जन्म न वाप्यलक्ष्यता
ईदृग्गिरीणामभवज्जनु पुनः।
एते स्थिता एव तु याचकावले-
र्गृहव्रजे मित्र न चित्रमत्र तु ॥२०॥

भावार्थ—पर्वतों का इस प्रकार न तो जन्म न लोप और न पुनर्जन्म हुआ है। वे तो याचकों के घरों में पहुँच गये हैं। इस कारण हे मित्र! यहाँ आश्चर्य करने जैसी बात नहीं है।

अनोत्सवे सद्घृतवापिका पुन-
र्मुहुः कृता कार्यकरैर्महाजनैः।
मुहुर्मुहुस्ता रिरिचुर्न चित्रता
पानीयवाप्यो रिरिचुस्तदद्भुतम् ॥२१॥

भावार्थ—उत्सव में काम करनेवाले महाजनों ने घृत की अनेक सुन्दर वापिकाएँ बनाईं, जिनका निरन्तर उपयोग होने पर भी वे खाली नहीं हुईं। यह आश्चर्य की बात नहीं है। आश्चर्य यह है कि सब लोगों द्वारा उपयोग होने पर पानी की वापियाँ खाली हो गईं।

अस्य श्रीप्रेक्षिलोकोक्तिर्दिक्पालांशयुतो ह्ययम्।
इन्द्रप्रचेतोधनदत्र्यम्बकांशाधिकस्तथा ॥२२॥

भावार्थ—राजसिंह के ऐश्वर्य को देखकर लोग कहने लगे कि यह दिक्पालों के अंश से युक्त है तथा इसमें इन्द्र वरुण, कुबेर और शिव का अंश अधिक मात्रा में है।

ततो बहुतर भव्य द्रव्य दत्तं पुरोधसे ।
ऋत्विग्भ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च प्रभुणा सादर मुदा ॥२३॥

भावार्थ—इसके बाद महाराणा ने पुरोहित को तथा ऋत्विजों एव ब्राह्मणों को बहुतसा द्रव्य सादर एव सहर्ष प्रदान किया।

प्रभो राजसमुद्रस्य [illegible] गतरगक ।
तटस्थद्विजदारिद्र्यद्रुमा दूरीकृता ध्रुव ॥२४॥

भावार्थ—हे स्वामिन् ! राजसमुद्र की लहराती हुई उत्तुग तरगों ने तट पर बैठे ब्राह्मणों के दारिद्र्य रूपी वृक्षों को सदा के लिये बहा दिया है।

मन्ये राजसमुद्रस्य लोल सलिल[illegible] ।
याचकालेदरिद्रात्पक्वप्रक्षालन कृत ॥२५॥

भावार्थ—राजसमुद्र की तरगायित जल राशि ने मानो याचकों के दारिद्र्य रूपी पक को धो दिया है।

वसन्राजसमुद्रस्य तटे सद्द्वारवतीपुरि ।
द्राग्दरिद्रसुदाम्न मे श्रीद स्या श्रीपते नृप ॥२६॥

भावार्थ—हे श्री पति राजसिंह ! राजसमुद्र के तट पर द्वारका [कांकरोली] नगरी मे रहते हुए आप मुझ दरिद्र सुदामा को अविलम्ब लक्ष्मी प्रदान करें।

तट राजसमुद्रस्य वसन् श्रीश नृप श्रिय ।
द्राग्दरिद्रसुदाम्ने मे देहि वाक्तडुलार्पणात् ॥२७॥

भावार्थ—हे श्री पति नृप ! आप राजसमुद्र के तट पर विराजमान हैं और मैं दरिद्र सुदामा हू जिसने वाणी रूप तदुल अर्पण किये हैं। अत मुझे अविलब लक्ष्मी प्रदान करें।

सप्तसागरदानेन तत्सप्तपुण्यार्जित ।
द्विजाना दीर्घदारिद्र्य प्रभो दूरीकृत त्वया ॥२८॥

भावार्थ—हे स्वामिन ! 'सप्तसागर' दान करके आपने ब्राह्मणो के सात पीढ़ियो से अर्जित दीर्घ दारिद्र्य का नष्ट कर दिया।

सप्तसागरदानस्य सुवर्णौघप्रवाहत ।
दूरीकृतस्त्वया राजर्द्विजदारिद्र्यसद्द्रुम ॥२६॥

भावार्थ—हे राजन ! 'सप्तसागर' दान की सुवर्ण-राशि के प्रवाह से आपने ब्राह्मणों के दारिद्र्य रूपी विशाल वृक्ष को बहा दिया है।

दत्तैर्हेमतुलास्वर्णै सुवर्णगिरिसन्निभान् ।
कुर्व सता गृहास्त्व तद्दारिद्र्यदमनो ध्रुव ॥३०॥

भावार्थ—सोने की तुला का स्वर्ण दान कर आपने सज्जनो के घरो को सुमेरु पर्वत के समान बना दिया और इस प्रकार उनके दारिद्र्य का दमन हमेशा के लिये कर दिया।

तुलासुवर्णदानेन राजसिंह प्रभो त्वया।
दूरीकृता द्राग्विदुषामतुला साधमर्णता ॥३१॥

भावार्थ—हे महाराणा राजसिंह ! तुला के स्वर्ण दान से आपने विद्वानों के अमित ऋण को अविलंब दूर कर दिया।

— — — —
— — — —
— — — ख
शेते राजसमुद्ररूपमपर रूप दधानोंबुधि ॥३२॥

भावार्थ—राजसमुद्र का दूसरा रूप धारण कर सबुधि सो रहा है [?]

मध्ये प्रोल्लोलकल्लोला फेना स्फटिककूटभा ।
धारसा गरसास्तीरे भात्यस्य नवका यथा ॥३३

भावार्थ —राजसमुद्र में उत्ताल तरंगें और स्फटिक-राशि के समान फेन तथा उसके तट पर प्रमासक्त सारस एवं सुन्दर बगुले शोभा पाते हैं।

मुक्त्वा स्वीय गृहं च वसति स्म तटं यस्य सद्द्वारका ता
कृत्वा रम्यां पुरीं द्राग्यवनभयमयं केशवोद्धारकेश।
गोमत्युद्यत्सगम [u u u ?] त्रिगदसच्चक्रचक्रशंखपद्म
श्रीराणाराजसिंह प्रभुवर भव श्रीतडागस्समुद्र ॥३४॥

भावार्थ —शंख चक्र गदा और पद्म को धारण करनेवाले द्वारकेश केशव ने यवन से भयभीत होकर अपना घर छोड़ दिया। वह अब राजसमुद्र के तट पर जहां गोमती नदी का विशाल संगम है सुन्दर द्वारका [कांकरोली] नगरी बसाकर वहां निवास कर रहा है। इस प्रकार आकर राजसमुद्र के तट पर कृष्ण के निवास करने से हे स्वामि श्रेष्ठ महाराणा राजसिंह! आप का यह जलाशय समुद्र बन गया है।

बिभ्राणः सेतुबन्धं गिरिवररचिरं पूरितो जीवनौघै-
र्नानानद्याससंगः शिवसदनयुतः पोतपात्या प्रसक्तः।
नतावत्या समुद्रस्तदधिक इति ते भूपते श्रीतडागो
मर्याशां वाडवाग्निं कलयति न च वा क्षारनीरं कदाचित् ॥३५॥

भावार्थ —यहां सेतुबन्ध विद्यमान है बड़े बड़े पर्वतों से यह सुशोभित है इसमें अगाध जल है अनेक नदियां इसमें गिरी हैं यहां शिव का मंदिर बना हुआ है तथा इसमें अनेक जहाज तरते हैं। हे पृथ्वीपति! इन विशेषताओं से आप का यह तडाग समुद्र ही नहीं प्रत्युत उससे भी बढ़कर है। क्योंकि यह मर्यादा वाडवाग्नि और खारे जल को धारण नहीं करता है।

प्रियतममथुरायां मंडलाच्चटकाल-
यवनकलितभीत्यागत्य गोवर्द्धनेश।
वसति तव तडागस्यान्तिके त्वन्मुदे त-
ज्जलधिमपरमेनं राजसिंह नि जाने ॥३६॥

भावार्थ—हे राजसिंह! इस सरोवर को मैं दूसरा समुद्र मानता हूँ। क्योंकि प्रचंड कालयवन के भय से अत्यन्त प्रिय मथुरा-मंडल से आकर गोवर्द्धनेश, आपकी प्रसन्नता के लिये, आपके इस तडाग के निकट रहते हैं।

अमावास्या विना नव स्पृश्य सिंधु सगजन।
तडागस्ते तदधिक सदास्पृश्यो विगर्जन ॥३७॥

भावार्थ—अमावस्या को छोडकर गरजते हुए सिंधु को छूना मना है। परन्तु आप का यह तडाग समुद्र से बढ़कर है। क्योंकि यह गरजता नही है और इस कारण सदा स्पृश्य है।

समुद्रयातु स्वीकारो न कलौ यातुरत्र तु।
त्वया कृतो यत्स्वीकारो वीराय सिंधुतोधिक ॥३८॥

भावार्थ—कलियुग मे समुद्र यात्रा निषिद्ध है। लेकिन यहाँ आपने उसे स्वीकार किया है। अत हे वीर! राजसमुद्र सिंधु से बढकर है।

श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमत्प्रताप सुत-
स्तस्य श्री अमरेश्वरोस्य तनय श्रीकर्णसिंहोस्य वा।
पुत्रो राणाजगत्पतिश्च तनयोस्माद्राजसिंहोस्य वा
पुत्र श्रीजयसिंह एष कृतवान्वीर शिलालेखित ॥३९॥

भावार्थ—राणा उदयसिंह के प्रताप, उसके कर्णसिंह, उसके जगतसिंह उसके राजसिंह तथा राजसिंह के जयसिंह हुआ। उस वीर ने यह शिलालेख उत्कीर्ण करवाया।

पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमाख्ये दिने
द्वात्रिंशे मतवत्सरे नरपते श्रीराजसिंहप्रभो।
काव्य राजसमुद्रमिष्टजलधे सृष्टप्रतिष्ठाविधे
स्तोत्राक्त रणछोडभट्टरचित राजप्रशस्त्याह्वय ॥४०॥

भावार्थ—महाराणा राजसिंह ने सवत् १७३२ माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन जिसकी प्रतिष्ठा करवाई उस मधुर सागर राजसमुद्र का स्तुतिपरक यह 'राजप्रशस्ति काव्य है। इसकी रचना रणछोड भट्ट ने की।

॥ इति सर्ग १८ ॥

एकोनविंशः सर्ग

[बीसवीं शिला]

॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

लक्ष्मीस्तामिचन्द्रामृतममृतविषसत्कामधुक्शाङ्ग धन्व-
प्राकट्य पारिजातामरयुवतिमणीमत्सुराद्योदयश्च।
मखाच्छोच्च श्रवोयुगिदशगजमहाभगसभूनिरद्धा
धन्वतयुद्भवो वायुभिरिति भवत क्षीरसिंधुस्तडाग ॥१॥

भावार्थ—हे राजन ! लक्ष्मी, सुन्दर कांतिमान चन्द्र, अमृत, विष कामधेनु, शाङ्ग धनुष पारिजात देवांगना, कौस्तुभमणि सुरा मद्य उच्च श्रवा ऐरावत, महातरग धन्वन्तरि आदि जल से प्रकट हुए हैं। आप का यह सरोवर भी क्षीरसिंधु है।

कुंभोद्भवप्रकरकृष्टजलो विशुष्को
जातस्ततो लवणनीरमय समुद्र ।
कुंभोद्भवप्रकरकृष्टजलोतिवृद्धो
मिष्टस्त्वक्षितिप राजसमुद्र एप ॥२॥

भावार्थ—कुंभ से उत्पन्न अगस्त्य मुनि ने जब समुद्र की जल राशि को खींचा तब वह सूख गया। फिर पानी खारा हो गया। परन्तु हे महाराणा! कुंभ-कुल में उत्पन्न आप ने जब रहट आदि से जल को खींचा तब आप के राजसमुद्र में जल की वृद्धि हो गई और वह मीठा हो गया।

श्रीद्वारकोद्भवकृते परिमुक्तभूमि-
न्यून व्यचिसदुदधि किल कृष्णवाक्यात् ।
यत्तीरभिन्नधरणीपुरवामिरत्नो
नून सुपूर्ण इति तेऽब्धिवरस्तडाग ॥३॥

भावार्थ —द्वारका को बसाने के लिये कृष्ण के कहने पर समुद्र ने धरती छोड़ दी। इस कारण उसमें कुछ कमी है लेकिन यहाँ तो राजसमुद्र में नहीं बल्कि उसके किनारे अलग से धरती पर बसे नगर में कृष्ण, निवास कर रहा है। अतः आपका यह सरोवर पूरा समुद्र है।

खाते षष्टिसहस्रभूपतनया पूर्त्तौ सहस्राण्ययु-
गगाद्या लवणीकृतावपि परोऽय सेतुर्नदेंबुधे।
खाते पूर्त्तिपु मिष्टसृष्टिपु भवान्यसेतुवधेऽस्य त-
त्सिंधारैक्वकृतेरविघ्नसमया मन्यामहे धन्यता ॥४॥

भावार्थ —राजा सगर के साठ हजार पुत्रों ने समुद्र को खोदा था, गंगा आदि हजारों नदियों ने उसे भरा था खारा उसे किसी दूसरे ने किया था तथा उस पर सेतु का निर्माण भी किसी अन्य द्वारा हुआ था। परन्तु हे राजसिंह! यह सिन्धु अकेले आप की कृति है। इसे आप ही ने निरन्तर खोदा है, जल से पूर्ण किया है मीठा बनाया है और इस पर सेतु भी बाँधा है। हम इसे समुद्र से बढ़कर मानते हैं।

अल्पस्य साम्यं न ददाति कश्चि-
त्समस्य साम्यं न च दृष्टमस्य।
ततो महत्त्वेन जलाशयोऽयं
प्रोक्तः समुद्रः कविभिर्न चित्रं ॥५॥

भावार्थ —महान् वस्तु की तुलना छोटी वस्तु से कोई नहीं करता। न समान वस्तु से समान वस्तु की तुलना देखने में आई है। तुलना के इस महत्त्व को स्वीकार कर कवियों ने इस सरोवर को समुद्र जो कहा है उसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

जले निमग्ना ये ग्रामा न ते मग्ना महीपते।
ते लग्ना वरुणद्वारे भग्नास्तत्पापपक्तयः ॥६॥

भावार्थ —हे पृथ्वीपति! जो गाँव जल मग्न हो गये हैं वे डूबे नहीं हैं वरुण के द्वार पर लगे हुए हैं। उनके पाप समूह नष्ट हो गये हैं।

येषां विशिष्टग्रामाणां क्षेत्राण्यत्र जलाशये ।
मग्नानि तीर्थक्षेत्राणि तानि जातानि भूपते ॥७॥

भावार्थ—हे राजन्! इस जलाशय में बड़े बड़े गाँवों के जो खेत डूब गये हैं, वे तीर्थ क्षेत्र बन गये हैं।

ये जलमग्ना जीवनदा स्थले ते जीवनप्रदाः ।
यादसां च नृणां ग्रामा गुणग्रामभृतोऽभवन् ॥८॥

भावार्थ—जल मग्न होकर गाँव अधिक महत्त्व के बन गए हैं। कारण कि पहले तो वे स्थल पर रहनेवाले प्राणियों को जीवन देते थे पर अब जल-जन्तुओं और मनुष्यों दोनों को जीवन दे रहे हैं।

भूस्था वृक्षा जले मग्नास्तथा बीजाङ्कुरैर्द्रुमाः ।
जलेऽभवन्वाटिकाता वरुणस्य त्वया कृता ॥९॥

भावार्थ—पृथ्वी पर स्थित जो वृक्ष जल में डूब गये हैं उनके बीजाङ्कुरों से जल में अनेक वृक्ष उत्पन्न हो गये हैं। हे राजसिंह! इस प्रकार आपने वरुण के लिए वाटिका लगा दी है।

बोधिद्रुमो जलस्थायी तपस्तपति दुष्करं ।
प्रवालमालया शाखाङ्गुलीभिः सार्थकाह्वयः ॥१०॥

भावार्थ—जल में रहकर बोधिवृक्ष अपनी शाखा रूपी अंगुलियों में प्रवाल-माला अर्थात् अंकुरों को धारण कर कठोर तप कर रहा है। अतः उसका यह नाम सार्थक है।

वटवृक्षाः स्थितास्तोये तपन्ति प्रचुरं तपः ।
क्षालयन्ति जटाजालं नूनमेतेऽत्र योगिनः ॥११॥

भावार्थ—जल में रहकर वटवृक्ष यहाँ प्रचुर तपस्या कर रहे हैं और अपने जटा-जाल को धो रहे हैं। सचमुच ये योगी हैं।

सत्कीर्तिस्वर्णदीभृद्यदुपतिसहितप्रातकालिंदिकायु
स्नानच्छायानुमानात्सपनत्र रगजोत्कुंभसिंदूरसगात् ।
भ्राजत्सारस्वतौघस्तदिति नरपते ते तडाग प्रतापो
न्यग्रोधा भ्रक्षयाख्या प्रविदशति पद युक्तमस्मिन्निकाम ॥१२॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप का यह जलाशय प्रयाग है। क्योंकि इसमे आप की कीर्ति स्वरूप गगा शोभा पा रही है। नीली छाया के कारण ऐसा आभास होता है कि कृष्ण के साथ आकर यहा यमुना सुशोभित है। स्नान करनेवाले हाथियों के कुंभस्थलों पर लगे सिन्दूर के ससर्ग से यहा सरस्वती नदी का प्रवाह विद्यमान है। अक्षयवट के रूप में भी यहाँ वट वृक्ष स्थित हैं।

यथा स्थले तथा जले बुधा वसति जात्र ।
विचित्रमत्र शाखिनस्तथा जयति भूपते ॥१३॥

भावार्थ—हे पृथ्वीपति ! स्थल पर जिस प्रकार विद्वान लोग रहते हैं, उसी प्रकार जल में जन्तु। आश्चर्य है कि दोनो शाखावर्त्ती हैं।

वनस्थिता द्रुमा सर्वे वनस्था एव तेऽभवन् ।
युक्त विशेषा धर्मोऽत्र वरुणस्योपयोगत ॥१४॥

भावार्थ—जो वृक्ष पहले वन मे थे, वे अब भी वन में हैं। वरुण के सम्बन्ध से उनमें यह विशेष धर्म आ गया है जो उचित है।

पूर्वे यत्र वने सिंहगर्जनानि जलाशये ।
जातान्यत्र जलकल्लोलगर्जनानि जयत्यलम् ॥१५॥

भावार्थ—हे राजन् ! पहले जिस वन में सिंह गर्जनाएँ होती थी, वहा जलाशय के बन जाने पर जल-कल्लोल के गर्जन हो रहे हैं।

वरुणान्यतस्तोयानयनात्स जितस्त्वया ।
प्रेक्षते त न्मृगादयस्त्वा पद्मच्छद्मपटाक्षर्व ॥१६॥

भावार्थ —हे राजन ! वरुण के घर से जल लाकर आपने उसे जीत लिया है। अत उसकी स्त्रियां आपको मानो कमल कटाक्षा से देख रही हैं।

कमलाक्षस्त्वयानीतस्तडागे　　वरुणालयात् ।
कमलाक्ष　स्थापितोत्र　कमलादानतत्पर ॥१७॥

भावार्थ —हे कमल नयन दानवीर ! वरुणालय से विष्णु को लाकर आपने उसकी इस तडाग पर स्थापना की है।

प्रदक्षिणास्वागता या माला भूपाल तास्त्वया ।
तडागे वरुणप्रीत्यै प्रेषिता करुणानिधे ॥१८॥

भावार्थ —हे करुणानिधि ! प्रदक्षिणा करते समय जो मालाएँ प्राप्त हुई, उन्हे आपने वरुण को प्रसन्न करने के लिये इस सरोवर म अर्पित कर दिया।

वटाना जलमग्नाना जटा राजति तत्र ते।
मीना गृहाणि कुर्वति नीडानि पतगा इव ॥१९॥

भावार्थ —राजसमुद्र मे जल मग्न वटवृक्षा की जटाएँ सुशोभित हैं। उनमे मछलियाँ अपने घर बनाती हैं जिस प्रकार पक्षी अपने नीड का निर्माण करते हैं।

निर्मलो　　जीव क्षावृत्द्विजरक्षणवृत्त्वया ।
नवसूत्रार्पणेनाय　　तडागो द्विजतामित ॥२०॥

भावार्थ —जीवा एव द्विजो की रक्षा करनेवाले इस निर्मल तडाग का आपने नौ सूत्रो से जो परिवेष्टन किया है उससे यह ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो गया है।

पूर्वपश्चिमसुदक्षिणोत्तर-
　　देशभूमिपु न दृष्टिगोचर ।
ईदृश खलु जलाशया दृध
　　सिंधुरुक्त इति नात्र चित्रता ॥२१॥

भावार्थ पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा के किसी भी प्रान्त में ऐसा जलाशय देखने में नहीं आया है। विद्वानों ने इसे सिंधु जो कहा है उसमें आश्चर्य करने जैसी बात नहीं है।

श्रीराजनगरस्यास्य बहिरद्भुतभूतले।
विराजते राजसिंहो गाडामण्डलमातनोत् ॥२२॥

भावार्थ —राजनगर के बाहर अद्भुत भूतल पर गाडामण्डल[1] बनाकर राजसिंह सुशोभित हुआ।

तत्र द्विजातयो नानादेशात्प्राप्ताः सुवेषिणः।
षट्चत्वारिंशदान्यायुतसहस्रमितयः स्थिताः ॥२३॥

भावार्थ—नाना देशों से चलकर वहां छियालीस हजार द्विज उपस्थित हुए। उन्होंने सुन्दर वेष धारण कर रखे थे।

एतावतो ग्रामनामसहिता अधिकाः पुनः।
ब्राह्मणास्त असंख्याता आगता नात्र संशयः ॥२४॥

भावार्थ—इन लोगों के गावों और नामों का पता था। इनके अतिरिक्त और भी असंख्य ब्राह्मण आये। इसमें संशय नहीं है।

ततो गरीबदासाख्यः पुरोहितवरो हितः।
तत्र स्थित्वा स्वयं स्वाज्ञाकारिणः कार्यकारिणः ॥२५॥

भावार्थ —तत्पश्चात् बड़ा पुरोहित गरीबदास वहाँ उपस्थित हुआ। अपने आज्ञाकारी कर्मचारियों को

स्थापयित्वा स्वहस्ताभ्यां तद्धस्तैरप्यहर्निशं।
सप्तसागरदानस्य तुलादानस्य वा प्रभो ॥२६॥

---

१ गाडामण्डल=हाता।

भावार्थ—नियुक्त कर उसने गुरु ने और उन लोगों ने अपने हाथों से, रात-दिन राजसिंह के सप्तसागर एवं तुलादान का

धन श्रीपट्टराज्ञ्याश्च तुलाद्रव्यं तथा बहु ।
स्वर्णार्पित स्वर्णतुलादानस्य बहु द्रव्य ॥२७॥

भावार्थ—धन पटरानी के तुलादान का प्रचुर द्रव्य, पुरोहित को सोने की तुला का अमित स्वर्ण तथा

रणछोडरायकृत तुलाद्रव्य तदामित ।
दत्त्वा पूर्वोक्तविप्रेभ्य सदापूर्वमुदान्वित ॥२८॥

भावार्थ—रणछोडराय के तुलादान का बहुत सा द्रव्य पूर्वोक्त ब्राह्मणों को दिया। पुरोहित को तब इतना हर्ष हुआ, जितना पहले कभी नहीं हुआ। इस प्रकार दानों की धन राशि देकर

विवेकादरपूर्व स ता व्यधात्तुष्टमानसान् ।
अन्नदान बहुविध कृतवांस्तत्र भूपति ॥२९॥

भावार्थ—उसने विवेक और आदर से उन ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया। राजसिंह ने वहाँ अनेक प्रकार का अन्न दान दिया।

तत सभामडपस्थो राजसिंहो महीपति ।
द्विजेभ्यो याचकेभ्यश्च चारणेभ्यो दिवानिश ॥३०॥

भावार्थ—तदनन्तर सभामडप स्थित पृथ्वीपति राजसिंह ने रात दिन ब्राह्मणों को याचकों को चारणो को

वन्दिभ्य सर्वलोकेभ्य सुवर्ण दिव्यरगाक ।
रूप्यमुद्रास्तथाऽमुद्रा अलकारास्तथा बहून् ॥३१॥

भावार्थ—वन्दीजनों एव अन्य सब लोगों को उत्तम स्वर्ण रुपये प्रचुर आभूषण

वासांसि हेमहृद्यानि वाजिनो जितवाजिन ।
उत्तुगमातगगणा दत्वा सनोदमादधे ।।३२।।

भावार्थ—जरीन वस्त्र, वेगवान अश्व तथा बडे बडे हाथी प्रदान किये । दान देकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ ।

हलाना बहलाना च ताम्रपत्राणि भूपति ।
ग्रामाणा विलसद्धान्यग्रामाणा दत्तवांस्तथा ।।३३।।

भावार्थ—महाराणा ने कई हलवाह भूमि एव लहलहाते धान्यो से समृद्ध अनेक गाँवों के ताम्रपत्र प्रदान किये ।

याचकै कनकविक्रय पर
क्तु मत्र कनक प्रसारित ।
वीक्ष्य राजनगर महाजना-
स्तत्सुवर्णमयमेवमूचिरे ।।३४।।

भावार्थ—याचकों ने बेचने के लिये जब वहा सोना फैलाया तब उस प्रचुर स्वर्ण को देखकर महाजनों ने राजनगर को सुवर्णमय कहा ।

याचकैस्तुरगविक्रयायतान्
स्थापितां दपणिपूचवाजिन
वीक्ष्य राजनगर जनोव[द]
त्सिधुदेशमिति सिधुसुदर ।।३५।।

भावार्थ—बेचने के लिये याचको ने जब बडे बडे अश्व बाजारों में ला रखे, तब उन्हें देखकर लोगो ने कहा कि राजनगर समुद्र के समान सुदर सिंधुदेश है ।

याचकैर्भवत एव भूपते
याचनानिजगुणोपि विस्मृत ।
स्यापित तु धनरागी मन-
स्तर्यतो विगुणतास्ति तेष्वत ।।३६।।

भावार्थ —हे महाराणा ! आप से याचना कर याचक लोग अपना गुण ही भूल गये हैं । यही नहीं उन्होंने अपने मन को धन की रक्षा में लगा दिया है । इस कारण उनका गुण बदल गया है ।

तुलाकर्तु द्रव्यं क्षितिप भवतः प्राप्य गुणिन
स्तुलाकर्त्तारोलाधिकमितिकृते विक्रयविधौ ।
स्वविश्वासार्थं तं बहुलरजतस्य प्रतिपलं
तुलाकर्त्री[स्त्वं वै] जयसि रचयन्याचकगुणान् ।।३७।।

भावार्थ —हे भूपति ! तुलादान करनेवाले आप से धन पाकर याचक उद्यमी बन गये हैं । दान में प्राप्त अमित स्वर्ण को बेचते समय अपने विश्वास के लिये कि यह अधिक है या कम उसे वे प्रतिपल तोलते हैं । इस तरह आपने उनके याचक गुणों को व्यापारियों के गुणों में बदल दिया है ।

निमन्त्रणायातधराधवेभ्य
स्स्वेभ्यः परेभ्यः सकलद्विजेभ्यः ।
वैश्यादिकेभ्योऽखिलमानुषेभ्यो
वासांसि गांगेयगुणोत्तमानि ।।३८।। युग्म ।।

भावार्थ —निमंत्रण पाकर आये हुए राजाओं अपने परायों समस्त ब्राह्मणों तथा वैश्य आदि मनुष्यों को जरीन वस्त्र

अश्वास्तथा वातगतीर्गजेंद्रा-
न्गिरिप्रमाणान्मणिभूषणानि ।
दत्त्वा विवेकाद्गमनाय तेभ्य
आज्ञां ददानो जयति क्षितींद्र ।।३९।।

भावार्थ —वायु वेगी अश्व पर्वताकार हाथी एवं मणि आभूषण यथायोग्य देकर राजसिंह ने उनको अपने अपने घर लौटने की आज्ञा प्रदान की ।

निमन्त्रितेभ्योखिलभूमिपेभ्यो
दुर्गाधिपेभ्यो निजबान्धवेभ्य ।
स्वेभ्य परेभ्य कनकोरामानि
वासासि चाश्वा पृशदश्ववेगान् ।।४०।।

भावार्थ—आमंत्रित समस्त राजाओ, दुर्गाधिपों, अपने बान्धवो तथा अपने-परायों के लिय उत्तम जरीन वस्त्र, वायु-वेगी अश्व,

तुगाश्च मातगगणा मदाढ्या-
विभूषणालोगतदूषणाश्च ।
सम्प्रेषयित्वा प्रविभाति भूपो
महामहोदारचरित्रचारु ।।४१।।

भावार्थ—बडे बडे प्रमत्त हाथी तथा उत्तम आभूषण भिजवाकर अति उदार चरित्र वाला पृथ्वीपति राजसिंह सुशोभित हुआ ।

आसीद्भास्करतस्तु माधवबुधोऽस्माद्रामचद्रस्तत
सर्वेश्वरक कठोडिकुलजो लक्ष्म्यादिनाथस्तत ।
तैलगोस्य तु रामचद्र इति वा कृष्णोस्य वा माधव
पुत्राभ मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमा ।।४२।।

भावार्थ—भास्कर का पुत्र माधव था । माधव के पुत्र हुआ रामचन्द्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर । सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ जो कठोंडी कुल में उत्पन्न हुआ । उसके हुआ तैलग रामचन्द्र । उस रामचन्द्र के ब्रह्मा, शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए— कृष्ण माधव और मधुसूदन ।

यस्यासीन्मधुसूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजाऽ-
भून्माता रणछोड एष कृतवान् राजप्रशस्त्याह्वय ।
काव्य राणगुणौघवर्णनमय वीराक्युक्त महत्
द्वाविंशोभवदत्र सर्ग उदितो वाग्पसर्गस्फुट ।।[४३।।]

भावार्थ—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है, उस रणछोड ने राजप्रशस्ति नामक काव्य की रचना की। इस काव्य में महाराणा के गुणों का वर्णन है तथा योद्धाओं का सुन्दर जीवन चरित अंकित है। यह उसका बाईसवाँ [उन्नीसवाँ] सर्ग सम्पूर्ण हुआ, जिसके शब्द और अर्थ दोनों सुन्दर हैं।

॥ इति एकोनविंश सर्ग १६ ॥

विंश' सर्ग

[इक्कीसवीं शिला]

ॐ सिद्ध । श्रीगणेशाय नम ॥

जसवतसिंहनाम्ने राज्ञे राठोडनाथाय ।
सार्द्धं नवसत्सहस्रप्रमितरजतमुद्रिकामूल्य ॥१॥

भावार्थ—राठोड नाथ राजा जसवन्तसिंह के लिये साढ़े नौ हजार रुपयों के मूल्य का

परमेश्वरप्रसादाभिधगज पचविंशतिप्रमितं ।
रजतमुद्राशतकं गृहीतमतिनर्त्तन तुरगवर ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वरप्रसाद नामक एक हाथी एक चचल एव उत्तम अश्व, जो पच्चीस सौ रुपयो मे लिया गया था

फत्तेतुरगसज्ञ पट्शतमितरजतमुद्राभि ।
क्रीत च कनककलश हयमपर हेमपूर्णवसनानि ॥३॥

भावार्थ—और जिसका नाम फत्तेतुरग था कनककलश नामक एक और अश्व, जो छह सौ रुपयों में खरीदा गया था तथा—

नानाविधानि बहुनरमस्यानि महादरेण जोधपुरे ।
राणेंद्र प्रेषितवान् हस्ते रणछोडभट्टस्य ॥४॥

भावार्थ—नाना प्रकार के अनेक जरीन वस्त्र महाराणा ने रणछोड भट्ट के हस्ते बडे आदर के साथ जोधपुर भेजे।

अथ रामसिंहनाम्ने राज्ञे क्लिकच्छवाहभूपाय ।
राजतमुद्रासार्द्ध द्विशताग्रायुतरचितमूल्यं ॥५॥

भावार्थ—फिर राजा रामसिंह कछवाहा के लिये दस हजार दो सौ पचास रुपयों के मूल्य का

सुंदरगजनामानं गजोत्तमं राजतमुद्राणां ।
पंचदशशतं कल्पितमूल्यं छविसुंदराख्यहयं ॥६॥

भावार्थ—सुंदरगज नामक एक उत्तम हाथी, पन्द्रह सौ रुपयों के मूल्य का छविसुंदर नामक एक घोड़ा

अथ सार्द्धसप्तशतमितराजतमुद्राप्रमितमूल्यं ।
हयहद्दनामतुरगं कनककलितबहुलवसनानि ॥७॥

भावार्थ--सात सौ पचास रुपयों के मूल्य का हयहद्द नामक एक और अश्व तथा अनेक जरीन वस्त्र

आवेरिनगरमध्ये अर्पितवान्राणापूर्णेदु ।
हस्ते प्रशस्तकीर्त्ति स्वपुरोहितरामचंद्रस्य ॥८॥

भावार्थ—प्रशस्तकीर्ति पूर्णेंदु महाराणा ने अपने पुरोहित रामचंद्र के हस्ते आमेर भिजवाये।

बीकानेरिप्रभवे अनूपसिंहायरावाय ।
सार्द्धसुसप्तसहस्रकराजतमुद्राप्रमितमूल्यं ॥९॥

भावार्थ—बीकानेर के स्वामी राव अनूपसिंह के लिये साढ़े सात हजार रुपयों के मूल्य का

मनमूर्त्तिनामकरिणं सार्द्धसहस्राच्छरजतमुद्राभिः ।
कृतमूल्यं तुरगवरं साहणसिंगारसंज्ञमयहयं ॥१०॥

भावार्थ—मनभूति नामक एक हाथी, पन्द्रह सौ रुपयों के मूल्य का साहणसिंगार नामक एक उत्तम अश्व,

सत्साद्ध सप्तशतमितराजतमुद्रारचितमूल्य ।
तजनिधानाभिधमपि हेमहयाम्यवराणि बहुलानि ॥११॥

भावार्थ—साढ़े सात सौ रुपयों के मूल्य का तेजनिधान नामक एक और घोडा तथा प्रचुर नवीन वस्त्र

प्रेमादरपूर्वं किल वीकानेरिस्फुटाभिधे नगरे ।
प्रपितवान्राणेन्द्रो माधवजोसीसुहस्ते हि ॥१२॥

भावार्थ—महाराणा ने माधव जोसी के हस्ते सादर और स्नेहपूर्वक बीकानेर भिजवाये ।

राजाय भावसिंहाभिधाय हाडानृपालाय ।
षटसप्ततिमुक्त्रिशताग्रैर्दशसहस्रैस्तु ॥१३॥

भावार्थ—हाडा नरेश भावसिंह के लिये दस हजार तीन सौ छिहत्तर

राजतमुद्राणां कृतमूल्य द्विरद तु होणहाराख्य ।
सार्द्ध सहस्रप्रमितिकराजतमुद्रारचितमूल्य ॥१४॥

भावार्थ—रुपयों के मूल्य का होणहार नामक एक हाथी, डेढ़ हजार रुपयों के मूल्य का

तुरग नर्त्तनचतुर तु गतर सर्वशोभाख्य ।
सत्साद्ध सप्तशतमितराजतमुद्राप्रमितमूल्यं ॥१५॥

भावार्थ—सर्वशोभ नामक एक बडा और चपल अश्व, साढ़े सात सौ रुपयों के मूल्य का

मिरताजाभिधमपर हय सहेमावराणि राणमणि ।
बूंदीनगरे भास्करभट्टकरे प्रेषयामास ॥१६॥

भावार्थ—सिरताज नाम का एक और घोडा तथा जरीन वस्त्र महाराणा ने भास्कर भट्ट के हस्ते बूँदी भिजवाये।

चन्द्रावतचन्द्राय मुहकमसिंहाभिधाय रावाय।
सार्द्धं द्विशताग्रलसत्सप्तसहस्राच्छरूप्यमुद्राभि ॥१७॥

भावार्थ—चन्द्रावतो मे चन्द्र राव मोहकमसिंह के लिये सात हजार दो सौ पचास रुपयो के

कृतमूल्य गजराज फत्तेदौलतिशुभाभिध तुरग।
सार्द्ध सहस्रप्रमितराजतमुद्रारचितमूल्य ॥१८॥

भावार्थ—मूल्य का फत्तेदोलति नाम का एक सुन्दर गजराज, डेढ हजार रुपयों के मूल्य का

मोहनसज्ञ सार्द्धसप्तशतै रूप्यमुद्राणा।
कृतमूल्य हयसरस हयमन्य हेमपूर्णवसनौघ ॥१९॥

भावार्थ—मोहन नामक एक अश्व साढे सात सौ रुपयो के मूल्य का हयसरस नामक एक और घोडा तथा कई जरीन वस्त्र

राजाज्ञया गृहीत्वा भट्टोगाद्द्वारकानाथ।
रामपुरानगरे त्वय सर्वमिद तु सोर्पयामास ॥२०॥

भावार्थ—लेकर द्वारकानाथ भट्ट महाराणा की आज्ञा से रामपुरा नगर पहुँचा और उसने यह सब राव मोहकमसिंह को भेंट किया।

भाटीभूपालाय रावलवर अमरसिंहाय।
राजतमुद्रैकादशसहस्रमूल्य प्रतापशृ गार ॥२१॥

भावार्थ—रावल अमरसिंह भाटी के लिये ग्यारह हजार रुपयों के मूल्य का प्रतापशृ गार नामक

करिण राजतमुद्रासार्द्ध सहस्रप्रमितमूल्य ।
हयमुकुटाख्य सार्द्ध सप्तशतप्रमितरूप्यमुद्राभि ॥२२॥

भावार्थ—एक हाथी डेढ हजार रुपयो के मूल्य का हयमुकुट नामक एक अश्व, साढ़े सात सौ रुपयो की

कृतमूल्यमपरमश्व सूरतिमूर्त्ति च हेमवसनौघ ।
एतत्सव जोशीदेवानदस्य किल हस्ते ॥२३॥

भावार्थ—कीमत का सूरतिमूर्त्ति नामक एक और घोडा और अनेक जरीन वस्त्र देवानन्द जोसी के हाथ

दत्वा जेसलमेरौ महापुरे प्रेमपूर्वमपि ।
सप्रेषितवानेत स राणवीरो नृपतिधीर ॥२४॥

भावार्थ—देकर धीर वीर महाराणा ने प्रेमपूवक जसलमेर भिजवाये ।

जसवर्तसिहनाम्ने रावलवर्याय षट्सहस्रं स्तु ।
पचशताग्रं राजतमुद्राणा रचितमूल्यमिभमेक ॥२५॥

भावार्थ—महारावल जसवन्तसिह के लिये साढे छह हजार रुपयों के मूल्य का एक हाथी

शुभसारधारसज्ञ द्विवेदिहरिजीकहस्ते तु ।
डूंगरपुरे नरपति प्रेषितवान् हेमयुक्तवसनानि ॥२६॥

भावार्थ—जिसका नाम सारधार था तथा जरीन वस्त्र राजसिह ने हरिजी द्विवेदी के हस्ते डूंगरपुर भिजवाये ।

प्रथम राजसमुद्रोत्सर्गेस्मै रजतमुद्राणा ।
तत्र सहस्रेण कृतमूल्य जसतुरगनामहय ॥२७॥

भावार्थ—इसके पूर्व राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के समय इसको एक हजार रुपयों के मूल्य का जसतुरग नामक एक घोडा,

पंचशतरूप्यमुद्राकृतमूल्यं तुरंगमपरं च ।
अनकमयाम्बरवृंद दत्वा राजसिंहनृप ।।२८।।

भावार्थ — पाँच सौ रुपयों की कीमत का एक और घोड़ा और अनेक जरीन वस्त्र राजसिंह ने दिए थे।

राजतमुद्रा[दश]सहस्रमूल्य प्रतापशृंगारं ।
द्विपमम्बराणि च ददौ दोसीभीमप्रधानाय ।।२९।।

भावार्थ— महाराणा ने प्रधान भीम दोसी को ग्यारह हजार रुपयों के मूल्य का प्रताप शृंगार नामक एक हाथी और वस्त्र प्रदान किये।

सिरनाग कृतमूल्यं सप्तसहस्रं तु रूप्यमुद्राणां ।
द्विपमम्बराणि स ददौ राणावतराम[सिंहाय] ।।३०।।

भावार्थ —राजसिंह ने सात हजार रुपयों के मूल्य का सिरनाग नामक एक हाथी तथा वस्त्र राणावत रामसिंह को जो

राजसमुद्रजलाशयकार्यकृतामग्रगण्याय ।
राजतमुद्राणां वा कृतमूल्यान्पंचविंशतिसहस्रैः ।।३१।।

भावार्थ —राजसमुद्र पर काम करनेवालों में अग्रगण्य था, प्रदान किये। इसके अतिरिक्त पच्चीस हजार

एकाधिकपंचाशद्युतपंचशताग्रकैस्तुरगान् ।
सुखदक्षपष्टिसंख्यान् कुर(?)राजन्यराजये स ददौ ।।३२।। कुलकं ।।

भावार्थ —पांच सौ इक्यावन रुपयों के मूल्य के इकसठ अश्व क्षत्रियों को प्रदान किये।

एकाग्रसप्ततिलसत्पंचशताग्रं स्तु सप्तविंशतिकैः ।
दिव्यसहस्रं राजतमुद्राणां रचितसन्मूल्यान् ।।३३।।

भावार्थ—सत्ताईस हजार पाच सौ इकहत्तर रुपयों के मूल्य के

पडधिकशतद्वयमितास्तुरगमाश्चारणेभ्य इह ।
दानप्रवाहमध्ये भाटेभ्यो भूपति प्रददौ ।।३४।।

भावार्थ—दो सौ छह अश्व राजसिंह ने इस दान के प्रवाह मे चारणों और भाटों को प्रदान किये ।

सप्तसहस्र विरचितमूल्य वा रजतमुद्राणा ।
द्विरदनमनूपरूप द्विरदवर सार्द्ध नवशतकै ।।३५।।

भावार्थ—सात हजार रुपयो के मूल्य का अनूपरूप नामक एक हाथी, साढे नौ सौ

रजतमुद्राणा वा कृतमूल्य विनयसुन्दरक ।
हयमन्य दिलसार राजतमुद्राचतु शतगृहीत ।।३६।।

भावार्थ—रुपयों के मूल्य का विनयसुन्दर नामक एक अश्व चार सौ रुपयों के मूल्य का एक दूसरा दिलसार नामक अश्व और

कनकमयावरवृन्द सुलब्धराज्याय बांधवेशाय ।
नृभावसिंहनाम्ने राज्ञे सप्रेषयामास ।।३७।।

भावार्थ—अनेक जरीन वस्त्र राजसिंह ने बाधव के स्वामी राजा भावसिंह के लिये

लाधूममानिहस्ते लाधूक तीर्थयात्रार्थं ।
दत्वा बहुल द्रव्य प्रेषितवा प्रेमकृद्भूप ।।३८।।

भावार्थ—लाधू मसानी के हस्ते भिजवाये । तब महाराणा ने तीर्थ-यात्रा के लिये लाधू को प्रचुर धन भी दिया ।

राजनमुद्राणां वा त्रिशताग्रचतुःसहस्रमूल्यान् ।
स ददष्टादश तुरगान्निमन्त्रणायातनृपतिभ्यः ॥३९॥

भावार्थ—राजसिंह ने चार हजार तीन सौ रुपयों के मूल्य के अठारह अश्व निमंत्रण पाकर आए हुए राजाओं को प्रदान किये ।

त्रिसहस्ररजतमुद्रामूल्यां करिणीं सहेलीनीं ।
तोडेशरायसिंहनृपस्य मात्रे ददौ कुमारेभ्यः ॥४०॥

भावार्थ—महाराणा ने टोडा के स्वामी राजा रायसिंह के कुमारों के लिये उनकी माता को सहेली नामक एक हथिनी प्रदान की जिसका मूल्य तीन हजार रुपये था ।

सार्द्धचतुःशतयुक्तत्रिसहस्रमुरूप्यमुद्रादिरामूल्यान् ।
तुरगांस्त्रयोदश ददौ निमन्त्रणायातभूपतिभ्यः ॥४१॥

भावार्थ—राजसिंह ने निमंत्रण पाकर आये हुए राजाओं को तेरह अश्व प्रदान किये जिनका मूल्य तीन हजार साढ़े चार सौ रुपये ।

एकाग्रषष्टिसयुतपञ्चशतप्रमितरूप्यमुद्राणां ।
सप्त ददौ भूपोऽश्वान् निमन्त्रणायातनृपतिभ्यः ॥४२॥

भावार्थ - पृथ्वीपति राजसिंह ने निमंत्रण पाकर आये हुए राजाओं को सात अश्व दिये जिनका मूल्य पाँच सौ इकसठ रुपये था ।

षटत्रिंशदधिकशतयुक्त्रिसहस्र अयुत रूप्यमुद्राणां ।
द्विशततुरगान् ददौ शासनयुतचारणौघभाटेभ्यः ॥४३॥

भावार्थ—उसने शासनित चारण-भाटों को दो सौ घोड़े प्रदान किये जिनका मूल्य तेरह हजार एक सौ छत्तीस रुपये था ।

तत्र विवेकस्त्रिसहस्रविंशतितुरगास्त्वशासनिभ्योदात् ।
पूर्वोक्तसप्ततुरगाः राणजगत्सिंहशासनिभ्योऽपि ॥४४॥

भावार्थ—इस दान का विवरण इस प्रकार है—राजसिंह के शासनिक चारण-भाटों को तेवीस अश्व तथा राणा जगतसिंह के शासनिक चारण–भाटों को भी तेवीस अश्व दिए गये।

श्रीकर्णसिंहशासनिकेभ्योश्वाना चतुष्टय स ददौ।
अमरेशशासनिभ्य सप्त तुरगान्प्रतापसिंहस्य ॥४५॥

भावार्थ—राजसिंह ने कर्णसिंह के शासनिकों को चार, अमरसिंह के शासनिकों को सात प्रतापसिंह के

शासनिकेभ्योष्टादश हयानुदयसिंहशासनिभ्यस्तु।
अष्टत्रिंशत्तुरगान्हयमेक विक्रमार्कशासनिने ॥४६॥युग्म॥

भावार्थ—शासनिकों को अठारह उदयसिंह के शासनिकों को अड़तीस और विक्रमादित्य के शासनिक को एक घोडा दिया।

हयमेक तु रतनसीशासनिने राणवीरोदात्।
शुभसप्तविंशतिहयान् संग्रामनृपस्य शासनिभ्योदात् ॥४७॥

भावार्थ—महाराणा ने रत्नसिंह के शासनिक को एक और संग्रामसिंह के शासनिकों को सत्ताईस अश्व दिए।

श्रीरायमल्लशासनिकेभ्योश्वानेकविंशतिप्रमितान्।
कुंभाशासनिकायाश्वमेकमेकोनविंशतिप्रमितान् ॥४८॥

भावार्थ—उसने रायमल के शासनिकों को इक्कीस कुंभा के शासनिक को एक,

मोकलशासनिकेभ्यस्तुरगान्हम्मीरशासनिभ्योदात्।
पंचहयाल्लाखानृपशासनिकेभ्यो हयान्सप्त ॥४९॥युग्म॥

भावार्थ—मोकल के शासनिकों को उन्नीस हम्मीर के शासनिकों को पांच, राणा लाखा के शासनिकों को सात,

सेताऽजेसीशासनिकाभ्या हयमेकमेकमदात् ।
रावलमुशालिवाहनमहासमरसीकशासनिभ्या तु ॥५०॥

भावार्थ —सेता के शासनिक को एक, अजैसी के शासनिक को एक, रावल शालिवाहन के शासनिक को एक महान् समरसी के शासनिक को

हयमेकमेकमेव रावतवाघस्य शासनिने ।
मोकलसहोदरस्य द्विशतहयान्भूप एवमत्र ददौ ॥५१॥

भावार्थ —एक तथा मोकल के सहोदर रावत बाघा के शासनिक को एक अश्व दिया। इस प्रकार राजसिंह ने दो सौ घोड़े प्रदान किये।

लक्षकद्वाविंशतिसहस्रशतयुग्मसाष्टषष्टिमित ।
राजतमुद्रावृंद श्रीता शतपचक द्विपचाशत् ॥५२॥

भावार्थ—एक लाख बाईस हजार दो सौ अड़सठ रुपयों में पाँच सौ बावन

तुरगा लक्षद्विसहस्रशताष्टरिति श्रीता ।
गरिणीगजास्त्रयोदश दत्ता वीरेंद्रराजसिंहेन ॥५३॥

भावार्थ —अश्व तथा एक लाख दो हजार आठ सौ रुपयों में तेरह हाथी एवं हथिनियाँ खरीदी गई, जिन्हें वीर-शिरोमणि राजसिंह ने दिया।

पडितेभ्य कविभ्यश्च वदिचारणपक्तये ।
अश्वाधनानि वासासि ददौ [राणा पुरदर] ॥५४॥

भावार्थ—महाराणा ने पडितो कवियों वन्दीजनो और चारणों को अश्व धन एव वस्त्र प्रदान किये।

जलाशयोत्सगविधानमेव
कृत्वा महादानसमेतमेव ।
तथव नानाविधदानराजी-
विराजते राजितराजवीर ॥५५॥

भावार्थ—इस तरह राजसमुद्र की प्रतिष्ठा विधि संपन्न कर महादान देकर और उपरोक्त नाना प्रकार के दान प्रदान कर महाराणा राजसिंह सुशोभित हुआ ।

इति श्रीराजसमुद्र री प्रशस्त लीयत रणछोडभट सर्ग २०॥

एकविंश सर्ग

[बाईसवीं शिला]

ॐ सिद्ध । श्रीगणेशाय नमः ॥

पूर्णे सप्तदशे शते शुभकरे त्वष्टादशाग्रेऽब्दके
माघे सद्बुधकृष्णसप्तमतिथौ चारभ्य कालादितः ।
पञ्चत्रिंशदभिख्यवर्ष उदितापाढावशेषं वदे
लग्नं राजसमुद्रनामकमहानव्ये तडागे धनं ॥१॥

भावार्थ—संवत १७१८ माघ कृष्णा सप्तमी बुधवार से लेकर संवत १७३५ आषाढ़ पर्यन्त राजसमुद्र नामक महान् एवं नूतन तड़ाग में जो धन लगा उसे बताता हूं ।

षट्चत्वारिंशदाख्यान्यथ रजतमहामुद्रिकाणां शुभानां
लक्षाणीत्थं सहस्राण्यपि रुचिरचतुःषष्टिसंख्यामितानि ।
षट्संख्यायुक्शतानि प्रकटितपदयुक्पञ्चविंशत्युपात्तं
स्वग्राण्येव त्रिलग्नायुतगणनमिदं त्वेकपक्षे मयोक्तं ॥२॥

भावार्थ—प्रथम पक्ष में व्यय हुए रुपयों का योग इस प्रकार है—छियालीस लाख चौसठ हजार छह सौ सवा पच्चीस ।

विवेकमथ वक्ष्यामि रूप्यमुद्रावलेरिह ।
सप्तविंशतिलक्षाणि षट्त्रिंशत्प्रमितानि च ॥३॥

भावार्थ—उपरोक्त धन राशि का ब्योरा इस तरह है—सत्ताईस लाख छत्तीस

सहस्राणि चतुसत्यशतानि नवतिस्तथा ।
सार्द्ध सप्ताग्रकाण्यत्र रामसिंहस्य वै तफे ॥४॥

भावार्थ—हजार चार सौ साढे सित्यानवे रुपये रामसिंह के तफे में ।

पञ्चलक्षचतु सहस्रसहस्राष्टशतानि च ।
सपादशीतिकान्याहु पितृ यस्य तफे तथा ॥५॥

भावार्थ—काका के निरीक्षण मे—पाँच लाख चार हजार आठ सौ सवा अस्सी रुपे ।

पुत्रमोहनसिंहस्यसीसोद्यासगशोभिन ।
लक्षद्वय सहस्राणि द्वादशन शतानि च ॥६॥

भावार्थ—पुत्र मोहनसिंह सीसोदिया की देख-रेख मे दो लाख बारह हजार

पचाष्टत्रिशदधिकपदैषा गणानाभवत् ।
एषा सावलदासस्य पचोलीकुलशालिन ॥७॥

भावार्थ —पाच सौ सवा अडतीस रुपये । सांवलदास पचोली के हस्ते

चतुलक्षाण्यष्टयुक्तसप्ततिप्रमितानि च ।
सहस्राण्येकशतक सप्ताग्र भरणे मृदा ॥८॥

भावार्थ —चार लाख अठहत्तर हजार एक सौ सात रुपये,

चतुर्व्वीनि सृनाना तु लेखने गणनाभवत् ।
द्वात्रिंशत्सुसहस्राणि षट् शतानि सपादक ॥९॥ —

भावार्थ—चतुव्वियों से निकली हुई मिट्टी की मजदूरी के लेखे । बत्तीस हजार छह सौ

एवमत्रापदायात द्रव्य वा प्रभुणार्पवंत ।
तथा प्रसादशनादितल्लेखे गणना दिवय ॥१०॥

भावार्थ —और सवा रुपया। यह रकम दूसरी है जो राजसिंह के पास से प्राप्त हुई। इसकी गणना प्रसाद दानादि के साथ की गई।

सप्तलक्षाणि सैकानि प्रतिष्ठाकरणे मिति।
एतद्राजसमुद्रस्य पूर्वमद्याप्रमेलनं ॥११॥

भावार्थ प्रतिष्ठा करने में व्यय हुए रुपयों का योग है—७०००१। राजसमुद्र पर व्यय हुए रुपयों का सबयोग उपरोक्त विधि से हुआ।

पूर्वोक्तद्रव्यगणनाविवेकः क्रियते पुनः।
द्वात्रिंशल्लक्षलक्षाणि सहस्रद्वितयं तथा ॥१२॥

भावार्थ—ऊपर बताई हुई धन राशि का ब्यौरा फिर से दिया जाता है। बत्तीस लाख दो हजार

गणनाष्टशतायाशीत्सपादाशीतिरप्युत।
एषा राजसमुद्रस्य कार्यार्थं च भृते कृते ॥१३॥

भावार्थ—आठ सौ सवा अस्सी रुपये। यह रकम राजसमुद्र के निर्माण-कार्य के निमित्त वेतन पर।

सप्त लक्षाण्येकषष्टिसहस्राणि च सप्त वै।
चतुश्चत्वारिंशदग्रयुक्तानि शतकानि च ॥१४॥

भावार्थ —सात लाख इकसठ हजार सात सौ चँवालीस रुपये।

श्रीमद्राजसमुद्रस्य कार्ये ये ठक्कुराः स्थिताः।
तेषां ग्रामोत्पत्तिरूप्यमुद्राणां गणनाभवत् ॥१५॥

भावार्थ —उपरोक्त गिनती राजसमुद्र के काम में उपस्थित रहनेवाले ठाकुरों के खिराज के रुपयों की है।

एवं पूर्वोक्त सङ्ख्याया मेनन भवति स्फुटं ।
एकपक्षे लगनरूप्यमुद्रासङ्ख्येयमीरिता ॥१६॥

भावार्थ—इस प्रकार पूर्वोक्त सख्या का योग स्पष्ट हो जाता है। प्रथम पक्ष में लगे रुपयों की सख्या इस तरह बताई गई।

देशग्रामभुजां मुख्यक्षत्रादीनामहो धनं ।
चतुष्कालगनं लग्नं वक्तुं शक्तश्चतुर्मुखः ॥१७॥

भावार्थ—क्षत्रिय आदि मुख्य जागीरदारों का जो धन चतुष्की-खना में लगा है, उसे चार मुखों वाला ब्रह्मा बता सकता है।

गृहाच्चतुर्गुणं लग्नं तडागे वासतो धनं ।
तद्विप्रक्षत्रियादीनां शेषोऽशेषं वदिष्यति ॥१८॥

भावार्थ—इस तडाग में ब्राह्मण क्षत्रिय आदि लोगों का धन उनके घरो से चौगुना लगा। उस समग्र धन राशि को शेषनाग ही बता सकता है।

गोभूहिरण्यरूप्याणां दत्तानां नवासससां ।
वराहमिहिरश्चेत्स्याद्गणको गणना भवेत् ॥१९॥

भावार्थ—गिनती करनेवाला यदि वराहमिहिर हो तो राजसिंह द्वारा प्रदत्त धेनु पृथ्वी, सुवर्ण, चांदी अन्न और वस्त्र की गणना हो सकती है।

श्वासानां गणनां कुर्याद्यदश्वानां सदा नदा ।
श्वसनाऽऽवेगजयिनां गणनाङ्कृद्भवेद्गुणी । २०॥

भावार्थ—यदि कोई गुणवान व्यक्ति श्वासों की गणना निरन्तर करे तो राजसिंह द्वारा प्रदत्त वायु वेग को जीतनेवाले अश्वों की गिनती कर सकता है।

मत्तानां राणदत्तानां तुङ्गानां गणनामुचा ।
मतङ्गानां गणेशश्चेद्गणना जायते तदा ॥२१॥

भावार्थ—अगर गणेश हो तो महाराणा के दिये हुए बडे बड़े प्रमत्त अगणित हाथियों की गिनती हो सकती है।

एकाकोटि पञ्चलक्षाणि रूप्य-
मुद्राणां वा सप्तसहस्राणि सप्त।
लग्नान्यस्मिन्षट् शतान्यष्टकं वै
कार्ये प्रोक्तं पक्ष एतद्द्वितीये ॥२२॥

भावार्थ—कार्य के दूसरे पक्ष मे जो रुपये लगे उनकी सख्या इस प्रकार है—एक करोड पाँच लाख सात हजार छह सौ आठ।

सहस्रलक्षकोटीनां सख्या ज्ञाता तु या बहु।
तत्र लग्नद्रव्यस्य सख्योक्ता मतुरस्तु मा ॥२३॥

भावार्थ—राजसमुद्र में लगे द्रव्य की हजारो लाखो और करोड़ो की अनेक सख्याएँ ज्ञात हुई हैं। मैंने यहाँ केवल उक्त लागो द्वारा लगे धन की सख्या बताई है। मुझे क्षमा करे।

लग्नं राजसमुद्रे तु यावत्तावद्धनं बुधः।
तरङ्गगणनां कुर्याद्यद्यस्यैव तदाचरेत् ॥२४॥

भावार्थ—अगर कोई विद्वान् राजसमुद्र की तरंगों को गिने तभी वह यहाँ व्यय हुए समग्र धन की गिनती कर सकता है।

स्पर्द्धा लक्ष्म्या सरस्वत्या लग्ना लक्ष्मी तु यावती।
न वक्ति तावतीं युक्तं तडागेऽत्र सरस्वती ॥२५॥

भावार्थ—सरस्वती की लक्ष्मी से स्पर्द्धा है। अतः यह ठीक ही है कि इस जलाशय में जितना धन व्यय हुआ उसे समग्र रूप मे वह नही बताती।

सप्तदशशतेतीतेऽथ चतुस्त्रिंशमिताब्दजन्मदिने ।
द्विशतपलमिताच्छ्रट्टवकल्पद्रुमनामक महादान ॥२६॥

भावार्थ—इसके बाद संवत् १७३४ में अपने जन्म दिवस पर दो सौ पल सोने का 'कल्पद्रुम तथा

सदशीतितोलमितियुतसुहिरण्याश्वाभिध महादान ।
श्रीराजसिंहनामा पृथ्वीनाथो रचितवान्स ॥२७॥युग्म॥

भावार्थ—अस्सी तोले सुवर्ण का 'हिरण्याश्व' महादान पृथ्वीपति राजसिंह ने प्रदान किया।

शते सप्तदशे पूर्णे चतुस्त्रिंशमितेब्दके ।
श्रावणे राजसिंहेंद्रो जीलवाडावधिव्रजन् ॥२८॥

भावार्थ—संवत् १७३४ के श्रावण में जीलवाडा जाते हुए राजसिंह ने

वरिसाल सिरोहीस्थ शत्रुसंघेन पीडित ।
राव सिरोहीनृपति चक्रे निजपराक्रमं ॥२९॥

भावार्थ—शत्रुओं से पीडित सिरोही के राव वरिसाल को अपने पराक्रम से सिरोही का राजा बनाया।

एकलक्षप्रमितिका रूप्यमुद्रास्ततोग्रहीत् ।
पंचग्रामान्कोरटादीन् जग्राहोग्राहवो नृप ॥३०॥

भावार्थ—समराग्रणी राजसिंह ने उससे एक लाख रुपये और कोरट आदि पाँच गाँव लिये।

राणासुवर्णकलशचौर्यं तद्देश आगत ।
तद्रूप्यमुद्रा पंचाशत्सहस्राण्यग्रहीत्तत ॥३१॥

भावार्थ—महाराणा का एक स्वर्णकलश चोरी से उसके देश में आगया था। [राज]सिंह ने उससे उसके पचास हजार रुपये लिये।

शत सप्तदशतात चतुस्त्रिंशमितेऽब्दके ।
श्रीराणेंद्रोद्यतमस्या रजगृहे गज ॥३२॥

भावार्थ—संवत् १७३४ में महाराणा ने

त्रिविक्रमाश्रयकृतो विक्रमाकस्य दानत ।
वक्तुं क सुक्रमात् शक्तो राजसिंह पराक्रमान् ॥३३॥

भावार्थ—हे राजसिंह ! आप विष्णु-भक्त हैं और दान में विक्रमादित्य हैं । आपके पराक्रमों का वर्णन क्रम से कौन कर सकता है ?

राजसिंह विचित्रोय प्रतापतपनस्तव ।
वनात स्थानपि रिपूँस्तापयत्यदभुत महत् ॥३४॥

भावार्थ—हे राजसिंह ! आपके प्रताप का सूर्य बडा विचित्र है। वह वन में रहने वाले शत्रुओं को भी तपा रहा है। यह बडा आश्चर्य है।

राज भवत्प्रतापाग्नि शत्रुस्त्रीवाष्पसेचनै ।
ज्वलत्यत्र न चित्र तद्द्विटकीर्तिनव मप ॥३५॥

भावार्थ—हे राजन् ! शत्रुओं की स्त्रियों के अश्रु-सेचन से आपके प्रताप की अग्नि प्रज्वलित होती है। इसमें आश्चर्य नहीं है। क्योंकि शत्रुओं की कीर्ति [?]

शत्रुस्त्रीनेत्रपद्मानि सन्तापयति सन्तत ।
श्रीराजसिंह भवत प्रतापतपनोद्भुत ॥३६॥

भावार्थ—हे राजसिंह ! आपके प्रताप का सूर्य शत्रुओं की स्त्रियों के नेत्र कमलों को निरंतर संतप्त करता है। आश्चर्य है।

प्रतापो दीपस्ते क्षितिप जगदालोककरण
शिखाभि शत्रूणा वदननिकुरब मलिनयन् ।
दशा दिग्या स्नेह क्वलयति वा प्राणपटली-
पतगालीं दग्धा कनयति तनूजानवसति ॥३७॥

भावार्थ —महराणा ने उस जल को राजसमुद्र में रखा। पृथ्वी पर बहती हुई यह गोमती नदी गंगा से स्पर्द्धा करनेवाली है। उछलकर यह गंगा की समता पाने के लिये तड़ाग रूपी सागर में गिरी।

शते सप्तत्रिंशतीते त्रिशदाख्याब्दमाघके ।
पूर्णिमायां हिरण्यस्य पलपंचशतैः कृता ॥२६॥

भावार्थ —संवत् १७३० में माघ महीने की पूर्णिमा को, पाँच सौ पल सोने का बना

ददौ सुवर्णपृथिवीमहादानं विधानतः ।
श्रीराणाराजसिंहाख्य पृथ्वीनाथो महामनाः ॥३०॥

भावार्थ —'सुवर्णपृथ्वी' महादान महामना पृथ्वीपति राजसिंह ने, विधिपूर्वक दिया।

अष्टाविंशतिसंख्यानि रूप्यमुद्रावलेरिह ।
सहस्राणि विलग्नानि महादानस्य भूपतेः ॥३१॥

भावार्थ —राजसिंह ने जो यह महादान दिया, उसमें अट्ठाईस हजार रुपये लगे।

दत्ताया कनकक्षितौ तु भवता विप्रेभ्य एषां गृहे
रुद्रं भिक्षुमवेक्ष्य भिक्षुकगणो दिग्दंतिनामष्टकं ।
हिंस्रो जंतुचयश्च विष्णुगरुडं नागव्रजो वेधसं
भूतौघो मघवंतमेवमहितो दूरं प्रयाति द्रुतं ॥३२॥

भावार्थ —हे राजसिंह ! जिन ब्राह्मणों को आपने 'सुवर्णपृथ्वी' महादान दिया, उनके घरों में अब [सुवर्णपृथ्वी दान में प्राप्त मूर्तियों के रूप में] भिक्षुक वेशधारी शिव, आठ दिग्गज, विष्णु का गरुड, ब्रह्मा और इन्द्र रहने लगे हैं जिन्हें देखकर क्रमशः भिखारी, घातक जन्तु, सर्प, भूत तथा शत्रु वहाँ से तत्काल दूर भाग जाते हैं।

भावार्थ—संवत् १७३१, श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन सरोवर में बड़ी बड़ी नौकाएं

लाहोरसद्‌गुजरसूरतिस्था
सत्सूत्रधारा वरुणस्य मध्ये ।
सभाद्वितीये जलधौ तु सेतु
द्रष्टुं सुहार्देन समागतास्य ॥३६॥

भावार्थ—लाहोर, गुजरात और सूरत के सूत्रधारों ने तैराईं । तब ऐसा दिखाई दिया, मानों इस निरुपम समुद्र पर बने सेतु को देखने के लिये राजसिंह की मित्रता के कारण वरुण की सभा आई हो ।

शते सप्तदशेतीत एकत्रिंशन्मितेब्दके ।
स्वजन्मदिवसे हेमपलपंचशतैः कृत ॥३७॥

भावार्थ—संवत् १७३१ में अपने जन्म-दिवस पर पाँच सौ पल सोने का बना

विश्वचक्र-महादान विधिनादाच्च शक्रवत् ।
भूचक्रे राजसिंहोस्ति विश्वचक्रेस्य तद्यश ॥३८॥

भावार्थ—'विश्वचक्र' महादान इन्द्र के समान राजसिंह ने, विधिपूर्वक दिया । राजसिंह भू-चक्र में विद्यमान है पर उसका यश विश्व-चक्र में व्याप्त है ।

दत्ते हाटकविश्वचक्र उचितं विप्रेभ्य एषां गृहे
उच्चैर्यांति तदर्भका निशि रविं धृत्वा विधुं वा दिने ।
तद्राज्ञौ दिनमह्नि रात्रिरधुना कर्माणि कुर्युं कुतो
विप्रा धर्मकृता त्वया मयमथ स्थ्याप्योत्र धर्मं प्रभो ॥३९॥

भावार्थ—हे स्वामिन् ! ब्राह्मणों को सोने का विश्वचक्र प्रदान कर आपने ठीक किया । लेकिन जब उन ब्राह्मणों के घर उनके बालक रात में सूर्य को और दिन में चन्द्र को [विश्वचक्र दान में प्राप्त सूर्य-चन्द्र की मूर्तियों को]

भावार्थ—उसने जयसिंह को मोतियों की माला, जरकसी जरीन वस्त्र, सुसज्जित एक सुन्दर हाथी और अलंकृत बड़े बड़े अश्व दिये।

मालाश्चन्द्रसेनाय पुरोहितवराय च।
गरीबदासस्नाम्ने हैमवासांसि वा हयान् ॥६॥

भावार्थ—माला चन्द्रसेन और बड़े पुरोहित गरीबदास को उसने जरीन वस्त्र एवं अश्व तथा

महद्भ्यष्ठक्कुरेभ्योदाद्येभ्योपि यथोचित।
ततोय जयसिंहाभ्यो गणमुक्तेश्वर शिव ॥७॥

भावार्थ—अन्य बड़े-बड़े ठाकुरों को यथायोग्य वस्तुएँ दीं। तदनन्तर गणमुक्तेश्वर शिव के

दृष्ट्वा गंगातटे स्नात्वा महारूप्यतुला व्यधात्।
करिणी च हय दत्त्वा यतो वृंदावन प्रति ॥८॥

भावार्थ—दर्शन कर जयसिंह ने गंगा-तट पर स्नान किया और चाँदी की तुला की। उसने वहाँ एक हथिनी और एक अश्व भी दान में दिया। फिर वह वृन्दावन की ओर गया।

मथुरा च ततो दृष्ट्वा ज्येष्ठे राणपुरंदर।
ददर्श दर्शनीयोय राणेंद्रो मोदमादधे ॥९॥

भावार्थ—तदनन्तर मथुरा में दर्शन कर उस दर्शनीय राजकुमार ने ज्येष्ठ महीने में महाराणा के दर्शन किये। महाराणा प्रसन्न हुआ।

शते सप्तदशेतीते वर्षे [illegible]

झालाप्रताप र ंटपुरवासो गजद्वय ।
दिल्लीशस्य यानीय राणेंद्राय यवेदयत् ॥२१॥

भावार्थ—भरतपुर के निवासी झाला प्रतापसिंह ने दिल्ली-पति की सेना में से दो हाथी लाकर महाराणा को भेंट किए।

नदेसरस्था वल्लाग्या ह्योघा हस्तिनां गण।
यवेदयन्तु द्रु दु द नवारास्थितप्रभो ॥२२॥

भावार्थ—नसेर के रहने वाले बल्ला जाति के लोगों ने कई घोड़े हाथी और ऊंट लाकर राजसिंह को भेंट किए। राजसिंह उन दिनों नवचारा नामक स्थान पर रह रहा था।

पचाशत्सहस्राणि नृणां नष्टानि तद्विध ।
दिल्लीशय स्नत प्राप्तश्चित्रकूटयथाप्रथा ॥२३॥

भावार्थ—इस तरह पचास हजार लोग मारे गये। तब दिल्ली-पति दूसरा तरीका

नापयित्वा घववररतयात्र समागत ।
तथा हुसनमल्लीर्ता छप्पनादत्र षागत ॥२४॥

भावार्थ—बताकर चित्रकूट पहुँचा। अकबर भी वहां गया। छप्पन प्रदेश से हुसन मल्लीयों भी वहां जा पहुँचा।

नाही प्रति तदायातो राणेंद्रो रोषपोषितः।
कोटडीग्रामत शीघ्र तत सेनासमागत ॥२५॥

भावार्थ—तब क्रुद्ध होकर महाराणा नाई गाँव की ओर आया। इसके बाद शीघ्र ही उसने कोटडी गाँव से साथ म सेना देकर

सम्प्रेषितो भीमसिंह कुमारो राणभूभुजा।
ईडरध्वसमतनोत्सदहसा ततो गत ॥२६॥

भावार्थ—कुंवर भीमसिंह को भेजा। भीमसिंह ने ईडर का विध्वंस किया। सैंहसा वहाँ से भाग गया।

वडनगरं लुंठितमथ चत्वारिंशत्सहस्रमिता।
राजतमुद्रा जगृहे दंडविधौ भीमसिंह ईह ॥२७॥

भावार्थ—फिर भीमसिंह ने वडनगर को लूटा। वहाँ से उसने दंड स्वरूप चालीस हजार रुपये लिये।

अहमदनगरे लक्षद्वयप्रमितरूप्यमुद्राणां।
वस्तूना लुंटनमिह कारितवान्भीमसिंहबली ॥२८॥

भावार्थ—शक्तिशाली भीमसिंह ने अहमद नगर में दो लाख रुपयों की वस्तुएँ लुटवाईं।

एका महामसीदिर्विखंडिता लघुमसीदिस्त्रिशती।
देवालयपातरुष प्रकाशिता भीमसिंह वीरेण ॥२९॥

भावार्थ—उसने वहां एक बड़ी और तीन सौ छोटी मसजिदें तोड़ी। औरंगजेब ने अनेक मन्दिर जो गिरवाये थे, उससे उत्पन्न रोष को बहादुर भीमसिंह ने इस प्रकार प्रकट किया।

राणामहीमहेंद्रस्य आज्ञया विज्ञ उत्सुकः।
महाराजकुमारश्रीजयसिंहेति नामकः ॥३०॥

भावार्थ—महाराणा की आज्ञा से उत्सुक होकर कुशल महाराज-कुमार जयसिंह ने

झालाचन्द्रसेनेन चौहानेन चमूभृता।
तथा सबलसिंहेन रावेण रणधूरिणा ॥३१॥

भावार्थ—चन्द्रसेन झाला, सेनापति राव सबलसिंह चौहान तथा युद्ध-निपुण

भावार्थ—अद्भुत पराक्रमी भीमसिंह ने घाणेरा नगर में युद्ध किया। वीर बीका सोलंकी ने घाटे की रक्षा की और युद्ध किया।

राणेन्द्रेण कुमारोथ गजसिंहो बलान्वितः।
प्रस्थापितो बभंजाय तद्वेगमपुरं महत् ॥४४॥

भावार्थ—तदनन्तर महाराणा ने साथ में सेना देकर कुँवर गजसिंह को नियुक्त किया। उसने बेगू नाम के बड़े नगर को ध्वस्त कर दिया।

राष्ट्रत्रयं रूप्यमुद्रालक्षत्रयमथापि वा।
दत्त्वैव मेलनं कार्यं मया राणेन निश्चितं ॥४५॥

भावार्थ—तीन राष्ट्र व तीन लाख रुपये देकर मुझे महाराणा से संधि कर ही लेनी चाहिये। ऐसा मैंने तय किया है।

औरंगजेबो दिल्लीश उक्तवानिति तदुत्तरं।
विधेः कलेर्बलाज्जातं यत्तदग्रे वदाम्यहं ॥४६॥

भावार्थ—दिल्ली-पति औरंगजेब ने उपर्युक्त बात कही। इसके बाद दुर्दैव से जो हुआ उसे मैं आगे सर्ग में कहूँगा।

श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमान्प्रतापः सुत
स्तस्य श्री अमरेश्वरोस्य तनयः श्रीकर्णसिंहोस्य वा।
पुत्रो राणजगत्पतिश्च तनयोस्माद्राजसिंहोस्य वा
पुत्रः श्रीजयसिंह एष कृतवान्वीरः शिलालेखितं ॥४७॥

भावार्थ—राणा उदयसिंह के प्रताप उनके अमरसिंह उनके कर्णसिंह उनके जगतसिंह उनके राजसिंह तथा राजसिंह के जयसिंह हुआ। उस वीर जयसिंह ने यह शिलालेख उत्कीर्ण करवाया।

पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमाख्ये दिने
द्वात्रिंशन्मितवत्सरे नरपते श्रीराजसिंहप्रभो ।
काव्यं राजसमुद्रमिष्टजलधेः सृष्टप्रतिष्ठाविधेः
स्तोत्राक्तं रणछोडभट्टरचितं राजप्रशस्त्याह्वयं ॥४८॥

भावार्थ—संवत् १७३२, माघ महीने की पूर्णिमा के दिन महाराणा राजसिंह ने जिस मधुर सागर राजसमुद्र की प्रतिष्ठा करवाई उसका यह स्तोत्र-पूर्ण 'राजप्रशस्ति' नामक काव्य है। इसकी रचना रणछोड भट्ट ने की।

युग्म ।

आसीद्भास्करतस्तु माधवबुधोऽस्माद्रामचन्द्रस्ततः
सर्वेश्वरक: कठोडिकुलजो लक्ष्म्यादिनाथस्ततः ।
तैलंगोस्य तु रामचन्द्र इति वा कृष्णोस्य वा माधवः
पुत्रोभून्मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमाः ॥४६॥

भावार्थ—भास्कर का पुत्र माधव था। माधव के पुत्र हुआ रामचन्द्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर। सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ, जो कठोडी कुल में उत्पन्न हुआ। उसके हुआ तैलंग रामचन्द्र। उस रामचन्द्र के ब्रह्मा शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए-कृष्ण माधव और मधुसूदन।

यस्यासीन्मधुसूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजाऽ
भून्माता रणछोड एव कृतवान्राजप्रशस्त्याह्वयं ।
काव्यं राणगुणौघरणनमयं वीरांकयुक्तं महत्
द्वाविंशोभवदत्र सर्ग उदितो वागर्थसर्गस्फुटः ॥५०॥

भावार्थ—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है उस रणछोड़ ने इस राजप्रशस्ति नामक काव्य की रचना की। इस काव्य में महाराणा के गुणों का वर्णन है और योद्धाओं का जीवन-चरित्र अंकित है। यहाँ उसका बाईसवाँ सर्ग सम्पूर्ण हुआ जिसके शब्द और अर्थ दोनों सुन्दर हैं।

इति श्रीराजप्रशस्तौ श्रीराजसागरप्रशस्तौ द्वाविंशः सर्गः ।

त्रयोविंश सर्ग

[चौबीसवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नम ॥

शते सप्तदशेतीते सप्तत्रिंशन्मितेब्दके ।
कार्तिके शुक्लदशमीदिने राणापुरंदर ॥१॥

भावार्थ—संवत् १७३७, कार्तिक शुक्ला दशमी के दिन महाराणा राजसिंह

नानाविधानि दानानि द्रव्य दत्त्वा त्वनतक ।
द्विजादिभ्यो हरिं ध्यात्वा जपमाला करे दधत् ॥२॥

भावार्थ—द्विजादिकों को नाना प्रकार के दान और अनत द्रव्य देकर, भगवान का ध्यान धरकर तथा जप-माला हाथ में लेकर

हृदि सस्थाप्य च जपन्नाम स्वनाम च ।
सयश स्थापयँल्लोके भूलोक व्यत्यवान्नृप ॥३॥

भावार्थ—शांत चित्त से भगवान का नाम जपता एव यश सहित अपने नाम को ससार में स्थापित करता हुआ पृथ्वी-लोक से चल बसा ।

ददाना महादानवृद द्विजेन्य-
स्तथा गा सवत्सा सुवर्णादिपूर्णा ।
तदुत्थ फल शंकर सन्दधानो
नृपो दुर्गमस्वर्गमार्गाय यात ॥४॥

भावार्थ—महाराणा ने जो अनेक महादान तथा सुवर्णादि वस्तुओं के साथ बछड़ों सहित गौएँ ब्राह्मणों को प्रदान कीं, उनसे उत्पन्न पुण्यरूप पाथेय को लेकर वह स्वर्ग के दुर्गम मार्ग की ओर चला।

महादानसन्मण्डपस्तम्भसंघा
कृता दारुणा तेऽभवन्स्वर्णरूपा।
तदीयोच्चनिःश्रेणिकाश्रेणिकाभि
क्षितिरूपशहीन विमान समान ॥५॥

भावार्थ—महादान के लिये जो सुन्दर मण्डप बनवाया गया था, उसके काठ के स्तम्भ सोने के हो गये। मण्डप में लगी ऊँची ऊँची निसनियों से वह पृथ्वी से ऊपर उठा हुआ,

महेन्द्रेण सम्प्रेषितं मेदिनीन्द्र
समारुह्य दिव्यैर्गणैः संवृतश्च।
स नाके सुखं प्राप धर्मेण साकं
महाराजसिंहो नरेन्द्रेषु सिंह ॥६॥

भावार्थ—इन्द्र द्वारा सम्मान पूर्वक भेजा गया विमान बन गया। राजाओं में सिंह महाराणा राजसिंह देवताओं के साथ उस पर आरूढ हुआ और धर्म के साथ स्वर्ग में रहकर उसने वहाँ का सुख प्राप्त किया।

महेन्द्रेण सम्मानितस्तेन दिव्या-
सने स्थापितो मानितस्तोषितो यत्।
महादानमालातडागप्रतिष्ठा-
करो विष्णुनामग्रही धर्मपूर्णः ॥७॥

भावार्थ—प्रतिष्ठावान् राजसिंह को दिव्यासन पर बिठाकर इन्द्र ने उसे सम्मानित एवं सन्तुष्ट किया। क्योंकि उसने अनेक महादान दिये और तडाग की प्रतिष्ठा की थी। इसके अतिरिक्त वह विष्णु भक्त एवं धर्मात्मा था।

तत स्वीयवकु ठलोके स्वकु ठ-
प्रभावो हरि प्रेषयित्वा विमान ।
मुदाऽनाय सस्थापयामास युक्त
स्वपूर्वोद्भव सनुत राजसिंह ॥८॥

भावार्थ —तदन तर मकु ठित प्रभाव वाले विष्णु ने विमान भेजकर राजसिंह को अपने वैकु ठलोक म बुला लिया और उनके पूर्वजों के साथ उसे सहर्ष स्थापित कर दिया जो उचित था ।

नत कडेजे नगरे शिविर व्यतनोद्बली ।
जयसिंहो जयमय स्त्पचदशवासरान् ॥६॥

भावार्थ —इसके बाद शक्तिशाली एव विजयी जयसिंह ने कुरज नगर में शिविर लगाया। वहाँ पद्रह दिन

उल्लघ्य कृतवान्वीरो राणसिंहासनस्थिति ।
ररक्ष रणदक्षोय क्षोणीमक्षौहिणीपति ॥१०॥

भावार्थ —वितावर अक्षौहिणी पति एव रण दक्ष जयसिंह महाराणा क सिंहासन पर आरूढ हुआ और पृथ्वी का रक्षक बना ।

शते सप्तदशे पूर्णे सप्तत्रिंशन्मितेऽब्दके ।
मागशीर्षे शौयमार्गप्रकाशी मार्गणाथद ॥११॥

भावार्थ —सवत् १७३७ मागशीष महाने म, शूरता के माग को प्रकाशित करने वाले एव याचको को धन दने वाले

वस कडजे नगरे जयसिंहो महामना ।
श्रुत्वा तहव्वर खान देवसूरी विलय च ॥१२॥

भावार्थ —महामना जयसिंह ने कुरज मे रहते हुए सुना कि दसूरी को लाधकर

आयात घट्टमर्यादालोपिन कोपपूरित ।
स्वभ्रातर भीमसिह भीम वा प्रैषयत्स तु ॥१३॥

भावार्थ—घाटे की मर्यादा को नष्ट करने वाला तहव्वरखाँ आया है। जयसिंह क्रोध से भर गया। उसने अपने विशालकाय भाई भीमसिंह को भेजा। उसने

बीकासोलंकिन दृष्ट्वा त समाश्वास्य तत्पर।
महाभीमो भीमसिहो बीका सोलंकिना वर ॥१४॥

भावार्थ—महाभीम भीमसिंह ने सोलंकी बीका को युद्ध के लिये तैयार हुआ देखकर आश्वासन दिया। तब उसने और सोलंकियो मे श्रेष्ठ बीका ने

जघ्नतुर्म्लेच्छस यानि रुद्धस्तहव्वरोभवत् ।
दिनाष्टकात मुक्त थ राहुमुक्तेंदुविच्छवि ॥१५॥

भावार्थ—म्लेच्छ सनिको का सहार किया। तहव्वरखाँ घिर गया। वह आठ दिन बाद, राहु से मुक्त हुए शोभा-हीन चद्रमा के समान, मुक्त हुआ।

धाणोरापार्श्व आयातो जयसिहो दलेलखां।
छप्पनदेशशैलेष्वायातो ह्यागोवृतोस्य तु ॥१६॥

भावार्थ—जयसिंह धाणोरा के समीप आया। दलेलखाँ छप्पन प्रदेश के पहाड़ों में आया। क्योकि उसे पापों ने घेर लिया था।

मार्गो दत्तो राणालोकैर्गोगुदाघट्ट आगत ।
रुद्धा घट्टास्ततो राणालोकैर्लोकेषु विश्रुतै ॥१७॥

भावार्थ—राणा के लोगो ने उसे मार्ग दिया। जब वह गोगूँदा के घाटे में पहुँचा तब महाराणा के सुप्रसिद्ध योद्धाओं ने घाटों को रोक दिया।

तत स्वीयवकु ठलोकं स्ववु ठ-
प्रभावो हरि प्रेषयित्वा विमान ।
मुदाऽऽनाय्य तस्थापयामास युक्त
स्वपूर्वोद्भव सत्सुत राजसिंह ॥८॥

भावार्थ —तदनन्तर प्रकु ठित प्रभाव वाले विष्णु ने विमान भेजकर राजसिंह को अपने वकु ठलोक म बुला लिया और उनके पूवजों के साथ उस सद्रूप स्थापित कर दिया जो उचित था ।

तत कुडने नगरे शिविर व्यतनोद्बली ।
जयसिंहो जयमय सत्पचदशवासरान् ॥९॥

भावार्थ —इसके बाद शक्तिशाली एव विजयी जयसिंह ने कुरज नगर में शिविर लगाया । वहाँ पद्रह दिन

उल्लघ्य कृतवा वीरो राणासिंहासनस्थिति ।
ररक्ष रणदक्षोय क्षोणीमक्षौहिणीपति ॥१०॥

भावार्थ —बिताकर अक्षौहिणी-पति एव रण दक्ष जयसिंह महाराणा के सिंहासन पर आरूढ हुआ और पृथ्वी का रक्षक बना ।

शते सप्तदशे पूर्णे सप्तत्रिशन्मितेऽब्दके ।
मार्गशीर्षे शौर्यमार्गप्रकाशी मार्गणायद ॥११॥

भावार्थ —सवत् १७३७, मार्गशीर्ष महीने म शूरता के मार्ग को प्रकाशित करने वाले एव याचकों को धन देने वाले

वसन्कुडजे नगरे जयसिंहो महामना ।
श्रुत्वा तहव्वर खान देवसूरी विलघ्य च ॥१२॥

भावार्थ —महामना जयसिंह न कुरज मे रहते हुए सुना कि देसूरी को लाघकर

आयात घट्टमर्यादालोपिन कोपपूरित ।
स्वभ्रातर भीमसिंह भीम वा प्रेषयत्स तु ॥१३॥

भावार्थ—घाटे की मर्यादा को नष्ट करने वाला तहव्वरखां आया है। जयसिंह क्रोध से भर गया। उसने अपने विशालकाय भाई भीमसिंह को भेजा। उसने

वीकामोलक्नि हष्ट्वा त समाश्वास्य तत्पर।
महाभीमो भीमसिंहो वीका सोलक्निा वर ॥१४॥

भावार्थ—महाभीम भीमसिंह ने सोलकी बीका को युद्ध के लिये तैयार हुआ देखकर आश्वासन दिया। तब उसने और सोलकियों में श्रेष्ठ बीका ने

जघ्नतुम्लेच्छसैं यानि रुद्धस्तहवरोभवत् ।
दिनाष्टकात मुक्त थ राहुमुक्तेंदुविच्छ्रिव ॥१५॥

भावार्थ—म्लेच्छ सैनिकों का सहार किया। तहव्वरखां घिर गया। वह आठ दिन बाद, राहु से मुक्त हुए शोभा-हीन चन्द्रमा के समान, मुक्त हुआ।

पानोरापाश्व आयातो जयसिंहो दलेलखां।
छप्पनदशशलेप्वायातो ह्यागोवृतोस्य तु ॥१६॥

भावार्थ—जयसिंह पाणोरा के समीप आया। दलेलखां छप्पन प्रदेश के पहाड़ों में आया। क्योंकि उसे पापों ने घेर लिया था।

मार्गो दत्तो राणलोकैर्गोगुदाघट्ट आगत ।
रुद्धा घट्टास्ततो राणालोकैर्लोकेषु विश्रुतै ॥१७॥

भावार्थ—राणा के लोगों ने उसे मार्ग दिया। जब वह गोगूंदा के घाटे में पहुँचा तब महाराणा के सुप्रसिद्ध योद्धाओं ने घाटों को रोक दिया।

रत्नसीरावतेनापि स्थित घट्ट शिलोत्कटे।
दलेलखाँ न शक्तोभूत्तदा गतु कथचन ॥१८॥

भावार्थ—भीषण चट्टानों वाले घाटे पर रावत रत्नसी भी विद्यमान था। दलेलखाँ वहाँ से किसी प्रकार नहीं निकल सका।

अथ श्रीजयसिंहन भालाम्यो वरसाभिध।
प्रेषितो मेलन कर्तु तेनोक्त मार्गगामिना ॥१६॥

भावार्थ—तत्पश्चात् जयसिंह ने भाला वरसा को संधि करने के लिये भेजा। निर्देशानुसार भाला ने

दलेलखान प्रत्यव भवान्दिल्लीशमानित।
सहस्राण्यश्ववाराणा सग पचदशात्र ते ॥२०॥

भावार्थ—दलेलखाँ से कहा कि आप बादशाह के माने हुए व्यक्ति हैं। आपके साथ यहाँ पंद्रह हजार अश्वारोही सैनिक भी हैं।

राणेंद्रस्यकराजन्यो घटट रुद्ध्वा स्थितो भवान्।
निःसरत्वेव निश्चिन्तो राणेंद्रस्य तव स्फुट ॥२१॥

भावार्थ—परन्तु घाटे को महाराणा का केवल एक राजपूत रोककर खड़ा है। आप निश्चिन्त होकर निकल सकते हैं। महाराणा का आपके प्रति

स्नेहस्तदत्रपयतमायातस्त्वमन पर।
नवावेनोच्यते चेत्त घट्टानि सारयाम्यह ॥२२॥

भावार्थ—स्नेह है। इस कारण आप यहाँ तक आ सके हैं। अब यदि आप कहें तो घाट से मुक्त करवा दूँ

उच्यते चेत्स्थापयामि नवावेन तदेरित।
पश्चात्सैन्य ममायाति मास्तु तेनापि वारण ॥२३॥

भावार्थ—मगर कहें तो रखवा दूँ। इस पर नवाब बोला कि पीछे जो मेरे सैनिक आ रहे हैं वे भी जब मना न करें।

घटटत्रयस्य मार्गस्य दृष्ट्यर्थं प्रेषिता भटा।
तदुक्त तु नवाबेन कृत घट्टत्रय दृढ ॥२४॥

भावार्थ—तीनों घाटों के माग देखने के लिये नवाब ने जिन योद्धाओं को भेजा था, लौटकर उन्होंने बताया कि तीनों घाटे मजबूत हैं।

नतो न नि सृतस्तत्र नवाबस्तदनतर।
सहस्ररूप्यमुद्रास्तु दत्त्वैकस्मै द्विजातये ॥२५॥

भावार्थ—इस कारण नवाब नही निकल सका। तब उसने एक ब्राह्मण को एक हजार रुपये दिये

अग्रेसर च त कृत्वा नवाबो रणकेसरी।
नि सृतो येन मार्गेण रात्रौ तत्रापि सैन्यवान् ॥२६॥

भावार्थ—और उसे आगे कर रण-केसरी नवाब एक रात में दूसरे माग से निकल गया। किन्तु वहाँ भी सेना लेकर

रत्नसीरावतो रत्न योधाना मार्गतो जवात्।
रण चक्रे नि सरण नवाव कष्टतो व्यधात् ॥२७॥

भावार्थ—योद्धा-रत्न रावत रतनसी जा पहुँचा। माग पर स्थित होकर उसने तीव्र युद्ध किया। नवाब कठिनाई से निकल पाया।

इत्थ दलेलखानस्तु नि सृतो घट्टतश्छलात्।
दिल्लीशातिक आयात पृष्टो दिल्लीश्वरेण स ॥२८॥

भावार्थ—इस प्रकार दलेलखाँ घाटे से छल पूर्वक निकलकर दिल्ली-पति के पास पहुँचा। दिल्ली-पति ने उससे पूछा कि

त्व नि सृत्य किमायातो राणकस्यानु नो गत।
दलेलखाँ तदोवाच नाऽन लब्ध मया प्रभो ॥२९॥

भावार्थ—तुम निकलकर क्यों आये, राणा का पीछा क्यों नहीं किया। तब दलेलखाँ बोला कि स्वामिन्! मुझे वहाँ अन्न नहीं मिला।

गणेंद्रो मम पश्चात् हतुं मां समुपागतः।
योधा मे मारितास्तेन नानाहं तेन निःसृतः ॥३०॥

भावार्थ—महाराणा ने मुझे मारने के लिये मेरा पीछा किया। उसने मेरे कई योद्धाओं को भी मार डाला। इस कारण मुझे वहाँ से निकलना पड़ा।

अन्नाभावान्नित्यमेव लोकाना तु चतुःशती।
मृताहं तन्निःसृतस्तत् श्रुत्वा दिल्लीश आकुलः ॥३१॥

भावार्थ—अन्न के अभाव से प्रतिदिन मेरे चार सौ लोग मरते थे। इसलिये भी मैं वहाँ से निकला। यह सुनकर दिल्लीपति व्याकुल हुआ।

अथावबर आयातो मेलनं कर्त्तुमुद्यतः।
राणाश्रीकर्णसिंहस्य द्वितीयस्तनयोबली ॥३२॥

भावार्थ—इसके बाद संधि करने के लिये तयार होकर अकबर आया। महाराणा कर्णसिंह के द्वितीय पुत्र शक्तिशाली

गरीबदासस्तत्पुत्रः श्यामसिंह इहागतः।
कृत्वा मेलनवार्त्तां ता परावर्त्य गतो दृढा ॥३३॥

भावार्थ—गरीबदास का पुत्र श्यामसिंह भी यहाँ आया। उसने संधि वार्ता को और उसे पक्की कर वह वापस लौट गया।

ततो दलेलखानस्तु मेलने दार्ढ्यमातनोत्।
तथा हसनअल्लीखा मेलनस्य विधिं व्यधात् ॥३४॥

भावार्थ—तदनन्तर दलेलखाँ ने संधि को सुदृढ किया और असन अलीखाँ ने संधि करने का ढंग निश्चित किया।

जयसिंहोऽथ मेलनं कर्तुंमुद्योगमातनोत् ।
श्रीमद्राजसमुद्रस्य अग्रभागे स्थितस्ततः ॥३५॥

भावार्थ—तत्पश्चात् जयसिंह संधि-कार्य में रत हुआ। वह सुंदर राजसमुद्र के अग्रभाग पर ठहरा।

सहस्राण्यश्ववाराणां सप्त स सप्तत्विषा ।
मध्ये स्थितः सप्तसप्तिसमतेजाः समावभौ ॥३६॥

भावार्थ उसके सात हजार अश्वारोही सात रंग की किरणों के समान थे, जिनके मध्य में स्थित वह सात अश्वों वाले तेजस्वी सूर्य के समान शोभा पा रहा था।

जयसिंहः स्थितः सप्तनामसन्निभमे हये ।
तत्प्रेक्षकजनैः प्रोक्तं अश्ववारमयं जगत् ॥३७॥

भावार्थ—जयसिंह सूर्य के अश्व के समान अश्व पर बैठा था। उसके अश्वारोहियों को देखकर लोगों ने कहा कि सारा संसार अश्वारोहियों से व्याप्त है।

पदातीनामयुतकं सगे स्थापितवान्प्रभुः ।
तदा पत्तिमयं प्रोक्तं जगद्दृष्ट्वा जनैर्ध्रुवं ॥३८॥

भावार्थ—महाराणा ने दस हजार पदाति सेना साथ में ली, जिसे देखकर लोगों ने कहा कि यह संसार निःसंदेह पदाति सेना से व्याप्त है।

महाशौर्यो महाधैर्यो जयसिंहस्ततो बली ।
झालें-चंद्रसेनाह्वं चौहानं स्थापयत्पुरः ॥३९॥

भावार्थ—तदनंतर महान् पराक्रमी एवं अत्यंत धैर्यवान् शक्ति वाले जयसिंह ने झाला चंद्रसेन, चौहान

तत श्रीजयसिंहाह्वा   पूर्वोक्तैष्ठक्कुरैवृं त ।
गरीबदासनाम्ना   स्वपुरोहितवरेण   वा ५०॥

भावार्थ—इसके बाद पूर्वोक्त ठाकुरों एवं अपने बड़े पुरोहित गरीबदास को तथा

भीखूप्रधानवंश्येन   युक्त   सुयोनितेजसा ।
महाभाग्यो महाशौर्यो महोत्साहो महामना ॥५१॥

भावार्थ—प्रधान भीखू वंश को साथ में लेकर वह क्षात्र तेज से देदीप्यमान परम भाग्यशाली महान् पराक्रमी बड़ा उत्साही और महामना

हिंदूम्लेच्छमहावीरदेशनाथविशोभित ।
आजमाख्यसुरत्राणमर्णदर्शनमातनोत् ॥५२॥

भावार्थ—जयसिंह सुरत्राण आजम से मिला। जयसिंह के साथ हिंदू और म्लेच्छ जाति के बड़े-बड़े वीर और राजा भी थे।

आजमाख्यसुरत्राणो   राणेंद्रस्यादर   भृश ।
अकरोद्विनयोपेतस्स   स्नेहमनुदर्शयन् ॥५३॥

भावार्थ—स्नेह प्रकट करते हुए सुरत्राण आजम ने महाराणा का विनयपूर्वक अत्यधिक आदर किया।

एकादशगजानश्वाश्चत्वारिंशन्मिता न्शुभिन् ।
आजमाख्याय रानेंद्रोऽर्पयामास   सुदर्पवान् ॥५४॥

भावार्थ—स्वाभिमानी महाराणा ने ग्यारह हाथी और चालीस सुन्दर अश्व आजम को भेंट किये।

आजमाख्य   सुरत्राण   एक   मन्त्लसद्द्विप ।
अष्टाविंशतिसत्याश्वा सहेमवसनत्रयी   ॥५५॥

भावार्थ—सुरत्राण आज़म ने एक मदमत्त हाथी, अट्ठाईस घोड़े, तीन ज़रीन वस्त्र और

पञ्चाशत्प्रमिताभूषासमूहं रानभूभुजे।
ददौ महास्नेहमयमेलन त्वनयोरभूत् ॥५६॥

भावार्थ—पचास आभूषण महाराणा को दिये। इस प्रकार दोनों में अत्यन्त स्नेहपूर्वक संधि हुई।

दलेलखा तदोवाच सुलतान शृणु प्रभो।
अयं वीरश्चन्द्रसेनो राना झालाशिरोमणि ॥५७॥

भावार्थ—तब दलेलखां ने कहा कि हे स्वामिन्, सुलतान! सुनिये। यह झाला-शिरोमणि वीर राणा चन्द्रसेन है।

राव सबलसिंहोयं रत्नसीनामरावल।
चोंडावता रणे चंडा शक्ता शक्तावतास्तथा ॥५८॥

भावार्थ—यह राव सबलसिंह है। इसका नाम रावत रतनसी है। ये रण-प्रचंड चूंडावत और ये शक्तिशाली शक्तावत हैं।

परमारश्च राठोडास्तथा राणावतोत्तमा।
रणे सिंहा पर्वतेषु मार्गदद्युरुत्तमा ॥५९॥

भावार्थ—ये परमार और ये राठौड़ हैं। इसी प्रकार ये रण-केसरी श्रेष्ठ राणावत हैं। इन्होंने पहाड़ों में मार्ग दिया था।

युयुधुर्न महायोधा ज्ञातव्य विज्ञतावुधे।
दिल्लीशेन पर[प्रीति]रानीवत्वया रक्षितु ध्रुव ॥६०॥

भावार्थ—हे परम विज्ञ! यह जानने योग्य है कि बादशाह से प्रीति बनाये रखने के लिये महाराणा की आज्ञा से इन वीरों ने युद्ध नहीं किया।

आजमोऽप्युक्तवानेवं सत्यमेव न संशयः ।
सन्तुष्टो जयसिंहाय ददावाज्ञां कृतादरः ।।६१।।

भावार्थ—आजम ने भी कहा कि यह सच ही है। इसमें सन्देह नहीं है। फिर प्रसन्न जयसिंह को सादर एवं प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दी।

जयसिंहो महाभाग्यो वीरः शिविरमागतः ।
अस्यासीद्भाग्यतः शीघ्रं मेलनं जनतावदत् ।।६२।।

भावार्थ—महाभाग्यशाली वीर जयसिंह अपने शिविर में लौट आया। लोगों ने कहा कि इसके भाग्य से संधि शीघ्र हो गई।

पूर्णः सर्गः । इति त्रयोविंशतितमः सर्गः ।।

चतुर्विंश सर्ग

[पच्चीसवीं शिला]

सिद्ध ॥ श्री गणेशाय नम ॥

प्रेम्णा अमरसिंहाख्यपौत्रयुक्तस्य धर्मिण ।
राणेंद्रराजसिंहस्य राजराजस्य संपदा ॥१॥

भावार्थ—महाराणा राजसिंह धर्मात्मा एवं संपत्ति में कुबेर था। अपने पौत्र अमरसिंह को प्रेमपूर्वक साथ में लेकर

हेम्नो दशमहस्रोद्यत्तोलकै पूर्णतोभृत ।
शुद्धात्मना विसृष्टायास्तुलाया अतुलाजुष ॥२॥

भावार्थ—उस शुद्धात्मा ने दस हजार तोले सोने का जो अतुलनीय तुलादान किया, उसका

महासेतौ हस्तिनीसत्स्कंधे वधुरसुंदर ।
तोरणं भाति गौरोच्चाघोरण तुलयद्रुचा ॥३॥

भावार्थ—महासेतु पर निर्मित हस्तिनी के सुंदर स्कंध पर हंस के समान उज्वल एक तोरण बना है। शोभा में वह गौरवर्ण के महावत के समान है।

महोज्ज्वलतया किं वा ऐरावतकुलस्थिति ।
हस्तियेपा मूर्द्धि धत्ते चित्रस्योच्चभूषणं ॥४॥

भावार्थ —अथवा अतिशय उज्ज्वलता के कारण यह हस्तिनी ऐरावत-कुल में उत्पन्न हुई जान पडती है जिसने मस्तक पर चादी का अद्भुत एव सुन्दर आभूषण पहन रखा है।

दत्ताकुशद्वयाप्येषा अचलैवाभवत्तत ।
दर्शित तून्नतीकृत्य हस्तिपेनाकुशद्वय ॥५॥

भावार्थ —दो अकुशो से प्रहार करने पर भी यह हस्तिनी अपने स्थान से हिली नही । इस कारण महावत ने मानो उन दो अकुशो को उठाकर दिखाया है।

महातोरणमेतत्तु गौरीकीर्त्योन्नतीकृत ।
प्राजल साजलियुग भुजयोर्भाति भूपते ॥६॥

भावार्थ—यह तोरण तो उज्ज्वल कीर्ति के कारण ऊपर उठा हुआ सुन्दर अजलि-युग्म है जो महाराणा की भुजाओ मे शोभा पा रहा है।

द्वितीय तोरण तत्र पार्श्वेस्ति लघु सुदर ।
तथा अमरसिंहास्यपौत्रस्यातिविचित्रकृत् ॥७॥

भावार्थ—वहाँ पास मे एक दूसरा तोरण है जो छोटा किन्तु सुदर और बडा आश्चर्यजनक है। वह राजसिंह के पौत्र अमरसिंह का है।

राणेन्द्रराजसिंहस्य पट्टराज्ञातिविज्ञया ।
श्रीराणाजयसिंहस्य मात्रा मित्रप्रतापया ॥८॥

भावार्थ —महाराणा राजसिंह की परम विज्ञ एव सूर्य के समान प्रताप वाली पटरानी महाराणा जयसिंह की माता

सदाकुवरिनाम्न्या या तुला रूप्यमयी कृता ।
आस्ते तत्तोरण चित्र हस्तिन्या हस्तयुग्मवत् ॥९॥

भावार्थ—सदाकुंवरि ने चांदी की जो तुला की उसका एक अद्भुत तोरण वहां बना है। वह हस्तिनी की दो सूंडों के समान है।

आस्ते गरीबदासस्य पुरोहित शिरोमणेः।
कृताया स्वर्णपूर्णायास्तुलायास्तोरणं महत् ॥१०॥

भावार्थ—वहीं बड़े पुरोहित गरीबदास द्वारा की गई स्वर्ण-तुला का एक सुंदर तोरण विद्यमान है।

गरीबदासस्य पुरोहितस्य
ज्येष्ठ कुमारो रणछोडराय।
आस्ते कृताया किल तेन रूप्य-
भ्राजत्तुलाया शुभतोरणं सत् ॥११॥

भावार्थ—पुरोहित गरीबदास के ज्येष्ठ पुत्र रणछोड़राय ने चांदी का जो सुंदर तुलादान किया उसका एक मनोरम तोरण वहां बना है।

श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमान्प्रताप सुत-
स्तस्य श्रीअमरेश्वरोस्य तनय श्रीकर्णसिंहोस्य वा।
पुत्रो राणजगत्पतिश्च तनयोस्मादाजसिंहोस्य वा
पुत्र श्रीजयसिंह एष कृतवान्वीर शिलाऽऽलेखितं ॥१२॥

भावार्थ—राणा उदयसिं, के प्रताप, उसके अमरसिंह, उसके कर्णसिंह उसके जगतसिंह, उसके राजसिंह तथा राजसिंह के जयसिंह हुआ। उस वीर जयसिंह ने यह शिलालेख उत्कीर्ण करवाया।

पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमाख्ये दिने
द्वात्रिंशन्मितवत्सरे नरपते श्रीराजसिंहप्रभो।
काव्य राजसमुद्रमिष्टजलधे सृष्टप्रतिष्ठाविधे
स्तोत्राक्त रणछोडभट्टरचितं राजप्रशस्त्याह्वय ॥१३॥

भावार्थ—महाराणा जयसिंह ने संवत् १७३२ माघ कृष्ण पूर्णिमा के दिन जिसकी प्रतिष्ठा करवाई उस मधुर सागर राजसमुद्र का स्तुतिपरक यह 'राजप्रशस्ति काव्य है। इसकी रचना रणछोड भट्ट ने की।

युग्म।

आसीद्भास्करतस्तु माधवबुधोऽस्माद्रामचन्द्रस्ततः
सत्सर्वेश्वरक कठोडिकुलजो लक्ष्म्यादिनाथस्ततः।
तैलंगोस्य तु रामचंद्र इति वा कृष्णोस्य वा माधव
पुत्रोभू मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमा ॥ १४॥

भावार्थ—भास्कर का पुत्र माधव था। माधव के पुत्र हुआ रामचन्द्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर। सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ जो कठोडी कुल में उत्पन्न हुआ। उसके हुआ तैलंग रामचन्द्र। उस रामचन्द्र के ब्रह्मा शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए—कृष्ण माधव और मधुसूदन।

यस्यासीन्मधुसूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजा
भूर्माता रणछोड एष कृतवान्राजप्रशस्त्याह्वयं।
काव्यं राणगुणौघवर्णनमयं [वीराङ्कयुक्तं] चतु
र्विंशत्याख्य इहाभवद्भवमुदे सर्गोयमर्गोन्नत ॥१५॥

भावार्थ—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है उस रणछोड ने इस राजप्रशस्ति नामक काव्य की रचना की। इस काव्य में महाराणा के गुणों का वर्णन है और योद्धाओं का जीवन-चरित्र अंकित है। यहाँ उसका उन्नत अर्थ वाला चौबीसवां सर्ग सम्पूर्ण हुआ। यह संसार को आनंद प्रदान करे।

राजप्रशस्तिग्रन्थोयं प्रसिद्धः स्याज्जगत्यलं।
लक्ष्मीनाथादिबालाना पाठार्थं जायतां ध्रुवं ॥१६॥

भावार्थ—यह राजप्रशस्ति ग्रन्थ संसार में अतिशय प्रसिद्ध हो और लक्ष्मीनाथ आदि बालकों को पढाने में सदा काम आवे।

नारायणादिपुण्यात्मराण द्रा वयदर्णन ।
कर्णस्थित स्यात्स्वर्णोच्चपुत्रपौत्रसुखप्रद ॥१७॥

भावार्थ—इसमें नारायण से लेकर पुण्यात्मा महाराणा तक का वंश-वर्णन है। सुनने पर यह कान से भी बढ़कर पुत्र-पौत्र का सुख देने वाला हो।

रामादिराजस्तुतियुक्काव्य रामायणोपम ।
श्रुत्वा धने धनेश स्यात्काव्ये काव्यो गुरुर्गिरि ॥१८॥

भावार्थ—राम आदि राजाओं का स्तुति-पूर्ण यह काव्य रामायण के समान है। इसे सुनकर मनुष्य सपत्ति मे कुबेर, काव्य मे शुक्राचार्य तथा विद्या मे बृहस्पति बने।

नानाराजेतिहासाक्त ग्रथ स्याद्भारतोपम ।
भारत्या भारतीतुल्य पठन्भारतखडके ॥१९॥

भावार्थ—संस्कृत भाषा में रचित एव अनेक राजाओं के इतिहास से पूर्ण यह ग्रथ महाभारत के समान है। इसे पढ़कर मनुष्य भारतवर्ष मे सरस्वती के समान बने।

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी बाहुजो बाहुवीर्यवान् ।
वैश्यो लभेद्धन श्रुत्वा शूद्रो भद्र तथाखिल ॥२०॥

भावार्थ—सपूर्ण राजप्रशस्ति को सुनकर ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी और क्षत्रिय बाहु-बल-शाली बने तथा वैश्य धन एव शूद्र कल्याण प्राप्त करे।

सस्तभ्य चित्तमन्येभ्य पठन्स्यत्त्वमाप्नुयात् ।
दुर्लभता भुवने मर्त्यो नालभ्य तस्य किंचन ॥२१॥

भावार्थ—दूसरी ओर से चित्त को केन्द्रित कर जो मनुष्य इसे पढ़ता है वह सम्य एव धन युक्त बनता है। ससार में उसके लिये कुछ भी अलभ्य नहीं रहता।

विप्रोग्निहोत्रग्रामेभ्य क्षत्रियोऽखिलभूमिप ।
वैश्यो धनी स्यात्कायस्थ श्रिया सुखी भवेद्ध्रुव ॥२२॥

भावार्थ—राजप्रशस्ति के श्रवण से ब्राह्मण अग्निहोत्री एव ग्राम-समृद्ध, क्षत्रिय अखिल भू मडल का स्वामी, वैश्य धनवान् और कायस्थ सपत्तिशाली बनता है ।

राजाश्रुत्वा चक्रवर्ती शौर्यगाभीर्यधर्यवान् ।
देशस्वास्थ्य लभेद्व रिविजय कुरुते सदा ॥२३॥

भावार्थ—इसे सुनकर राजा चक्रवर्ती होता है तथा शौर्य गाभीर्य और धर्य प्राप्त करता है । उसका देश स्वस्थ रहता है तथा वह शत्रु पर हमेशा विजय पाता है ।

पठस्फुरद्भागवतनवमस्कन्धसत्कथ ।
आकठ सुखभुग्भूत्वा वकु ठ प्राप्नुयादिद ॥२४॥

भावार्थ—भागवत के नवम स्कध की कथा से युक्त इस ग्रथ का जो पढता है वह सुखों का यथेच्छ उपभोग कर बैकु ठ को प्राप्त करता है ।

दयालसाह कृतवान् खेराबादस्य मारण ।
तत्केतुदुदुभिग्राह दन्हेडाख्यलु टन ॥२५॥

भावार्थ—दयालदास ने खेराबाद को नष्ट कर उसकी ध्वजा और दुदुभि को छीन लिया । उसने बन्हेड़ा को भी लूटा ।

धारापुरी मारण च मसीदितनिपातन ।
ध्वस्त चक्रे महमदनगर लुटने-खिल ॥२६॥

भावार्थ—उसने धारापुरी को नष्ट किया और अनेक मसजिदें गिराई । उसने सपूर्ण महमदनगर को ध्वस्त कर दिया ।

महाम्सीदिपतन कृतवा समरे कृती ।
इत्युक्त प्रभुवीराणा पराक्रमविनिर्णय ॥२७॥

भावार्थ -मुगल दयानसाह ने युद्ध मे बनी मसजिद को गिराया । यह महाराणा के योद्धाओं का वर्णन हुआ ।

जगदीशमिश्रतनयो माथुरहीरामणिर्महामिश्र ।
राजसमुद्रजलाशयसूत्रनिवेशे परिश्रमणे ॥२८॥

भावार्थ —सूत्र निवेशन करने के लिये जब महाराणा ने राजसमुद्र की परिक्रमा की तब जगदीश मिश्र के पुत्र माथुर हीरामणि मिश्र ने

द्वादशशतमणमितिक धा यमद्रीम्र महासेतौ ।
द्वादशशतमणमितिक धान्यार्द्रि काकरोलीस्थे ॥२६॥

भावार्थ—बारह सौ मन धान्य का पर्वत महासेतु पर और उतने ही धान्य का पर्वत कांकरोली के

सेतौ सन्थाप्य तथा साधसहस्राच्छरूप्यमुद्राणा ।
कृत्वा ढब्बूकगण स रूप्यमुद्रादिक तदर्थिभ्य ॥३०॥

भावार्थ —सेतु पर बनाया । उसने डेढ हजार रुपयो के ढब्बूक बनवाये । फिर उसने रुपये आदि याचको को

पड्दिनपर्यन्तमय दत्तो तदा राजसिंह देवेन ।
उक्त जनसमर्दे मिश्रोऽस्मा नक्टत पुर कुरुते ॥३१॥

भावार्थ —छह दिन तक दिये । तब महाराणा राजसिंह ने जन-समुदाय के बीच कहा कि मिश्र को हमारे सम्मुख उपस्थित किया जाय ।

इत्युत्साहेन तदा भक्त्या मिश्र पुर स्थितो नृपते ।
धान्याद्री धनमर्थिभ्योदाय दत्त्वा प्रियो नृपस्यासीत् ॥३२॥

भावार्थ—तब उत्साहित होकर मिश्र भक्तिपूर्वक महाराणा के सम्मुख उपस्थित हुआ। इस प्रकार याचकों को प्रचुर धन-धान्य देकर वह राजसिंह का प्रिय बन गया।

श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमत्प्रताप सुत-
स्तस्य श्रीग्रमरेश्वरोस्य तनय श्रीकर्णसिंहोस्य वा।
पुत्रो राणजगत्पतिश्च तनयोऽस्माद्राजसिंहोस्य वा
पुत्र श्रीजयसिंह एप कृतवान्वीर शिलाऽऽलेखित ॥३३॥

भावार्थ—राणा उदयसिंह के प्रताप, उसके ग्रमरसिंह उसके कर्णसिंह उसके जगतसिंह, उसके राजसिंह ग्रौर राजसिंह के जयसिंह हुग्रा। उस वीर जयसिंह ने यह शिलालेख उत्कीर्ण करवाया।

पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमास्ये दिने
द्वात्रिंशमितवत्सरे नरपते श्रीराजसिंहप्रभो।
काव्य राजसमुद्रमिष्टजलधे सृष्टप्रतिष्ठाविधे
स्तोत्राक्त रणछोडभट्टरचित राजप्रशस्त्याह्वय ॥३४॥

भावार्थ—महाराणा राजसिंह ने सवत् १७३२ माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन जिस मधुर सागर राजसमुद्र की प्रतिष्ठा करवाई उसका स्तोत्र पूर्ण यह 'राजप्रशस्ति काव्य है। इसकी रचना रणछोडभट्ट ने की।

युग्म।

ग्रासीद्भास्करतस्तु माधवबुधोऽस्माद्रामचद्रस्तत
स्सर्वेश्वरव कठोडिकुलजो लक्ष्म्यादिनाथस्तत।
तैलगोस्य तु रामचद्र इति वा कृष्णोस्य वा माधव
पुत्रोभू मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमा ॥३५॥

भावार्थ—भास्कर का पुत्र माधव था। माधव के पुत्र हुआ रामचद्र ग्रौर रामचद्र के सर्वेश्वर। सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ जो कठोडी कुल मे उत्पन्न हुआ। उसके हुग्रा तैलग रामचद्र। उस रामचद्र के ब्रह्मा शिव ग्रौर विष्णु के समान तीन पुत्र हुए कृष्ण माधव ग्रौर मधुसूदन।

यस्यासी मधुसूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजाऽ
भू माता रणछोड एष कृतवान्राजप्रशस्त्याह्वय।
काव्यं राणगुणौघवर्णनमयं वीराङ्कयुक्तं चतु-
र्विंशाख्यास्य इहाभवद्भवमुदे सर्गोऽत्र सर्गोऽनघ ॥३६॥

भावार्थ—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है उस रणछोड ने इस राजप्रशस्ति नामक काव्य की रचना की। इस काव्य में महाराणा के गुणों का वर्णन है और योद्धाओं का जीवन चरित्र अंकित है। यहाँ उसका उन्नत प्रय वाला चौबीसवाँ सर्ग संपूर्ण हुआ। यह संसार को आनंद प्रदान करे।

[इति चतुर्विंशतितमो सर्ग]

दूहा

राणो कोई रजपूत जे घटता जायो महर ।
समुद फेरण सुत राणा तू होज राजसी ॥१॥
ऐ जो मोरग पाहू मेगल मुगल मारिजे ।
राणो रासे राहू रजवट भरियो राजसी ॥२॥[1]

संवत् १७१८ माह वदि ७ नीम खोदवा रो मुहुरत हुवो श्री मतरा टाकर मल श्रीम करवा ॥ राणावत माहासीपजी रामसीपजी राणावत माड-सीपजी चुंडावत दलपतिजी मोहणसीपजी रावत गुणकरणजी चुंडावत मोकम सीपजी मांजावत नरसीघदासजी मांजावत गरीबदासजी राठोड सीपजी राठोड रामचंदजी राठोड हमीजी राठोड मोकमसीघ चितागरा रामचन्द पेवाणी साहु कलु पचोली राम जगमालोत साहु मुकन्दास पंचोली हरराम सेपजी सधु पचोली वाप गजधर मुरा गजधर किल्याण सुत जगनाथ सुत मघो मनो ॥ संवत १७३२ प्रतिष्टा हुईज ॥ शुभ भवतु श्रीरस्तु ॥ सुत्रधार मोहणजी सुत सुत्रधार गुणजी शुभ भा [illegible] ॥

---

१ इन दोहों का शुद्ध पा[illegible]

राणो कोइ र[illegible]

समन्दं फेरण[illegible]

ऐ जो घोरग[illegible]

राणो रास[illegible]

अर्थ—जिस राजपूत [illegible]

हे राणा राजसिंह ! [illegible]

राजसिंह औरंगजेब के [illegible]

परिपूर्ण यह राणा [illegible]

राजप्रशस्तिः महाकाव्यम्

परिशिष्ट

परिशिष्ट संख्या १

त्रिमुखी बावडी की प्रशस्ति

श्रीगणेशाय नम ।

तुहिनकिरणहीरक्षीरकपूरगौर
बपुरपि जलदाभ कान्तिकापांगवल्ल्या ।
प्रतिकृतिघटनाभिर्विभ्रदेवैकलिंग
कलयतु कुशल ते राजसिंह क्षितीद्र ॥१॥

चतुर्मितपुमर्थसद्वितरणाय सद्म्य सदा
चतुभु जधरश्चतुर्युगविराजिराजद्यशा ।
चतुभु जहरि शिव दिशतु राजसिंहप्रभो-
श्चतु श्रुतिसमर्पि त निजचतुभु जाभिर्भृ'श॥२॥

श्रीरामरसदेसृष्टवापीवर्णन सु दरी ।
क्रुवें प्रशस्ति शस्त्या श्रीराजसिंहनृपाज्ञया ॥३॥

आदो वाप्पो रावलोमूर्द्धरिस्ताडनतापद ।
तद्व शे राहप पूर्वं राणानामधरोभवत् ॥४॥

ततस्तु हरसूराणा नरूराणा ततोभवत् ।
जसकणस्ततो राणा नागपालस्ततो नृप ॥५॥

भूणपालस्तत पोथा ततो भुवनसिंहक ।
ततस्तु भीमसिंहोभूज्जयसिंहस्ततोभवत् ॥६॥

लक्ष्मसिंहस्ततो राणा मरिसिंहस्ततोभवत् ।
ततो हमीरराणेंद्रो खेताराणा ततोभवत् ॥७॥

ततो लाखाभिधो राणा तत मोकलनामक ।
तत श्रीकुंभकर्णोभूद्रायमल्लस्ततोभवत् ॥८॥

ततः सांगाभिधो राणा रत्नसिंहस्ततोभवत् ।
तद्भ्राता विक्रमादित्यो विक्रमादित्यविक्रम ॥९॥

तद्भ्रातोदयसिंहोभूद्राज्योदयमय सदा ।
तत प्रतापसिंहोभूत्प्रतापतरणिर्भुवि ॥१०॥

श्रीमानमरसिंहोभूत्ततोऽमरवरप्रभ ।
तत श्रीकर्णसिंहश्च कर्णराजपराक्रम ॥११॥

तत श्रीमज्जगत्सिंहो जगत्पालनतत्परः ।
प्रत्यक्षराजराजेन्द्रो भुवि खवरदोभवत् ॥१२॥

कृतवान् मोहनं लोके श्रीमन्मोहनमंदिरं ।
मेरुप्रभ निजगृहे तथा श्रीमेरुमंदिर ॥१३॥

ॐकारेश्वरमीशान समीप्यऽमरकंटके ।
सुवर्णस्य तुला कृत्वा वपन् स्वर्ण रराज स ॥१४॥

श्वेताश्वदान व्यतनोद्धैम कल्पतरु ददौ ।
सुवर्णपृथ्वी दत्वा-दात्सौवर्णा सप्तसागरान् ॥१५॥

विश्वचक्र सुवर्णस्य दत्वा सुदमन्दिरे ।
श्रीजगन्नाथराय श्रीयुक्त सस्थापयद्विभो ॥१६॥

दानीराय शिव शक्ति गणेश भास्कर तथा ।
प्रतिष्ठाप्य तदेवाऽददृग्रामसहस्र विधानत ॥१७॥

हैमी कल्पलता वापि हिरण्याश्व ददौ तथा ।
पच ग्रामान् जगत्सिंहो रत्नधेनु तदुत्तर ॥१८॥

तत्र श्रीराजसिंहेंद्रो राज्यसिंहासने स्थित ।
भाखंडलोपम श्रीमान् जयति क्षितिमंडले ॥१६॥

श्रीसर्वु विलासाख्य स्वाराम कृतवास्तया ।
देहवारीमहाघट्टे द्वार वाप्ठत्रपाटयुक् ॥२०॥

स्वसुर्विवाहसमये एकसप्ततिकन्यका ।
ददौ महाक्षत्रियेभ्यो गजवाहांबराणि च ॥२१॥

दारासक्ताहसहित ससादुल्लहखानक ।
राठोडवच्छवाहेशयुक्त साहिजहाभिध ॥२२॥

दिल्लीश्वर समायात श्रुत्वैवाभिमुखोभवत् ।
निःसायशोयमपन्नो राजसिंहो विराजते ॥२३॥

दग्ध मालपुराभिख्य नगर व्यतनोदिह ।
दिनाना नवक स्थित्वा लुठन समकारयत् ॥२४॥

रूपसिंहो मंडलाद्यगढस्थो म्लेच्छपाज्ञया ।
यस्य राघवदासस्य वंशस्याग्रे पलायित ॥२५॥

सोय तद्रूपसिंहस्य दिल्लीशाय सुरक्षिता ।
पुत्री पाणि ग्रहाणोचलोभार्या कृतवान्प्रभु ॥२६॥

जशवंतसिंहरावलमिह डुगरपुरगत निज कृतवान् ।
दड च वासंवालास्थितेरुपरि कुशलसिंहस्य ॥२७॥

देवलियापतिमनिश कृतवानिस्तेजम हरीसिंहं ।
मीनान् क्षयान् कृत्वा मेवलदेश गृहीतवान्नृपति ॥२८॥

पुण्या विवाहसमये नवतिस्वष्टाधिका सुकन्यानां ।
सुक्षत्रेभ्या दत्त्वा गजवाजिसुवस्त्राभोजनानि ददौ ॥२९॥

जननी रूप्यतुलाया स्थिता विधाय विष्णुलोकगते ।
तस्या नाम्ना रचितो महान् जनासागरो नरेंद्रेण ॥३०॥

तस्योत्सर्गे राज्ञा रूप्यतुला कल्पितार्पितौ ग्रामौ ।
गुणहूडदेवपुराख्यौ श्रीपुरोहितगरीबदासाय ॥३१॥

ब्रह्माडमहादान श्वेताश्वारुह नृपोकरोद्दान ।
रूप्यतुलाया स्थित्वा गज ददौ वा हिरण्यकामदुघा ॥३२॥

ददौ महाभूतघट हिरण्याश्वरथ नृप ।
हेमहस्तिरथ दिव्य पचलागलक तथा ॥३३॥

भावलीग्रामसहित हैमी कल्पलता ददौ ।
स्वर्णपृथ्वी नृपो विश्वचक्र रूप्यतुलादिकृद् ॥३४॥

नाम्ना राजसमुद्र जलाशय मुप्रतिष्ठित कृतवान् ।
सौवर्णसप्तसागरदान हैमी तुला महीपाल ॥३५॥

मत्पौत्रममरसिंह हैमतुलास्थ विधाय तत्र ददौ ।
एकादशसुग्रामान् पुरोहितोद्यद्गरीबदासाय ॥३६॥

श्रीराजमदिरवर शलाग्र कल्प राजनगर च ।
कृत्वा देशपतिभ्यो गजाश्ववस्त्राणि दत्तवान् भूप ॥३७॥

भूकल्पवृक्षो राणेंद्र कल्पपादपनामक ।
महादान प्रकल्प्यायमाकल्प कीर्तिमादधे ॥३८॥

राधाकृष्णचरित्रस्य राजसिंहमहीपते ।
श्रीरामरसदेनाम्नी राज्ञी जगति राजते ॥३९॥

श्रीपुष्करे तदजमेरिमहाप्रदेशे
शादूलवीर इति कल्पितभूमिभोग ।
राठोडराजमदखडन एव जातो
दानाद्यनेकसुकृतो परमारवश्य ॥४०॥

तस्यात्मजो जगति रायसल प्रसिद्धो
जातप्रतापतपनद्युतितापितारि ।
शौर्याभिमानमय एव मुदा निदान
दान ततान सतत कनकप्रधान ॥४१॥

जातस्तदीयतनुजस्तु जुभारसिंह
सत्सिंहसंघजयकारिशरीरसाक्षात् ।
खड्गप्रहाररणखंडितवैरिवारो
दम्भसिंहरत्नगुणभारसमोऽप्युदार ॥४२॥

तनयाथ तस्य विनयान्विताभव—
त्सनया समापि रमया तथोमया ।
सदयाऽभयादिधनदाय याधिका
अभिरामरामरसदेशुभाभिधा ॥४३॥

सोलङ्किनो दिव्यसुजानकुँवरि-
नाम्या सुपुत्री च विचित्रसद्गुणा ।
स्वजन्मना पावितमातृतात—
वंशद्वया सत्कविसृष्टशासना ॥४४॥

राणामंडनराजसिंहसुपदा भूयो महादानकृ-
द्रत्नालङ्कृतियुक्समस्तगुणभृद्देवप्रबोधोद्भवा ।
स्या देशेतिविशेषणादिविमलसद्वर्णयुक्त नाम ते
सतेने विधिरत्र रामरसदे नाम्नीति राज्ञीमणे ॥४५॥

रैय श्रीराजसिंहस्य राज्ञी सौभाग्यसुन्दरी ।
श्रीरामरसदेनाम्नी जयति क्षितिमंडले ॥४६॥

वैदर्भी नलभूभुजो दशरथस्यासीत्सुमित्रा विधो
रोहिण्येव सुदक्षिणा किल यथा पत्नी दिलीपस्य सा ।
देवक्यानकदुन्दुभेरपि हरे श्रीसत्यभामा तथा
नाम्नेय रमणीति रामरसदे श्रीराजसिंहप्रभो ॥४७॥

पातिव्रत्यपवित्रपुण्यमरणिश्चितामणिर्विद्वना
वित्तस्यापित्कल्पवृक्षकौस्तुभमणि श्रीणा गुणीना खनि ।
वृद्धिस्नोमजरणि।? ।शिरोमणिरिय स्त्रीणा गणे सुदर
श्रीचूडामणिरेव रामरसदेरानी चिर जीवतु ॥४८॥

दह्नारीमहाघट्टे शैलश्लिष्ट विशकट ।
जयावहा जयानाम्नी वापी पापप्रणाशिनी ॥४९॥

विदधे राजसिंहस्य प्राणाधिकमहाप्रिया ।
अभिरामगुणैयुक्ता श्रीरामरसदेवधू ॥५०॥

शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे द्वात्रिंशदाह्वये ।
माघे धवलपक्षे च द्वितीयाया बृहस्पतौ ॥५१॥

श्रीमान् गरीबदासाख्य पुरोहितशिरोमणि ।
प्रतिष्ठित प्रतिष्ठाया वाप्या रचितवान् विधि ॥५२॥

श्रीराजसिंहदेवेन सहिता हितकारिणी ।
वापीप्रतिष्ठा विदधे श्रीरामरसदेवधू ॥५३॥

अत्र दान कृतवती वहु गोदानपचक ।
हलद्वयमिता भूमि हरिरामत्रिपाठिने ॥५४॥

व्यासाय जयदेवाय क्ष्मामेकहलसमिता ।
कहास्यब्राह्मणायापि तथैकहलसमिता ॥५५॥

भानाभट्टाय वसुधा तथैकहलसमिता ।
कृष्णाख्यब्राह्मणायापि क्ष्मामेकहलसमिता ॥५६॥

हलपटकमिता भूमिमेव राज्ञी मुदा ददौ ।
निष्कय गोशतस्यापि रूप्यमुद्राशतद्वय ॥५७॥

रानाश्रीराजसिंहस्य श्रीरामरसदेवधू ।
महोत्साह कृतवती वाप्या उत्सग उत्सवे ॥५८॥

वर्षे पुष्करवेदधरणीसंख्ये समे माघवे
पक्षे शुक्लतमे तथा बुधमहावारे द्वितीयादिने।
श्रीवाप्या रणछोडसत्कविवर समृष्टवान्स्वो- — -
- - ˇ — - - ˇ — - - ॥५९॥

सहस्रं रूप्यमुद्राणां चतुर्विंशतिसंमितं ।
एतान्यै पूर्णतां प्राप वापीकार्यमहाद्भुतं ॥६०॥

इति श्रीमहाराजाधिराज महाराणाजी श्री राजसिंहजी महीपति पत्नी श्रीरामरसदे विरचित वापीप्रशस्ति भट्ट रणछोड कृता संपूर्ण। साल चेचाणी वारी महे चहुवाण धामाई शतीगासत्र वधु चन्द्रकुंवर तत्पुत्र रामचंद वीर साह लाला पोरवाड गजधर नाथू गोड भूधर रो नाथू सुगरा रो।

—×—

श्रीरामजी सहाय।

सिधि श्री एकलिगजी प्रसादात् महाराजाधिराज महाराणा श्री राजसिंघजी विजयराज्ये तलाव जनासागर रो काम कराव्यो। कुंवरजी श्री जेसीघजी भीमसीघजी कुंवर पद भुक्तव्य। गजधर सूत्रधार कीसना सुत जसा। सवत् १७२१ मार्गसेर वीद १० गुरे नीम रो मोत्त हूयो। स० १७ ५ दर्षे काम पूरो हूयो। प्रसस्त प्रतिष्टित। सुभ भवतु कल्याणमस्तु। वैसाख सुदी ३ गुरे।

श्रीगणेशाय नमः॥

कलयतु कमलाया कामद कमरूप-
स्तुहिनकिरणबिंबद्योतितानदवक्त्र।
विकचकमलचक्षु क्षीरधौ बद्धनिद्र-
स्सजलजलद भावनीयस्स भव्य॥१॥

गुणगणगुम्फीतया गाया गीतगात्र
कनककदनकात्या कातया कातकाय।
धृतधनघृतिधामद्ध यधारी धरण्या
भवतु भविकभूमिभूतये भूतभर्त्ता॥२॥

वदे लंबोदर वद्य जगदंबोदरोद्भव।
बिंबोदरद्युतिर्देहे बिंबोदरमिव द्विपा॥३॥

तैलगज्ञातितिलकं कठौडीकुलमंडनं ।
श्रीमत्पितरं कृष्णभट्टं वंदे प्रतिक्षणं ॥४॥

महाराजाधिराजश्रीराजसिंहनिदेशतः ।
लक्ष्मीनाथकविः कुर्वे जनासागरवर्णनं ॥५॥

अस्ति सर्वत्र विख्यातो रामवंशः सुपुण्यवान् ।
यस्य साम्यं न यातीह वंशः कोपि महीतले ॥६॥

तत्रान्ववाये शिवदत्तराज्यो
बापाभिधानोजनि मेदपाटे ।
संग्रामभूमौ पटुसिंहराव
लातीत्यतो रावल इत्यभाणि ॥७॥

राहप्पराणा जनितोस्यवंशे
राणेति शब्दं प्रथयन्पृथिव्यां ।
रणो हि धातुः खलु शब्दवाची
तं कारयत्येष रिपून् द्रुतार्त्तान् ॥८॥

तस्मान्नरपतिराणा दिनकरराणा बभूव ततः ।
अजनि जसकर्णराणा तस्मादभवच्च नागपालाख्यः ॥९॥

श्रीपूर्णपालनामा पृथ्वीमल्लस्ततो जातः ।
अथ भुवनसिंह उदितस्तत्सुनो भीमसिंहोभूत् ॥१०॥

अजनि जयसिंहराणा तस्माज्जज्ञे च लखमसीराणा ।
अरसी ततो हमीरस्ततोप्यभूत्क्षेत्रसिंहोस्मात् ॥११॥

तस्माल्लाखाभिख्यो राणा श्रीमोकलस्ततस्मात् ।
श्रीकुंभकर्ण उदभूद्राणा श्रीरायमल्लोस्मात् ॥१२॥

संग्रामसिंहराणा भूपालमणिस्ततो जातः ।
श्रीराणोदयसिंहः प्रतापसिंहस्ततो जातः ॥१३॥

अमरसमोमर्रसिंहस्ततो नृप कर्णसिंहोभूत् ।
गुणगणनिचिरततोभूद्राणा श्रीमज्जगत्सिंह ॥१४॥

जगत्सिंहमहीभर्त्ता कल्पवृक्ष कथ सम ।
चिंतनावधिदस्सोऽय चिंतितादधिकप्रद ॥१५॥

भास्वान् श्रीमज्जगत्सिंहस्तुलामारुह्य यस्ययधात् ।
स्वानिवृष्टि तनो मुक्त्वा न स्युज मेच्छत्र कथ ॥१६॥

तस्य धर्मात्मनस्साक्षाद्विष्णुरूपस्य चाभवत् ।
रानी समगुणाचारा जनादेवीति नामत ॥१७॥

पुत्री राठौडनाथस्य राजसिंहमहीभृत ।
मेटताधिपतेर्नित्य विष्णुपूजारतस्य च ॥१८॥

शभोर्गौरी हरे श्री कलशभवमुने राजपुत्रो गुणाढ्या
 लोपामुद्रा यथास्ते नृपमनुजननी स्याच्च सनोप्णरश्मे ।
रामस्यासीद्यथा व जनक नृपसुता सा शचीद्रस्य पत्नी
 तद्वद्रे जे विराजद्गुणकलितजगत्सिंहपत्नी जनादे ॥१६॥

दात्री दानव्रजस्य प्रियरिपुनिधन पार्वतीवोग्रभावा
 दीने नित्य दयालुर्नृपमुकुटजगत्सिहराणाप्रियाभीत् ।
कर्मेतीनामधेया जनकगृहवरे सा प्रसूतस्म पुत्र
 राणाश्रीराजसिंह गुणगणनिलय चारिसिंह द्वितीय ॥२०॥

राणाश्रीराजसिंहे कलयति मुकुट राज्यलक्ष्मीणि चायो
 माता सेय जनादेऽलभत प्रहृमुखायुरत्व त विलोक्य ।
तस्या भव्योय धीमान् प्रियवचननिधी राजसिंहो नृपेंद्रो
 नाम्ना मातुस्तडाग सदुदयपुरत पश्चिमस्यां व्यधात्त॥२१॥

बडीग्रामस्य निकट तत्कासारस्य राजत ।
जनासागर इत्येव प्रसिद्धिस्समजायत ॥२२॥

किं दुग्धं दधि वा घृतं मधु सुरा चेदिक्षु वार्द्धे रस-
स्साम्यं नो लभतो जलस्य लसतः श्रीमज्जनासागरे ।
क्षारो मत्सरभावतो ज्वलितहृत्तद्वाडवो दुःसभा-
गल्का प्राप्य विमुक्तलोकवसती रत्नाकरोऽप्यवृधि ॥२३॥

पाडवलोचनमुनिभूपरिमितं १७२८ वर्षे तपोमासे ।
शुक्लदशाम्यां जननीबहुपुण्यप्राप्तये नूनं ॥२४॥

महीमहेंद्रः किल राजसिंह—
श्चकार पद्माकरवामवस्य ।
उत्सर्गमुत्साहविलासिचित्त—
स्सद्वित्तविस्तारविराजमानं ॥२५॥ युग्मं ॥

उत्सर्गे पूर्णतां याते तस्मिन् सेतौ सुखस्थितः ।
शुश्राव श्रीराजसिंहो द्विजराजोदिताशिषः ॥२६॥

श्रीराधीशोधिनोरात्सिततिमरुचिमावीरगीरार्तिबंधु
क्षीराब्धिस्यानहीराधिकविमलयशः पुंजधीराब्जनेत्रः ।
साराक्तस्स्वीयदारालयहृदयलसत्कौस्तुभाराधृताद्रि—
स्ताराधीशास्य हीराधिकलसिततनुः पातु नारायणो वः ॥२७॥

भक्तप्रत्यक्षलक्ष्मीमृदुलजनुन्नतासंगमामोदमानं
कामं मत्यैर्मलिं दीभवदखिलजगद्भ्रमानाद्रिपद्म ।
भक्तं यद्भुक्तशेषं सपदि सुखमया भुंजमाना बभूवु-
र्द्यात्सद्याऽनवद्यं फलमिह सुजगन्नाथदेवः ॥२८॥

प्रचंडभुजदंडश्रीमंडितो मुंडमालया ॥
पुरोविलसत्तुंडश्शंकरश्शंकरोवतात् ॥२९॥

भक्तानंदातिसक्ताखिलकलितनतिस्साधुवक्त्रा हि तस्या—
लक्तादिप्राज्यरक्तानलवहुलम मंत्रशक्तातितेजा ।

कामाश्यामाभिरामालिकरुचिर विधु कांतिधामाननेंदु-
　वामारिव्रातहामा रुचिरपशुपति पुण्यनामावताद्व ।।३०।।

दक्षाधीशस्सुवक्षा विमलसुरधुनीजीवनक्षालिताणो
　यक्षाधीशातिपक्षाचलपतितनुजानेत्रलक्षाक्ततेजाः ।
साक्षाद्यायत्सुहाक्षामरिपुवरगणो मल्लिकाक्षारकामो
　साक्षावल्लोहिताक्षादितिजकृतनति पातु दाक्षायणीश ।।३१।।
साध्वदिक शूलधारी मृत्यु जय इति जगद्गीत ।
श्रीविश्वेश्वरदेवश्चित्रचरित्र करोतु शिव ।।३२।।

श्रीवैद्यनाथ इति य प्रथित पृथिव्या
　　सतापसतनिहतिव्यसने विदग्ध ।
सोय पुरत्रयविनाशविकाशवुद्धि—
　　र्निश्शकम कुरु यतादिह शकरश ।।३३।।

योगीद्रध्यानरूपोधरणिधरसुतास्वातधैर्यापकर्षी
　　कजाक्षो जह्नुपुत्रीजलजनितजटाद्वंतकांतिप्रतान ।
नदी यत्पादपकेरुहयुगलरजस्स्थापनापूतपृष्ठो
　　वीराविभू तकप कलयतु कुशल वीरभद्रेश्वरो व ।।३४।।
मगलकदवक व करोतु शभोजराजूट ।
कुरुते सुरस्रवती यत्रेंदुगलसुधाभ्राति ।।३५।।
क्षीराभोधिप्रसूतद्विजपतिविलसत्केतनागाब्जराज-
　　माल्ये सु (?) भ्रमतो मधुरमधुकरीवृदशोभा वहत ।
चित्र भक्तयुल्लसत्तनरहृदयसर कजपु जायमाना
　　रक्षातु क्षौणदु खा क्षपितरिपुचलत्लक्षलक्ष्मीकराक्षा ।।३६

धनसारगौरघनसारभवस्त्रो
　　　वहुभूपणप्रभमदारणनेत्र ।
वनमालिमित्रमनिचित्रचरित्रो
　　　मुशलायुधस्स कुशलानि करोतु ।।३७।।

नवनीरदनीरनीलकांति–
नवनीतग्रहपेशलरसशांति ।
नवनीपवक्रामसगकामा–
नवनीशाच्युत देहि कामधामा ॥३८॥

ग्रह्मरद्रलसदिद्रचद्रक–
रसाद्रदेवनिवहोस्ति यद्यपि ।
ग्रस्तु नदनिलयागणे लस—
द्वस्तुत विमपि धाम तन्मुदे ॥३९॥

उत्सग पूर्णता याते तस्मिन्सेतौ सुखस्थित ।
सुश्राव श्रीराजसिंह इति विप्रोदिताशिष ॥४०॥

येन सर्व्वे कृता भूमौ जना पूर्णमनोरथा ।
श्रीराजसिंहभूमीद्रश्चिरजीवतु भूतले ॥४१॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराणा श्रीराजसिंहनिदेशात् तैलगतिलक कठोडी ग्रामाधिपश्रीमत्कृष्णभट्टतनयाभ्या श्रीमल्लक्ष्मीनाथभट्ट भास्करभट्टाभ्यां विरचिता श्रीमज्जनासागरप्रशस्ति सपूर्णता प्राप । श्रीगणपतये नम । सवत् १७३४ वैशाख कृष्णा १३ । लिखितमिद कठोडी श्रीमत्कृष्ण भट्टात्मजभास्कर भट्टेन । लिखित सूत्रधार सगरामसुत नाथू ज्ञाति भगोरा ॥

एकषष्टिसहस्राग्रलक्षयुग्म सुपुण्यद ।
कार्येस्मिन् रूप्यमुद्राणा लग्न भद्रप्रद सदा ॥

२६१००० दोय लाख इगसट हजार रपीया । तलावरी प्रतिष्ठा हुई जदी रुपा री तुला कीधी । गाम गलूड चित्तौड तिरा गाम देवपुर थामला तीरा प्रोहित श्री गरीबदासजी हूँ प्राघाट करे मया कीधो । तलवरी पाल रो पैव लेने खाडा खोद्या सीमो फेरने नीम सोधेने गज १८ ग्रासार कीधा । कमठाणा रा गजधर सुतार सगराम सुत नाथू तन काठारी १७३५ वर्षे ।

—•—

परिशिष्ट संख्या ३

महादान

[१]

तुला-पुरुष अथवा तुलादान

होम के उपरान्त गुरु पुष्प एवं गन्ध के साथ पौराणिक मन्त्रों का उच्चारण करके लोकपालों का आवाहन करते हैं यथा—इन्द्र अग्नि यम, निर्ऋति, वरुण वायु सोम ईशान अनन्त एवं ब्रह्मा। इसके उपरान्त दाता सोने के आभूषण कर्णाभूषण सोने की सिकड़ियाँ कंगन, अंगूठियाँ एवं परिधान पुरोहितों का तथा इनके दूने (जो प्रत्येक ऋत्विक को दिया जाय उसका दूना) पदार्थ गुरु को देने के लिये प्रस्तुत करता है। तब ब्राह्मण शान्ति सम्बन्धी वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हैं। इसके उपरान्त दाता पुन स्नान करके श्वेत पुष्पों की माला पहन कर तथा हाथों में पुष्प लेकर तुला का (कल्पित विष्णु का) आवाहन करता है और तुला की परिक्रमा करके एक पलड़े पर चढ़ जाता है, दूसरे पलड़े पर ब्राह्मण लोग सोना रख देते हैं। इसके उपरान्त पृथिवी का आवाहन होता है और दाता तुला को छोड़कर हट जाता है। फिर वह सोने का आधा भाग गुरु को तथा दूसरा भाग ब्राह्मणों को उनके हाथों पर जल गिराते हुए देता है। दाता अपने गुरु एवं ऋत्विजों को ग्रामदान भी कर सकता है। जो यह कृत्य करता है वह अनन्त काल तक विष्णुलोक में निवास करता है। यही विधि रजत या कपूर तुलादान में भी अपनायी जाती है (अपरार्क पृ० ३२०, हेम दि-दानखंड पृ० २१४)।

[२ [

ब्रह्माण्ड

देखिए मत्स्यपुराण (२७६)। इस दान में दो ऐसे स्वर्ण-पात्र निर्मित होते हैं, जो गोलार्ध के दो भागों के समान होते हैं, जिनमें एक द्यौ (स्वर्ग) तथा दूसरा पृथिवी माना जाता है। ये दोनों अर्ध पात्र दाता की सामर्थ्य के अनुसार बीस से लेकर एक सहस्र पलों के वजन के हो सकते हैं और उनकी लम्बाई-चौड़ाई १२ से १०० अंगुल तक हो सकती है। इन दोनों अर्धों पर आठ दिग्गजों वेदों, छः अंगों, अष्ट लोकपालों, ब्रह्मा (मध्य में) शिव विष्णु सूर्य (ऊपर) उमा लक्ष्मी, वसुओं आदित्या, (भीतर) मरुतों की आकृतियाँ (सोने की) होनी चाहिए, दोनों को रेशमी वस्त्र से लपेट कर तिल की राशि पर रख देना चाहिए और उनके चतुर्दिक १८ प्रकार के अन्न सजा देने चाहिए। इसके उपरान्त आठों दिशाओं में पूर्व दिशा से आरम्भ कर, अनन्त शयन (सर्प पर सोये हुए विष्णु), प्रद्युम्न, प्रकृति, संकर्षण, चारों वेदों, अनिरुद्ध अग्नि, वासुदेव की स्वर्णिम आकृतियाँ क्रम से सजा देनी चाहिए। वस्त्रों से ढके हुए दस घट पास में रख देने चाहिए। स्वर्णजटित सींगों वाली दस गायें दूध दुहने के लिये वस्त्रों से ढके हुए काँस्य-पात्रों के साथ दान में दी जानी चाहिये। चप्पलों छाताओं, आसनों दर्पणों की भेंट भी दी जानी चाहिए। इसके उपरान्त सोने के पात्र (जिसे ब्रह्माण्ड कहा जाता है) का पौराणिक मन्त्रों के साथ सम्बोधन होता है और सोना गुरु एवं ऋत्विजों या पुरोहितों में (दो भाग गुरु को तथा शेषांश आठ ऋत्विजों को) बाँट दिया जाता है।

[३]

कल्पपादप या कल्पवृक्ष

(मत्स्य० २७७ लिंग २।३३)। भाँति भाँति के फलों आभूषणों एवं परिधानों से सुसज्जित कल्पवृक्ष का निर्माण किया जाता है। अपनी

सामर्थ्य के अनुसार सोने की मात्रा तीन पलों से लेकर एक सहस्र तक हो सकती है। आधे सोने से कल्पपादप बनाया जाता है। और ब्रह्मा, विष्णु शिव एवं सूर्य की आकृतियाँ रख दी जाती हैं। पाँच शाखाएँ भी रहती हैं। इनके अतिरिक्त बचे हुए आधे सोने की चार टहनियाँ, जो क्रम से सन्तान, मन्दार, पारिजातक एवं हरिचंदन की होती हैं बनायी जाती हैं जिन्हें क्रम से पूर्व दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर में रख दिया जाता है। कल्पपादप (कल्पवृक्ष) के नीचे कामदेव एवं उसकी चार स्त्रियों की सोने की आकृतियाँ रख दी जाती हैं। जलपूर्ण आठ कलश वस्त्र से ढककर दीपकों चामरों एवं छातों के साथ रख दिये जाते हैं। इनके साथ १८ धान्य रहते हैं। संसार रूपी समुद्र के पार कराने के लिये कल्पवृक्ष की स्तुतियाँ की जाती हैं। इसके उपरान्त कल्पवृक्ष गुरु को तथा अन्य चार टहनियाँ चार पुरोहितों को दे दी जाती हैं।

[४]

गोसहस्र

(मत्स्य २७८ एवं लिंग २।३८)। दाता को तीन या एक दिन केवल दूध पर रहना चाहिए। इसके उपरान्त एक सुवर्णमय बैल के शरीर पर सुगंधित पदार्थ का लेप करके उसे वेदी पर खड़ा करना चाहिए और एक सहस्र गायों में से १० गायों को चुन लेना चाहिए। इन गायों पर वस्त्र उढ़ाया रहना चाहिए इनके सींगों के ऊपर सुनहरा पानी चढ़ा देना या सोने का पत्र लगा देना चाहिए खुरों पर चाँदी चढ़ा देनी चाहिए और तब उन्हें मंडप में लाकर सम्मानित करना चाहिए। इन दसों गायों के मध्य में नन्दिकेश्वर (शिव के बैल) को खड़ा कर देना चाहिए। नन्दिके दर क गले में सोने की घंटियाँ ऊपर रेशमी वस्त्र गन्ध पुष्प होने चाहिए तथा उसके सींगों पर सोना चढ़ा रहना चाहिए। इसके उपरान्त दाता को सर्वौषधियों से पूरित जल में स्नान करके हाथों में पुष्प लेकर मन्त्रों के साथ गायों का आह्वान करना चाहिए और

उनकी महत्ता की प्रशंसा करनी चाहिए। इसी प्रकार दाता को चाहिए कि वह नन्दिकेश्वर बल (नदी) को धर्म कहकर पुकारे। इसके उपरान्त दाता दो गायों के साथ नन्दी की स्वर्णाकृति गुरु को तथा आठ पुरोहितों में प्रत्येक को एक--एक गाय देता है। शेष गायों को ५ या १० की संख्या में अन्य ब्राह्मणों में बाँट दिया जाता है। दाता को पुनः एक दिन दूध पर ही रह जाना पड़ता है तथा पूर्ण सन्तोष रखना पड़ता है। इस महादान के करने से दाता शिवलोक की प्राप्ति करता है तथा अपने पितरों, नाना एवं अन्य मातृपितरों की रक्षा करता है।

[५]

कामधेनु

(मत्स्य २७९ लिंग २।३५)। बहुत अच्छी सोने की दो आकृतियाँ बनाई जाती हैं, एक गाय की और दूसरी बछड़ की। सोने की तोल १००० या ५०० या २५० पलों की या सामर्थ्य के अनुसार केवल तीन पलों की हो सकती है। वेदी पर एक काले मृग का चर्म बिछा देना चाहिए जिसपर सोने की गाय आठ मंगल घटों, फलों, १८ प्रकार के अनाजों, चामरों, ताम्रपात्रों, दीपों, छाता, दो रेशमी वस्त्रों, घंटियों, गले के आभूषणों आदि के साथ रख दी जाती है। दाता पौराणिक मन्त्रों के साथ गाय का आह्वान करता है और तब गुरु को गाय एवं बछड़े का दान करता है।

[६]

हिरण्याश्व

(मत्स्य २८०)। वेदी पर मृगचर्म बिछाकर उस पर तिल रख देने चाहिए। कामधेनु के बराबर तोल वाले सोने का एक घोड़ा बनाना चाहिए।

दाता घोडे का भगवान् के रूप मे प्रह्वान करता है और वह प्राकृति गुरु को दान मे दे देता है। हेमाद्रि ने घोडे की प्राकृति के चारा परो एव मुख पर चांदी की चद्दर लगाने की बात कही है (दान खण्ड पृ० २७८)।

[७]

हिरण्याश्वरथ

(मत्स्य २८१)। सात या चार घोडा चार पहियों एव ध्वजा वाला एक सोने का रथ बनवाना चाहिए। चार मगलघट होते हैं। इसका दान चामरो छाता रेशमी परिधाना ए। सामर्थ्य क अनुसार ग या के साथ किया जाता है।

[८]

हेमहस्तिरथ

(मत्स्य २८२)। चार पहिया एव मध्य में आठ लोकपालों ब्रह्मा शिव, सूय नारायण लक्ष्मी एव पुष्टि की प्राकृतिया के साथ एक सोने का रथ (छोटा प्रर्थात् खिलौने के प्राकार का) बनवाना चाहिए। ध्वजा पर गरुड ए। स्तम पर गणेश की प्राकृति होनी चाहिए। रथ म चार हाथी होने चाहिए। प्राह्वान के उपरान्त रथ का दान कर दिया जाता है।

[९]

पञ्चलाङ्गलक

(मत्स्य २८-)। पुष्ट वृक्षा की लकडी के पाच हल बनवाने चाहिए। इसी प्रकार पाँच फाल सोने क होन चाहिए। दस बैला को सजाना चाहिए;

उनके सींगों पर सोना पूँछ में मोती खुरों मे चाँदी लगानी चाहिए। उपयुक्त वस्तुओं का दान सामर्थ्य के अनुसार एक खर्वट के बराबर भूमि, खेट या ग्राम या १००० या ५० निवर्तनों के साथ होना चाहिए। एक सपत्नीक ब्राह्मण को सोने की सिकड़ियों, अगूठियों रेशमी वस्त्रों एवं कगनो का दान करना चाहिए।

[१०]

विश्वचक्र

(मत्स्य २८५)। एक सोने के चक्र का निर्माण होना चाहिए, जिसमें १६ तीलियाँ एवं ८ मडल (परिधि) हों और उसकी तोल अपनी सामर्थ्य के अनुसार २० पलो से लेकर १००० पलो तक होनी चाहिए। प्रथम मध्य भाग पर योगी की मुद्रा में विष्णु की आकृति होनी चाहिए जिसके पास शख एवं चक्र तथा आठ देवियों की आकृतियां रहनी चाहिए। दूसरे मडल पर अत्रि भृगु, वसिष्ठ ब्रह्मा कश्यप तथा दशावतारों की आकृतियाँ खुदी रहनी चाहिए। तीसरे पर गौरी एवं माता देवियों चौथे पर १२ आदित्यों तथा चार वेदों, पाचवे पर पाँच भूतो (क्षिति जल, पावक, गगन एवं समीर) एवं ११ रुद्रो छठे पर आठ लोकपालों एवं दिशाओं आठ हस्तियों, सातवें पर आठ अस्त्रशस्त्रों एवं आठ मगलमय वस्तुओं तथा आठवें पर सवधि के देवताओं की आकृतियाँ बनी रहती हैं। दाता चक्र का आवाहन करके दान कर देता है।

[११]

सप्तसागरक

(मत्स्य २८७)। सामर्थ्य के अनुसार ७ पलों से लेकर १००० पलों तक के सोने से १०½ अगुल (प्रादेश) या २१ अगुल क्षण वाले सात पात्र (कुड)

बनाये जाने चाहिए जिनमें क्रम से नमक दूध घृत, इक्षुरस, दही चीनी एवं पवित्र जल रखा जाना चाहिए। इन कुण्डो मे ब्रह्मा, विष्णु शिव, सूर्य, इन्द्र, लक्ष्मी एव पार्वती की आकृतियाँ डुबो देनी चाहिए और उनमे सभी रत्न डाले जाने चाहिए तथा उनके चतुर्दिक सभी धान्य सजा देने चाहिए। वरुण का होम करके सातो समुद्रो का (कुण्डो के प्रतीक के रूप मे) आवाहन करना चाहिए और इसके उपरान्त उनका दान करना चाहिए।

[१२]

रत्नधेनु

बहुमूल्य पत्थरो (रत्नो) से एक गाय की आकृति बनायी जाती है। उस आकृति के मुख म ८१ पद्मराग-दल रखे जाते हैं, नाक की पोर के ऊपर १०० पुष्पराग दल मस्तक पर स्वर्णिम तिलक, आँखो मे १०० मोती, भौंहो पर १०० सीपियाँ रखी जाती हैं कान के स्थान पर सीपियो के दो टुकडे रहते हैं। सींग सोने के होते हैं। सिर १०० हीरक मणियो का होता है। गरदन (ग्रीवा) पर १०० हीरक मणियाँ होती हैं। पीठ पर १०० नील मणियाँ दोनो पार्श्वों म १०० वैदूर्य मणियाँ पेट पर स्फटिक पत्थर, कमर पर १०० सौगंधिक पत्थर होते हैं। खुर सोने के एव पूछ मोतियो की होती है। इसी तरह शरीर के अन्यान्य भाग विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य पत्थरो से अलकृत किये जाते हैं। जीभ शक्कर की, मूत्र घृत का गोबर गुड का होता है। गाय का बछडा गाय की सामग्रियो के आधे भाग का बना होता है। गाय एव बछडे का दान हो जाता है।

[१३]

महाभूतघट

(मत्स्य २८९)। १०८ अंगुल से लेकर १०० अंगुल तक के क्षण पर रखे हुए बहुमूल्य पत्थरों रत्नो) पर एक सोने का घट रखा जाता है।

इसे दूध एवं घी से भरा जाता है और इस पर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की आकृतियाँ रखी जाती हैं। कम द्वारा उठाई गई पृथ्वी, मकर वाहन) के साथ वरुण, भेड़ (वाहन) के साथ अग्नि मृग (वाहन) के साथ वायु चूहे (वाहन) के साथ गणेश की आकृतियाँ घट में रखी जाती हैं। इनके अतिरिक्त जपमाला के साथ ऋग्वेद, कमल के साथ यजुर्वेद बाँसुरी के साथ सामवेद एवं स्रुक् स्रुवा (करछुलों) के साथ अथर्ववेद एवं जपमाला तथा जलपूर्ण कलश के साथ पुराणों (पाँचवें वेद) की आकृतियाँ भी घट में रखी जाती हैं। इसके उपरान्त सोने का घड़ा दान में दिया जाता है।

[१४]

धरादान या हैमधरादान (सुवर्ण पृथ्वीदान)

(मत्स्य २८४)। अपनी सामर्थ्य के अनुसार ५ पलों से लेकर १००० पल सोने की पृथ्वी का निर्माण कराना चाहिए। पृथ्वी की आकृति जम्बूद्वीप जैसी होनी चाहिए जिसमें किनारे पर अनेक पर्वत, मध्य में मेरु पर्वत और सैकड़ों आकृतियाँ एवं सातों समुद्र बने रहने चाहिए। इसका पुन आवाहन किया जाता है। आकृति का ½ या ¼ गुरु को तथा शेष पुरोहितों को बाँट दिया जाता है।

[१५]

महाकल्पलता (कल्पलता)

(मत्स्य २८६)। विभिन्न पुष्पों एवं फलों की आकृतियों के साथ सोने की दस कल्पलताएँ बनानी चाहिए जिन पर विद्याधरों की जोड़ियों लोकपालों से मिलते हुए देवताओं एवं ब्राह्मी, अनन्तशक्ति आग्नेयी वारुणी तथा अन्य शक्तियों की आकृतियाँ होनी चाहिए तथा सबके ऊपर एक वितान की आकृति भी होनी चाहिए। वेदी पर खिंचे हुए एक वृत्त के मध्य में दो कल्पलताएँ तथा वेदी की आठों दिशाओं में अन्य आठ कल्पलताएँ रख

दी जानी चाहिए। दस गायें एवं मगल घट भी होने चाहिए। दो वस्त्र सजाएँ गुरु को तथा अन्य आठ वस्त्रजाएँ पुरोहितों को दान में दे दी जानी चाहिए।

[१६]

हिरण्यगर्भ

इस विषय में देखिए मत्स्यपुराण (२७५) एवं लिङ्गपुराण [२।२९]। मण्डप काल स्थल, पदार्थ (सामग्रियां पुण्याहवाचन लोकपालों का आवाहन आदि इस महादान तथा अन्य महादानों में वैसा ही है जैसा कि तुलापुरुष में होता है। दाता एक सोने का कुण्ड (थाल या परात या बरतन) जो ७२ अंगुल ऊंचा एवं ४८ अंगुल चौड़ा होता है लाता है। यह कुण्ड मुरजाकार (मृदंगाकार) होता है या गुलहल कमल (आठ दल वाले) के भीतरी भाग के आकार का होता है। यह स्वर्णिम पात्र जो हिरण्यगर्भ कहलाता है तिल की राशि पर रखा जाता है। इसके उपरान्त पौराणिक मन्त्रों के साथ सोने के पात्र को सम्बोधित किया जाता है और उस हिरण्यगर्भ (स्रष्टा) के समान माना जाता है। तब दाता उस हिरण्यगर्भ के अन्दर उत्तराभिमुख बैठ जाता है और गर्भस्थ शिशु की भांति पांच श्वासों के काल तक बैठा रहता है। उस समय उसके हाथों में ब्रह्मा एवं यमराज की स्वर्णाकृतियां रहती हैं। तब गुरु स्वर्णपात्र (हिरण्यगर्भ) के ऊपर गर्भाधान पुंसवन एवं सीमान्तोन्नयन के मन्त्रों का उच्चारण करता है। इसके उपरान्त गुरु वाद्यमन्त्रों या मंगल गानों के साथ हिरण्यपात्र से दाता को बाहर निकल आने को कहता है। इसके उपरान्त शेष बारहों संस्कार प्रतीकात्मक ढंग से सम्पादित किये जाते हैं। दाता हिरण्यगर्भ के लिए मन्त्रपाठ करता है और कहता है— पहले मैं मैरुणील के रूप में माँ से उत्पन्न हुआ था किन्तु अब आप से उत्पन्न होने के कारण दिव्य शरीर धारण करूंगा।' इसके उपरान्त दाता सोने के आसन पर बैठ कर 'देवस्य त्वा' नामक मन्त्र के साथ स्नान करता है, हिरण्यगर्भ को गुरु एवं अन्य ऋत्विजों में बांटता है।